२७ जनवरी, २०२५ को म.गां. काशी विद्यापीठ, वाराणसी के केन्द्रीय पुस्तकालय सभागार में आयोजित 'हिन्दी साहित्य के संवर्धन में पंजाबी रचनाकारों का योगदान' विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी के कतिपय स्मृति-चित्र।

अध्यक्षीय वक्तव्य देते हुए कुलपति प्रो. आनन्द कुमार त्यागी।

शोध-पत्रिका 'नमन' का अनावरण करते हुए विद्वज्जन।

प्रो. हरिकेश सिंह, प्रो. पवन अग्रवाल, प्रो. सुखदेव सिंह मिंहास, प्रो. यू.पी. सिंह तथा अन्य सुहृदजन।

काठमाण्डू (नेपाल) से साथियों संग पधारे डॉ. ऋषभदेव घिमिरे तथा अन्य।

कुलपति प्रो. आनन्द कुमार त्यागी को स्मृति-चिह्न तथा पुष्प-गुच्छ देकर तथा उ.प्र. पंजाबी अकादमी (लखनऊ) के जनसम्पर्क अधिकारी श्री अरविन्द नारायण मिश्र को स्मृति-चित्र देकर सम्मानित करते हुए डॉ. हिमांशु शेखर सिंह तथा डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह।

वर्ष-१८ : अंक-३३

नमन Naman

जुलाई-२०२५

जुलाई-२०२५ ISSN : 2229-5585

नमन
NAMAN

यूजीसी-केयर की बहु-विषयी (Multi-Disciplinary) सूची में नामांकित रही सान्दर्भिक अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

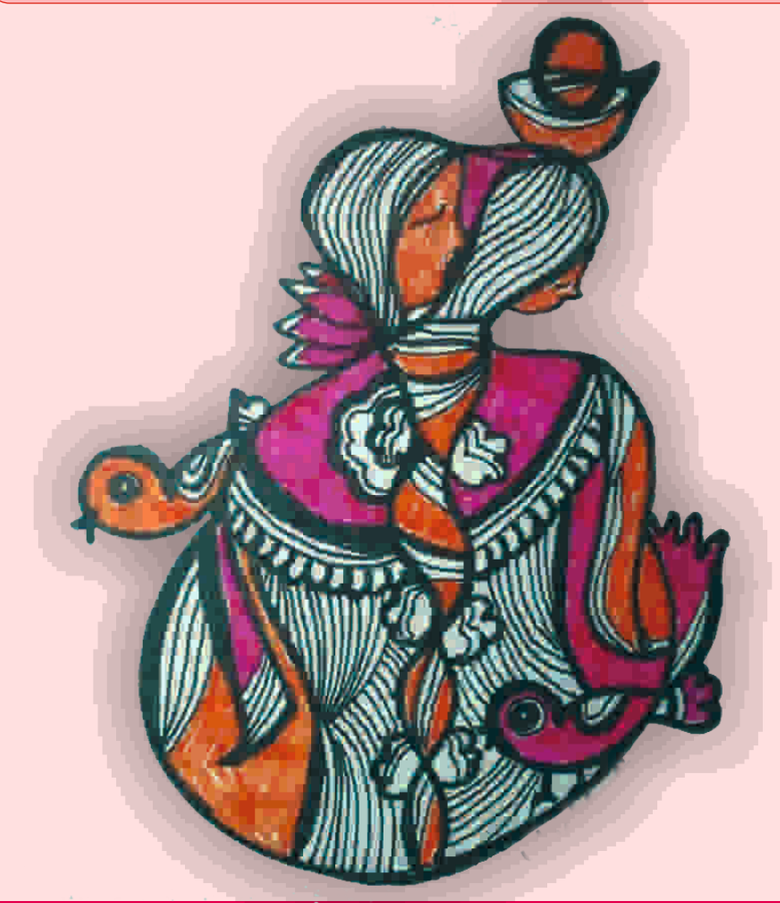

प्रो. श्रद्धा सिंह • डॉ. हिमांशु शेखर सिंह

वर्ष : १८

Website : www.namanpatrika.com
फेसबुक : नमन (शोध-पत्रिका)

अंक : ३३

वर्ष-१८ : अंक-३३ ISSN : 2229-5585

यूजीसी-केयर की बहु-विषयी (Multi-Disciplinary) सूची में नामांकित
रही सान्दर्भिक अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

नमन Naman

प्रधान संरक्षक
श्री सुधांशु शेखर सिंह (प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास)
(Secretary and CEO - Humanitarian Aid International)

परामर्श-मण्डल
प्रो. एम. विमला–हिन्दी विभाग, बंगलुरु विश्वविद्यालय, बंगलुरु, कर्नाटक
प्रो. मंजुला राणा–अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, एच.एन. बहुगुणा गढ़वाल वि.वि., उत्तराखण्ड
प्रो. डी.एस. राजपूत–पूर्व अध्यक्ष- समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि., सागर
प्रो. उमापति दीक्षित–अध्यक्ष- सांध्यकालीन विभाग, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान (शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार), आगरा
प्रो. योगेन्द्र प्रताप सिंह–आचार्य-हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. रेनू सिंह–अधिष्ठाता-मानविकी एवं भाषा संकाय, इ.गाँ. रा. जनजातीय वि.वि., अमरकण्टक, म.प्र.
डॉ. दुर्गेश त्रिपाठी–सह आचार्य, यूएसएमसी, गुरु गोविन्द सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली
डॉ. जितेन्द्रनाथ मिश्र–पूर्व अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, डी.ए.वी. डिग्री कॉलेज, वाराणसी
डॉ. रामसुधार सिंह–पूर्व अध्यक्ष- हिन्दी विभाग, उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी
प्रो. भारती सिंह–पूर्व प्राचार्य- महामाया राजकीय महाविद्यालय, महोना, लखनऊ
प्रो. सविता भारद्वाज–प्राचार्य- राजकीय महाविद्यालय, गाजीपुर
डॉ. आशा यादव–हिन्दी विभाग, बसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

न्यास-मण्डल
श्री शैलेन्द्र सिंह–पूर्व प्रबन्धक, ग्रामीण बैंक, हरदोई
डॉ. भारती सिंह– एम.ए. (समाजशास्त्र– हिन्दी), पी-एच.डी.
डॉ. दिनेश कुमार सिंह– गणित विभाग (अ.प्रा.), राजकीय महाविद्यालय, लखनऊ
डॉ. पद्मजा सिंह–प्राध्यापिका, दिल्ली
श्रीमती आरती सिंह–प्रधानाध्यापिका, वाराणसी

सम्पादकीय सम्पर्क
सम्पादक– 'नमन'
प्रेम सदन– सी. ३३/१४७-३२ ए
आचार्य नरेन्द्रदेव नगर, चन्दुआ छित्तूपुर, वाराणसी-२२१००२
वार्ता-सेतु : ०९४१५९८४९८३, ०९४१५५३०५८७
E-mail : shraddhahindi@gmail.com
himanshusinghkvp@gmail.com
Website : www.namanpatrika.com
फेसबुक : नमन (शोध-पत्रिका)

शब्द-संयोजक : श्री विमल चन्द्र मिश्र–पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१०१०
मुद्रक : श्री मोहित निगम– प्रिंटेक, इण्डियन प्रेस कालोनी, मलदहिया, वाराणसी
आवरण : अनुकृति गुप्ता (रेखाचित्रकार-लखनऊ)

२७ जनवरी, २०२५ को म.गां. काशी विद्यापीठ, वाराणसी के केन्द्रीय पुस्तकालय सभागार में आयोजित 'हिन्दी साहित्य के संवर्धन में पंजाबी रचनाकारों का योगदान' विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी के कतिपय स्मृति-चित्र।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, राष्ट्ररत्न शिवप्रसाद गुप्त तथा साहित्यसेवी प्रो. वासुदेव सिंह के चित्र पर पुष्पार्चन करते हुए कुलपति प्रो. आनन्द कुमार त्यागी, डॉ. हिमांशु शेखर सिंह तथा श्रीमती आरती सिंह (बाएँ से क्रमशः)

प्रो. सुखदेव सिंह मिंहास, प्रो. पवन अग्रवाल तथा डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह को सम्मानित करते हुए डॉ. देवेन्द्र सिंह, डॉ. भूप नारायण तथा डॉ. हिमांशु शेखर सिंह। साथ में; वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामसुधार सिंह।

कार्यक्रम में उपस्थित विद्वानों तथा साहित्य-प्रेमियों का समूह चित्र।

नमनं वासुदेवाय नमनं ज्ञानराशये ।
नमनं प्रीतिकीर्तिभ्यां नमनं सर्वभूतये ।।

नमन

Naman

'प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास'
द्वारा प्रकाशित
यूजीसी-केयर की बहु-विषयी (Multi-Disciplinary)
सूची में नामांकित रही सान्दर्भिक अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका
ISSN : 2229-5585

सम्पादक

प्रो. श्रद्धा सिंह
आचार्य– हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी, उ. प्र.

डॉ. हिमांशु शेखर सिंह
सह आचार्य एवं अध्यक्ष– हिन्दी विभाग
नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय
प्रयागराज, उ. प्र.

वर्ष-१८ : अंक-३३ ISSN : 2229-5585

नमन

Naman

मानविकी एवं साहित्य

यूजीसी-केयर की बहु-विषयी (Multi-Disciplinary)

सूची में नामांकित रही सान्दर्भिक अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

© प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास

सम्पादन

- अनियतकालीन, अवैतनिक तथा अव्यावसायिक
- रचनाकार की रचनाएँ उसके अपने विचार हैं। प्रकाशित शोध-पत्रों में आए विचार लेखकों के अपने हैं। सम्पादक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- रचनाओं पर कोई मानदेय / पारिश्रमिक देय नहीं होगा।
- लेखकों, सदस्यों एवं शुभचिन्तकों के आर्थिक सहयोग से पत्रिका प्रकाशित होती है।
- किसी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र वाराणसी होगा।

सदस्यता-शुल्क :

	प्रति अंक व्यक्तिगत रु. ५००/-	संस्थागत ७००/–
	व्यक्तिगत आजीवन रु. ४०००/-	संस्थागत ५०००/–
	विदेश के लिए US$ ५०	आजीवन US$ १५०

कृपया अपनी सदस्यता/सहयोग की धनराशि इस पर भेजें–
प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास
खाता संख्या-४०१६०१००००५४८९
(Account No. 40160100005489)
बैंक ऑफ बड़ौदा, महमूरगंज शाखा
वाराणसी-२२१०१०
RTGS/NEFT IFSC Code : BARB0MAHMOO

सम्पादकीय

हिन्दी भाषा
आग लगाते राजनेता और गले लगाती जनता

हमारे देश पर निस्संदेह रूप से मुगलों का शासन रहा, अंग्रेजों का राज रहा, जिसके फलस्वरूप; भारत में अरबी-फारसी व अंग्रेजी का बोलबाला रहा। फिर भी; भारत एक ऐसा देश है, जिसने अपनी पहचान, अपनी संस्कृति और सभ्यता की पहचान के माध्यमस्वरूप अपनी भाषा को बचाए रखा।

हिन्दी इस देश की सबसे बड़ी भाषा है। उसे बोलने वाले ५५ करोड़ से अधिक हैं। लोक सभा की आधी से अधिक सीटें हिन्दी क्षेत्र से आती हैं। यू-ट्यूब पर हिन्दी चौथी सबसे बड़ी भाषा है। विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में भी यह चौथे स्थान पर है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी अपने यहाँ बहुत से हिन्दी शब्दों को शामिल कर चुकी है। दुनिया में लगभग डेढ़ सौ विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ी-पढ़ाई जाती है। जो विदेशी एयरलाइंस भारत से उड़ान भरती हैं, उनमें अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी में भी एनाउंसमेण्ट होते हैं। सैकड़ों वर्षों से जिस किसी को भी भारत में जनसम्पर्क करने की आवश्यकता हुई, चाहे वह राजनीतिक, धार्मिक या सामाजिक नेता हो या चाहे लेखक-रचनाकार– उसने हिन्दी का उपयोग किया। युग-युग से तीर्थयात्रियों, व्यापारियों और कलाकारों की भाषा हिन्दी रही है। जो विदेश-यात्रा पर जाने वाले भारतीय हैं, उनसे विदेश की धरती पर अंग्रेजी के अतिरिक्त; हिन्दी माध्यम से ही सम्वाद की अपेक्षा की जाती है, न कि अन्य किसी भारतीय भाषा की। विदेशों में भारतीय भाषाओं के रूप में हिन्दी ही जानी जाती है। भारत में, राष्ट्रीय स्तर की राजनीति करने के लिए, हिन्दी अनिवार्य-सी है। गाँधी जी से लेकर सोनिया गाँधी, नरेन्द्र मोदी, अमित शाह, मल्लिकार्जुन खड़गे, असदुद्दीन ओवैसी तक सभी गैर हिन्दीभाषी राजनेता राष्ट्रीय स्तर पर अपनी बात पहुँचाने के लिए हिन्दी माध्यम को ही अपनाते रहे हैं। इसके बावजूद; अनेक राज्यों में हिन्दी का विरोध क्षेत्रीय अस्मिता को बनाने तथा घटती लोकप्रियता और समाप्त होती राजनीतिक जमीन को बचाने की राजनीतिक कुचेष्टा है। यह कृत्य समाज हित में नहीं, बल्कि व्यक्तिगत हित पर आधारित है।

वर्तमान में, हिन्दी को महाराष्ट्र में विरोध का सामना करना पड़ रहा है। इससे पहले वह दशकों तक तमिलनाडु और कर्नाटक में पीटी गयी, हंकाली गयी। तमिलनाडु में हिन्दी भाषा का विरोध एक जटिल और ऐतिहासिक मुद्दा है। यह विरोध भाषाई और सांस्कृतिक पहचान, क्षेत्रीय अस्मिता और अवसर की समानता से जुड़ा है। १९७३ में जब चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के नेतृत्व वाली मद्रास सरकार ने हिन्दी को अनिवार्य बनाने की कोशिश की, तो द्रविड़ मुनेत्र

कड़गम के द्वारा तमिलनाडु में हिन्दी को थोपने के विरुद्ध प्रदर्शन होते रहे। १९६० के दशक में जब भारत सरकार ने हिन्दी को महत्त्व देना शुरू किया, तो फिर से द्रविड़ मुनेत्र कड़गम ने हिन्दी विरोधी आन्दोलन का नेतृत्व किया। कर्नाटक में १४ सितम्बर, २०१९ को अनेक कन्नड़ कार्यकर्ताओं और संगठनों ने राज्य में हिन्दी दिवस मनाने का विरोध किया। नम्बूदरीपाद के समय में केरल में हिन्दी-विरोध एक मजबूत और व्यापक आन्दोलन बन गया।

इस समय, महाराष्ट्र में भाषा की लड़ाई ने सियासत की जमीन हिला दी है। जिस महाराष्ट्र के स्कूलों में हिन्दी को तीसरी भाषा के रूप में हटा दिया गया है, उसी महाराष्ट्र में हिन्दी फिल्म उद्योग है, जिसका वहाँ की आर्थिकी में भारी योगदान है। हिन्दी फिल्मों में काम करने वाले कलाकार अरबपति हैं। जाने कितने दूसरे भाषा-भाषी हिन्दी फिल्मों में काम करने के लिए हिन्दी सीखते हैं। भारी संख्या में दक्षिण भारतीय फिल्में हिन्दी में डब हो रही हैं और खूब मुनाफा कमा रही हैं। हिन्दी हर प्रदेश में किसी-न-किसी रूप में अपना अस्तित्व बनाए हुए है और हिन्दी ने कभी भी किसी भाषा का विरोध नहीं किया। उसने सभी भाषाओं के शब्दों को सहज ही आत्मसात् कर स्वयं को और भी समृद्ध ही किया है। हिन्दी भाषी क्षेत्र ने कभी किसी अन्य भाषा-भाषी का अपमान भी नहीं किया। हिन्दी भाषा की सार्वभौमिकता की इस बात से भी पुष्टि होती है कि अनेक अहिन्दीभाषी प्रतिभाओं द्वारा हिन्दी में मौलिक साहित्य का भी सृजन हुआ। बंगला के पार्वतीनंदन, मराठी के लक्ष्मण शिंदे, बाबूराव पराड़कर, प्रभाकर माचवे, मुक्तिबोध, दक्षिण भारत के आनंदशंकर माधवन, रांगेय राघव, चंदहासन इत्यादि ने अपनी उच्च कोटि की रचनाओं से न सिर्फ हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया, वरन् हिन्दी के सामाजिक व मनोवैज्ञानिक क्षितिज का विस्तार किया। हिन्दी के लोकगीतों और लोक-संस्कृतियों के आधार पर सृजनात्मक तथा विवेचनात्मक– दोनों प्रकार की रचनाएँ हुईं। आखिर कसूर क्या है कि हिन्दी इस देश की सबसे बड़ी भाषा है? साल २०२४ में ५२३५ प्रकाशकों ने ३६९४३ लेखकों-लेखिकाओं की ९०४३३ पुस्तकें हिन्दी में छापीं। यह बाजार की सबसे बड़ी भाषा है, इसीलिए हर उत्पाद अपने विज्ञापन हिन्दी में देना चाहता है। अमेरिका में ओबामा और ट्रंप तथा ब्रिटेन में ऋषि सुनक (पूर्व प्रधानमन्त्री) को चुनाव जीतने के लिए 'नमस्ते' कहना पड़ता है। प्रसिद्ध बंगला लेखिका महाश्वेता देवी ने एक बार कहा था कि जब वह हिन्दी में आयीं, तभी उन्हें देश भर में ख्याति मिली। दक्षिण भारतीय अधिकांश अभिनेता-अभिनेत्रियाँ हिदी फिल्मों में काम करना चाहते हैं। अन्य भाषाओं के लेखक-लेखिका भी अपनी रचनाओं का हिन्दी अनुवाद पसन्द करते हैं, क्योंकि हिदी में आने पर इनके पाठक वर्ग की संख्या बढ़ जाती है। गाँधी जी गुजराती थे, पर उन्होंने हिन्दी के महत्त्व को समझा था।

मोटूरि सत्यनारायण (आंध्रप्रदेश) तो दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार आन्दोलन के संगठक थे। उनको तो दक्षिण भारत का 'राजर्षि टण्डन' कहा जाता था। हिन्दी को राजभाषा घोषित कराने तथा हिन्दी के राजभाषा स्वरूप को निर्धारित कराने वाले दक्षिण भारत के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों में से वह एक थे। वे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा तथा केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के निर्माता थे। १९७२ में प्रयोजनमूलक हिन्दी की संकल्पना इनकी ही देन है। देश की राजनैतिक और सांस्कृतिक एकता के लिए राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, दयानंद सरस्वती से लेकर एनी बेसेण्ट तक ने हिन्दी की ताकत और सरलता को समझकर हिन्दी में ही पूरे देश को भावात्मक एकता में बाँधने का प्रयास शुरू किया। इसी तरह, कन्हैयालाल

माणिक लाल मुंशी, राजगोपालाचारी, टी. विजयराघवाचार्य, सी. पी. रामास्वामी अय्यर, कृष्णस्वामी अय्यर, अनंत शयनम आयंगर, एस. निजलिंगप्पा, रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर, के. भाष्यम्, टी. आर. वेंकटरमन शास्त्री, एन. सुंदरैया आदि विचारकों व नेताओं ने हिन्दी के पक्ष में तर्क दिए। लाला लाजपतराय ने हिन्दी के बहुत से प्रचारक तैयार किए। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के प्रयत्नों से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई।

दरअसल; नेताओं के पास जब लोगों को देने के लिए कुछ नहीं होता, तो वे भावनात्मक मुद्दे उछालकर उनको उकसाते हैं। यह समझना होगा कि हिन्दी एक ऐसी भाषा है, जो एक सम्पर्क भाषा के रूप में भारत में अपना वजूद रखती है। जब संयुक्त राष्ट्र संघ तक में हिन्दी में सम्बोधन हो चुका है और विदेशी जमीन पर हिन्दी का कद लगातार बढ़ रहा है, तब अपने ही देश में इस पर विवाद खड़ा करना उचित नहीं है। सभी भाषाएँ सगी बहनें हैं। हिन्दी को बड़ी बहन मानकर उसके प्रति अधिक उदार होने, सम्मान देने, समावेशी होने और दुराग्रह त्यागने की जरूरत है।

बहरहाल; हिन्दी की अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका 'नमन' का जुलाई अंक आपके हाथ में है, जिसमें देश के अनेक राज्यों (उत्तराखण्ड, गुजरात, मध्यप्रदेश, दिल्ली आदि) के शोध-आलेख हिन्दी भाषा में संकलित हैं। इसके अतिरिक्त; अंग्रेजी भाषा में भी अनेक राज्यों के शोध-आलेख हैं। सभी शोध-आलेख अपनी भाषाई क्षमता के साथ-साथ गुणात्मक रूप से सामग्री-सम्पन्न हैं।

'नमन' परिवार की तरफ से दिवंगत स्त्री-आलोचक प्रोफेसर निर्मला जैन (२८ अक्टूबर १९३२-१५ अप्रैल २०२५), वैज्ञानिक जयंत विष्णु नार्लीकर (१९ जुलाई १९३८-२० मई २०२५) की पुण्य स्मृति को सश्रद्ध नमन। हिन्दी की पुरुषवादी आलोचना के क्षेत्र में निर्मला जैन एकमात्र बड़ी महिला आलोचक थीं, जिन्होंने अपनी उपस्थिति से हिन्दी आलोचना को समृद्ध किया। उन्होंने भारतीय और यूरोपीय काव्यशास्त्र का गहरा अध्ययन किया था और भारतीय आलोचना-परम्परा को आगे बढ़ाते हुए हिन्दी आलोचना की समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान किया था। उन्होंने काफी अनुवाद-कार्य भी किए, जिसके लिए उन्हें एकेडमी पुरस्कार भी मिला। इसके अलावा; हिंदी एकेडमी का 'शलाका सम्मान' भी मिला था। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'जमाने में हम भी' लिखी थी, जिसमें दिल्ली का जीता-जागता इतिहास भी दर्ज था।

प्रख्यात् वैज्ञानिक जयंत विष्णु नार्लीकर की आत्मकथा है– 'माई टेल ऑफ फ़ोर सिटीज़'– जो बनारस, कैम्ब्रिज, बम्बई और पूना शहरों के इर्द-गिर्द घूमती है, जहाँ नार्लीकर साहब ने अपना जीवन बिताया था। जहाँ कहीं भी नार्लीकर साहब रहे, वहीं पर पढ़ाई की, शोध किया, अध्यापन और अनुसंधान किया। इन्होंने विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए अंग्रेजी, मराठी और हिन्दी में अनेक पुस्तकें लिखीं। इनकी 'धूमकेतु' नामक विज्ञान से सम्बन्धित पुस्तक हिन्दी भाषा में है, जिसमें विज्ञान से सम्बन्धित छोटी-छोटी कल्पित कहानियाँ हैं।

प्रयास होगा कि अगले अंक में इन दोनों विभूतियों पर विस्तार से कुछ सामग्री 'नमन' में प्रकाशित की जा सके।

नाग पंचमी, २०२५ **–सम्पादक**

सदस्यता-फॉर्म का प्रारूप

'नमन'

शोध-पत्रिका

मानविकी एवं साहित्य

ISSN : 2229-5585

कृपया नवीनतम फोटोग्रॉफ चस्पा करें

क्रमांक ..... दिनांक .....

मैं शोध-पत्रिका **'नमन'** का व्यक्तिगत आजीवन/संस्थागत सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। इस हेतु चेक/बैंक ड्रॉफ्ट सं. ..... दिनांक ..... रु. ४०००/५०००/- 'नमन' पत्रिका के पक्ष में संलग्न कर रहा/रही हूँ अथवा नगद प्रेषित है।

नाम .....

वर्तमान पता (जिस पर पत्रिका भेजी जाए) .....

.....

स्थायी पता .....

.....

मोबाइल .....

ईमेल .....

कृपया निम्न पते पर प्रेषित करें :

सम्पादक– 'नमन' हस्ताक्षर

प्रेम सदन, सी. ३३/१४७-३२ ए
आचार्य नरेन्द्रदेव नगर
चन्दुआ छित्तूपुर, वाराणसी-२२१००२
उत्तर प्रदेश (भारत)
दूरभाष : ९४१५९८४९८३, ८४१८०७८१२३
E-mail : himanshusinghkvp@gmail.com

अनुक्रम

सम्पादकीय iii

१. तुलसी की 'श्रीकृष्ण गीतावली' ***डॉ. वासुदेव सिंह*** १

२. जायसी के काव्य में सामाजिक चिन्तन एवं युगबोध ***डॉ. रवि कुमार गोंड़*** ७

३. भारतीय ज्ञान परम्परा का नैतिक स्वरूप : माधव कौशिक के खण्डकाव्यों के विशेष सन्दर्भ में ***सौरभ सिंह*** १०

४. हिन्दी साहित्य का शोकगीत : सरोज स्मृति ***डॉ. पूजा सिंह*** १७

५. डॉ. अनामिका के काव्य में स्त्री-संघर्ष के स्वर ***नीतू यादव*** २२

६. दिनकर की नारी-दृष्टि : 'रश्मिरथी' की युद्धभूमि में द्रौपदी और 'उर्वशी' की आत्म-चेतना का विमर्श ***डॉ. जैस्मीन पटनायक*** २८

७. हिन्दी महिला नाट्य-लेखन में अभिव्यक्त स्त्री-जीवन की समस्याएँ ***देवानंद यादव, प्रो. रेनू सिंह*** ३७

८. विवेकी राय की कहानियों में चित्रित ग्रामीण जीवन ***विजय बहादुर पाल, डॉ. हिमांशु शेखर सिंह*** ४४

९. उर्मिला शिरीष की कहानियों में वृद्ध-विमर्श ***डॉ. जयश्री बंसल, माया चौरसिया*** ५०

१०. शैलेश मटियानी के उपन्यासों में चित्रित पर्वतीय संस्कृति एवं जनजीवन ***आनन्द सिंह कप्रवान*** ५५

११. 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास में चित्रित लोकजीवन ***चित्रा साह, डॉ. मुन्नी चौधरी*** ६१

१२. स्त्री-विमर्श की भाषा ***डॉ. अनीता तिवारी*** ६५

१३. भारतीय संचार : संस्कृति, संस्कार और भाषा ***डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह*** ७१

१४. उत्तराखण्डी संस्कृति और गंगा ***प्रो. मंजुला राणा*** ८१

१५. कबीर और गाँधी के विचार : आज के युग की प्रासंगिकता ***डॉ. मनीषा आर. जोगिया*** ८५

१६. महात्मा गाँधी के जीवन में भारतीय संगीत का प्रभाव ***सिद्धार्थ मिश्रा*** ९१

१७. वाराणसी की वस्त्र कला ***निशांत*** ९९

१८. तक्षशिला विश्वविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था की आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था में प्रासंगिकता ***डॉ. राघवेन्द्र मालवीय*** १०५

१९. सतत विकास में निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) की भूमिका : एक अनुसंधानात्मक विश्लेषण ***रमाकांत सिंह, प्रो. सोमेश कुमार शुक्ल*** १११

२०. Vishwaguru Bharat : A Tectonic Shift in Attitude ***Dr. Anuradha Bapuly*** १२५

२१. Emerging Narrative Structures in Digital Media with Particular Reference to *The Ramayana* **Dr. Nisha Singh** १२९
२२. Beyond Myth : Ahalya's Cinematic Transcendence in Sujoy Ghosh's Vision **Arpita Saha, Dr. Madhvi Lata** १३५
२३. Egalitarian and Feminist Empirical Vision in Literature : An Appraisal on Bharati Mukherjee's *Leave It to Me & Miss New* India **Dr. M. Premavathy, S. Preethi** १४२
24. Measuring the Gaps with their Scale : An Analysis of Indo-Anglian Women Literature **Prof. (Dr.) Anupam Soni** १४७
२५. Hegemonic Discourse and Identity Politics : *Things Fall Apart vs In Love and Trouble* **Dr. Nipun Chaudhary** १५२
२६. Humour, Sarcasm and Satire in Meena Kandasamy's *The Gypsy Goddess* **Priyanka Ratnaparkhi, Dr. Prafulkumar Prakash Vaidhya** १६४
२७. The Adoption and Transformation of Technology in Education to Empower Learners : NEP-2020 Initiatives **Khushboo Verma, Raj Kumar Prajapati** १७०
२८. The Influence of Emotional Regulation on Mindfulness Among Prospective Teachers : An Empirical Study **Bini T V, Dr. Seema Menon K P** १७९
२९. Exploring Rationale of Existence of Informal Finance in Contemporary Indian Society **Dr. Vinod Kumar Yadav, Prof. Digambar Madhavrao Tangalwad** १८९
३०. Study of Cottage Industries Contribution in Pushing the Utter Pradesh States Economy Under the MSME Sector with Special Reference Kaushambi **Shweta kushwaha, Dr. Rajendra Kumar Mishra** २०१
३१. An Analytical Study on Stress of Working Women in Banking and IT Sector **Dr. Taruna, Shiwani Singh** २१०
३२. Rural Social Structure and Fictive Kinship : A Special Reference to Hathiganha Village in Prayagraj **Prof. Erum Farid Usmani, Prof. Lalima Singh** २२४
३३. Cultivating an Entrepreneurial Mindset : A Study of Engineering Colleges in Uttar Pradesh, India **Dr. Akash Agarwal** २३३
३४. Role of Community Radio in Promoting Health Awareness in Urban Slums **Kastoori Singh, Dr. Amar Pal Singh, Dr. Kirti Vikram Singh** २३९
३५. Safeguarding Victims and Witnesses Under New Criminal Laws **Aditya Pratap Singh** २४३
३६. Protecting Employees from Sexual Harassment : A Legal and Ethical Perspective **Dr. Neha Shukla** २४८

●

तुलसी की 'श्रीकृष्ण गीतावली'

डॉ. वासुदेव सिंह*

गोस्वामी तुलसीदास मूलत: रामभक्त थे। उनके उपास्य राम थे। किन्तु वे समकालीन उन सन्तों में नहीं थे, जो सच्ची विष्णु या शिवभक्ति अन्य देवताओं की निन्दा में मानते थे, जो वैष्णव होने पर शैवों तथा शाक्तों को हेय दृष्टि से देखते थे या शैव होने पर वैष्णवों और स्मार्तों की निन्दा करते थे। यही नहीं, गोस्वामी जी उन सगुणमार्गियों में भी नहीं थे, जो ब्रह्म के निर्गुण रूप का तिरस्कार या खण्डन करते थे। वे उन निर्गुणियों, अलख जगाने वाले योगियों या साधकों के भी समर्थक नहीं थे, जो 'श्रुति सम्मत हरि भगति पथ, संजुत बिरति बिबेक' का निरादर करते हुए अवतारवाद का विरोध कर रहे थे और नित्य नवीन पन्थों को जन्म देकर धर्म के नाम पर कलह, संघर्ष और विघटन को बढ़ावा दे रहे थे। गोस्वामी जी का दृष्टिकोण इन संकीर्णमना भक्तों तथा सन्तों से सर्वथा विपरीत था। वे मानते थे कि अनेक नाम और रूप होने के कारण एक ब्रह्म अनेक नहीं हो जाता। 'अगुनहि सगुनहि नहि कछु भेदा' का आदर्श मानने वाले भक्त-कवि के मन में यह कभी आ ही नहीं सकता था कि राम, कृष्ण या अन्य देवों में कोई भेद है। 'यं शैवा: समुपासते शिव इति' की भावना रखने वाले गोस्वामी जी के लिए ब्रह्म एक था। भक्तों द्वारा उसका एक या दूसरा नाम दे देने मात्र से यह अनेक नहीं हो जाता। यह उदार और स्वस्थ दृष्टिकोण उनकी सभी रचनाओं में मिलता है। 'विनय पत्रिका' में गणेश, सूर्य, शिव, दुर्गा, गंगा, यमुना आदि की स्तुतियाँ इसकी प्रमाण हैं। मानस में राम-कथा के वक्ता के रूप में शिव को उपस्थित करना तथा राम और शिव में अभेद और अभिन्न सम्बन्ध दिखाना, उनकी इसी जन कल्याणकारिणी दृष्टि का परिचायक है। रामकथा से सम्बद्ध कतिपय ग्रन्थों के साथ 'पार्वती मंगल' और 'श्रीकृष्ण गीतावली' की रचना इसी स्वस्थ बुद्धि की उपज है।

'श्रीकृष्ण गीतावली' एक संग्रह ग्रन्थ है। इसके रचनाकाल पर विद्वानों में मदभेद है। इसे डॉ. श्यामसुन्दर दास सम्वत् १६१६ और १६२८ के मध्य, पण्डित रामनरेश त्रिपाठी सम्वत् १६२८ और १६३० के बीच, डॉ. रामकुमार वर्मा सं. १६४३ और डॉ. माताप्रसाद गुप्त सं. १६५८ की कृति मानते हैं। श्रीकृष्ण गीतावली की शैली में जो प्रौढ़ता है, भाषा में जो प्रांजलता और चुस्ती है तथा पदों में जो लालित्य और प्रवाह है, वे इस बात के प्रमाण हैं कि यह कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह किसी विशेष परिस्थिति या प्रतिक्रिया की उपज है। वह हेतु राम-कृष्ण में अभेद सम्बन्ध दिखाने का हो सकता हैं, गोस्वामी जी के ब्रजगमन से उत्पन्न प्रभाव हो सकता है, सूरदास से भेंट हो सकता है या ब्रजभाषा और गीत शैली पर आधिपत्य-प्रदर्शन हो सकता है। इनमें से कारण कोई रहा हो, हर दशा में 'श्रीकृष्ण गीतावली' परवर्ती रचना प्रतीत होती है।

'श्रीकृष्ण गीतावली' ६१ पदों का एक लघु गीतिकाव्य है, जिसमें 'सूरसागर' की शैली में कृष्ण-चरित का आख्यान है। इसमें २० पद बाल-लीला के, ३ रूप-सौन्दर्य के, ९ विरह-वर्णन के और २७ पद उद्धव-गोपी सम्वाद या भ्रमरगीत के हैं। इनके अतिरिक्त; दो पदों में द्रौपदी-लज्जा-रक्षा का प्रसंग वर्णित है। बाल-लीला के अन्तर्गत गोस्वामी जी ने माखन-चोरी,

* प्राक्तन् आचार्य एवं अध्यक्ष– हिन्दी विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ.प्र.

उपालम्भ, उलूखल-बन्धन, इन्द्र-कोप और गोचारण के प्रसंग उठाये हैं तथा शृंगार के अन्तर्गत उनका ध्यान मुख्य रूप से विरह-वर्णन और उद्धव-गोपी सम्वाद पर रहा है।

श्रीकृष्ण गीतावली के सात पद (संख्या २४, ३२, ३४, ४२, ४३ और ४४) सूरसागर में भी पाये जाते हैं। सूरसागर श्रीकृष्ण गीतावली से पूर्व की रचना है। अत: मोटे तौर पर यही कहा जा सकता है कि ये पद मूल रूप में सूरसागर के हैं और किसी प्रकार से कृष्ण गीतावली में आ गये हैं। किन्तु, गहराई से विचार करने पर निष्कर्ष विपरीत दिखाई पड़ता है। कृष्ण गीतावली की उपलब्ध सभी प्रतियों में पाठ लगभग एक समान है, पद संख्या और पदों का क्रम एक सा है, उनका संग्रह स्वयं तुलसीदास द्वारा किया गया है। ऐसी दशा में, यह विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता कि कवि ने सूरसागर के कुछ पदों को अपनी कृति में जोड़ दिया होगा, जब कि वह विनय पत्रिका और गीतावली द्वारा अपने गीत-रचना-नैपुण्य और ब्रजभाषा-अधिकार को प्रमाणित कर चुका था और मानस का स्रष्टा होने के नाते अक्षय यश प्राप्त कर चुका था। इसके विपरीत; सूरसागर ऐसे स्फुट पदों का संग्रह है, जो सूरदास द्वारा उनके पूरे जीवन में प्रतिदिन रचे और गाये जाते थे, जिनका संग्रह स्वयं कवि ने नहीं किया था और जिनकी निश्चित संख्या आज भी ज्ञात नहीं है। वस्तुत: वह एक विकसनशील गीत काव्य है, जिसमें समय-समय पर प्रक्षिप्त पद जुड़ते रहे हैं। उसमें अष्टछाप के कई कवियों के पद सम्मिलित हैं ही, तुलसीदास की गीतावली के भी तीन पद (बालकाण्ड, पद संख्या २३, २४, २८) मिलते हैं। अत: सम्भावना इसी बात की है कि सूरसागर में, आगे चलकर श्रीकृष्ण गीतावली के भी उक्त सात पद सम्मिलित कर लिए गये होंगे।

श्रीकृष्ण गीतावली में कृष्ण-लीला को वह विस्तार नहीं मिल सका है, जो सूरसागर में है। यद्यपि विषय-चयन की दृष्टि से दोनों में अद्भुत समानता है। सूरसागर के समान श्रीकृष्ण गीतावली में भी मुख्य रूप से श्रीकृष्ण की बाल एवं शृंगार-लीला वर्णित है। सूरसागर में दो सौ से भी अधिक पदों में श्रीकृष्ण का बाल-वर्णन मिलता है। सूरदास ने बाल-छवि का जैसा स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक एवं विस्तृत वर्णन किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। श्रीकृष्ण के छोटे-से-छोटे कार्य पर कवि की अन्धदृष्टि पहुँची है। बाल-लीला दो प्रकार की है– लौकिक-अलौकिक और वह गोकुल और वृन्दावन से सम्बद्ध है। उनके लौकिक गोकुल-कार्यों में नामकरण, वर्ष गाँठ, घुटने के बल चलना, चोटी बढ़ने के लिए रूठना, तोतली बोली, चन्द खिलौना के लिए हठ करना तथा माखन चोरी आते हैं। उनके अलौकिक-कार्यों में पूतना-वध, सिद्धर ब्राह्मण की कथा, कागासुर-वध, शकट-भंजन, तृणार्वत-वध, मृत्तिका-भक्षण, उलूखल-बन्धन और यमलार्जुन-मोक्ष मुख्य हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीकृष्ण के इन सभी कार्यों का उल्लेख नहीं किया है। एक पद में उनकी शिशु सुलभ चेष्टाओं का वर्णन कर गोस्वामी जी श्रीकृष्ण के माखन-रोटी खाने और माखन-चोरी पर आ गये हैं। लगता है बाल-लीला में गोस्वामी जी को श्रीकृष्ण का यह कार्य सर्वाधिक प्रिय लगता था। बालक कृष्ण माँ यशोदा से चुपड़ी रोटी माँगते हैं, बलराम को उसका एक टुकड़ा भी नहीं देना चाहते हैं और उसके मिल जाने पर बाहर भाग जाते हैं, समवयस्कों को दिखा-दिखाकर उन्हें प्रलोभन देकर खाते हैं। बच्चों को इस कार्य में बड़ा आनन्द आता है। पद इस प्रकार है–

'छोटी मोटी मोसी रोटी चिकनी चुपरि कै तू दै री, मैया।'
'लै कन्हैया' 'सो कब?' अबहि 'लाल।।'

सिगरियै हौही खैहौं, बलदाऊ को न देहौं।'
'सो क्यों?' 'भटू, तेरो कहा' कहि इत उत जात।।१।।
बाल बोलि डहकि बिरावत, चरित लखि,
गोपीगन महरि मुदित पुलकित गात।
नूपुर की धुनि किंकिनि को कलरव सुनि,
कूदि कूदि किलकि किलकि ठाढ़े ठाढ़े खात।।२।।

दूसरों को दिखा-दिखाकर रोटी खाने में उन्हें आनन्द आता ही है, अपनी ही नूपुर और किंकिणी-ध्वनि भी उन्हें बहुत प्रिय लगती है। अतएव जान-बूझकर दोनों में ध्वनि उत्पन्न करने के लिए वे कभी कूदते हैं, कभी किलकारी भरते हैं और कभी खड़े हो जाते हैं।

इसी से जुड़ा हुआ दूसरा प्रसंग है– माखन-चोरी का। इस प्रसंग में गोस्वामी जी की वृत्ति खूब रमी है। एक ग्वालिनि यशोदा को उलाहना देती है– 'जरा मेरे घर आकर अपने बच्चे की करतूत तो देखो। दूध-दही की हानि तो सह भी सकती हूँ, किन्तु नित्य प्रति भाजन कौन खरीदे? क्या किसी के घर में कोष भरा है?'

तोहि स्याम की सपथ जसोदा! आइ देखु गृह मेरे।
जैसी हाल करी यहि ढोटा छोटे निपट अनेरे।।१।।
गोरस हानि सहौं, न कहौं कछु, यहि ब्रजवास बसेरे।
दिन प्रति भाजन कौन बेसाहे? घर निधि काहू केरे।।२।।

बालक कृष्ण भी कहीं छिपकर सुन रहे थे। तत्काल माता से अपनी सफाई देते हैं– 'अरे माई! ये मुझ पर असत्य आरोप लगा रही हैं। इन्हें तो दूसरों के घर घूमने की आदत पड़ गयी है। यह सब उसी को छिपाने का बहाना है। इनके कारण खेलना तक छोड़ दिया, फिर भी; इनसे जान छुड़ाना मुश्किल हो रहा है। ये स्वयं अपने बर्तन तोड़ डालती हैं, दही-दूध हाथ में लगा लेती हैं और उलाहना देने दौड़ पड़ती हैं, स्वयं का अपराध दूसरों के सिर मढ़ती है। ये तर्क में ब्रह्मा तक का हरा सकती हैं–

मो कँह झूठेहुँ दोष लगावहिं।
मैया! इन्हहि बानि पर घर की, नाना जुगुति बनावहिं।।१।।
इन्ह के लिए खेलिबो छाड्यो, तऊ न उबरन पावहिं,
भाजन फोरि बोरि कर गोरस, देन उराहनो आवहिं।।२।।
कबहुँक बाल रोवाइ, पानि गहि, मिस करि उठि-उठि धावहिं।
करहिं आपु सिर धरहिं आनके, बचन बिरंचि हरावहिं।।३।।

कितने सुन्दर ढंग से अपनी सफाई दी गयी है। गोपियों की कृष्ण-दर्शनेच्छा के अतिरिक्त; स्त्रियों के वाक्-चातुर्य पर कितना मधुर आक्षेप किया गया है। लेकिन इस सफाई और शिकायत के बाद भी कृष्ण की माखन-चोरी बन्द नहीं होती है। माँ यशोदा को आये दिन उलाहना सुनना पड़ता है। एक दिन वह कृष्ण को इस कार्य से विरत करने के लिए अच्छा उपाय ढूँढ़ निकालती हैं। वह कहती हैं–'लाल! अब लड़कपन छोड़ो। अब तुम विवाह के लायक हो गये। शीघ्र ही तुम्हारे देखुआ आने वाले हैं। यदि कहीं तुम्हारे चोर स्वभाव का पता चल गया, तो सास-ससुर के लिए बड़ी लज्जा की बात होगी और नयी बहू आकर तुम पर हँसेगी। शीघ्र स्नान करके, अच्छे कपड़े पहन लो, जिससे अच्छे वर के रूप में तुम्हारी प्रशंसा हो सके।' बस, फिर क्या

था? श्रीकृष्ण शीघ्र ही तैयार होकर वर देखने वालों की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगते हैं–

छोड़ो मेरे ललन! ललित लरिकाई।
ऐहैं सुत! देखुवार कालि तेरे, बबै ब्याह की बात चलाई।।१।।
डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि, हँसिहै नई दुलहिया, सुहाई।
उबटौ न्हाहु, गुहौ चुटिया बलि, देखि भलो बर करिहि बड़ाई।।२।।
मातु कह्यौ करि कहत बोलि दै, 'भइ बड़िवार, कालि तौ न आई।
'जब सोइबो लाल–यों 'हौ' कहि, नयन मींचि रहे पौढ़ि कन्हाई।।३।।

बाल-वर्णन के अन्तर्गत गोस्वामी जी ने उलूखल-बन्धन, गोवर्धन-धारण और गोचारण– इन तीन प्रसंगों को और लिया है। लेकिन इन प्रसंगों में कवि की वृत्ति अधिक नहीं रमी है। उसने केवल एक-एक पद में चलते ढंग से इनका उल्लेख मात्र कर दिया है। इनमें गोचारण का प्रसंग ऐसा है, जिस पर कम कहा जाना खटकता है। सूरदास ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। प्रकृति के मनोरम दृश्यों, यमुना के कछारों और पशु-स्वभाव का प्रभावकारी चित्र उपस्थित करते हुए सूर ने इसी के माध्यम से कृष्ण और गोपियों के बीच प्रेम के उदय और विकास का अत्यन्त स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक चित्र खींचा है। गोस्वामी जी ने यद्यपि कृष्ण और गोपिकाओं में प्रेम का सूत्रपात– कृष्ण के यमुना तट पर वंशीवादन से दिखाया है, किन्तु शृंगार-वर्णन तुलसीदास का प्रिय विषय नहीं रहा है। प्रकृति का भी वैसा संश्लिष्ट चित्रण गोस्वामी जी में नहीं मिलता है, जैसा वाल्मीकि, कालिदास या सूरदास में। वे एक मर्यादावादी भक्त कवि थे। रामकथा में जहाँ कहीं प्रेम-वर्णन के अवसर आये हैं, गोस्वामी जी ने उनका संकेत भर कर दिया है अथवा परोक्ष रूप से वर्णन किया है। वह सीता-सौन्दर्य या नख-शिख-वर्णन, सीताहरण के पश्चात्, राम-विलाप के अवसर पर करते हैं, इससे पाठक की दृष्टि सीता के रूप पर न जाकर, राम की विरह-दशा पर ही टिकी रहती है। शिव-पार्वथी की प्रणय-लीला का कालिदास ने खुलकर वर्णन किया है, किन्तु गोस्वामी जी पार्वती के तप और विवाह का विस्तृत उल्लेख करने के बाद, एक चौपाई में यह कहकर कि– 'जगत मातु पितु शम्भु भवानी, तेहि सिंगार न कहौं बखानी', दूसरा प्रसंग उठा लेते हैं। श्रीकृष्ण गीतावली में भी गोस्वामी जी का यही आदर्शवादी मर्यादापरक दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है। उन्होंने शृंगार के उस स्थूल-वर्णन से अपने को बचा लिया है, सूरसागर में जिसका व्यापक विधान दिखाई पड़ता है और जो रीतिकालीन शृंगाराधिक्य के लिए प्रेरणा-स्रोत बना। इस सन्दर्भ में एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि गोस्वामी जी ने प्रेम की मूर्ति राधा का नाम भी नहीं लिया है। केवल तीन पदों में गोपिकाओं के कृष्ण के प्रति सहज आकर्षण और अनुराग का संकेत किया है। यहाँ कवि का ध्यान मुख्य रूप से कृष्ण के अनुपम रूप-वर्णन पर रहा है, गोपियाँ जिसे देखकर मुग्ध हो जाती हैं, जल भरना भूल जाती हैं तथा एकत्र होकर परस्पर उस रूप माधुरी और उसके मादक प्रभाव की चर्चा करती हैं या स्तब्ध-भाव से आत्मविभोर हो, उसका दर्शन करती हैं–

तुलसी प्रभु निहारि जहाँ तहाँ ब्रज नारि
ठगी ठाढ़ी मग लिए रीते भरे घट हैं।।

अथवा

जदुपति मुख छवि कलप कोटि लगि, कहि न जाइ जाके मुख चारी।
तुलसिदास जेहि निरखि ग्वालिनी, भजी तात पति तनय बिसारी।।

गोस्वामी जी ने यद्यपि संयोग शृंगार का खुलकर वर्णन नहीं किया है, किन्तु गीतावली में विप्रलम्भ शृंगार सम्बन्धी कई अच्छे पद मिलते हैं। वस्तुत: संयोग में प्रिय-प्रेमी के साथ रहने के कारण प्रेम में वह गहराई नहीं आती हैं, जो वियोग में। वियोग में प्रेम घनीभूत हो जाता है और कवि को विरही को मानसिक दशा और वेदना की तीव्र अनुभूति का चित्र प्रस्तुत करने का अच्छा अवसर मिल जाता है, जबकि संयोग में केवल हास-परिहास, क्रीड़ा-विनोद आदि कार्यों या शारीरिक व्यापारों तक ही कवि को सीमित रहना पड़ता है, जिससे अश्लीलता या स्थूलता आ जाने का निरन्तर भय बना रहता है। कृष्ण के मथुरागमन के समाचार से गोपियाँ विरह-कातर हो उठती हैं। वे कभी अपने नेत्रों को कोसती हैं और कभी मन की वंचक वृत्ति पर वेदना व्यक्त करती हैं। उनको आश्चर्य है कि उनके नेत्र जो क्षण मात्र के वियोग से व्याकुल हो उठते थे, कृष्ण के मथुरा चले जाने पर उनके साथ क्यों न उड़ गये–

बिछुरत श्री ब्रजराज आजु, इन नयनन की परतीति गई।
उड़ि न लगे हरि संग सहज तजि, ह्वै न गये सखि स्याममई।।

सूरदास ने भी नेत्रों को लेकर तरह-तरह की कल्पनाएँ और मौलिक उद्‌भावनाएँ की हैं। 'यहै सुनत ही नयन पराने', 'नयन नन्दनन्दन ध्यान, 'उपमा एक न नैन गही', 'ऊधौ क्यों राखो ये नैन', 'पूरनता इन नयन न पूरी' आदि अनेक पद सूर की कल्पना-शक्ति और वाग्विदाग्धता के प्रमाण हैं।

वियोग में सुखद वस्तुएँ भी दु:खदायी हो जाती हैं। शीतल चन्द्रमा के सूर्य से भी अधिक उष्ण होने की चर्चा प्राय: सभी विरह-वर्णन करने वाले कवियों ने की है। तुलसीदास भी इसके अपवाद नहीं हैं। कृष्ण के वियोग में गोपियों के लिए प्रकृति कैसे विपरीत हो गयी है, यह निम्नलिखित पद से द्रष्टव्य है–

ससि ते सीतल मोकौ लागै माई री! तरनि।
याके उएँ बरति अधिक अंग-अंग दब, वाके उएँ मिटति रजनि जनित जरनि।।
सब विपरीत भए माधव बिनु, हित जो करत अनहित की करनि।
तुलसीदास स्यामसुन्दर बिरह की, दुसह दसा सो मो पै परति नहीं बरनि।।

इसके बाद भ्रमरगीत अथवा उद्धव-गोपी सम्वाद का का वह प्रसिद्ध प्रसंग आता है, जो कृष्ण-काव्य का सर्वोत्कृष्ट अंश हैं, जो सूरसागर का अमृत-रस है, जो श्रीमद्‌भागवत में नौ-दस श्लोकों के रूप में जन्म लेकर शताब्दियों तक कृष्ण-भक्त कवियों का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। सूरदास ने इसको न केवल व्यापकता प्रदान की, अपितु इसे नये आयामों और सन्दर्भों से भी जोड़ दिया। सूरसागर के भ्रमरगीत के दो पक्ष हैं– १. साहित्यिक और २. दार्शनिक-धार्मिक। इसके माध्यम से जहाँ एक ओर तत्कालीन वैष्णव आन्दोलन का चित्र सामने लाया गया है, मायावाद, अद्वैतवाद के आतंक, अलखवादी हठयोगियों के पाषण्डपूर्ण धर्माचार और निर्गुणमार्गी मिथ्या प्रचार के ऊपर भक्तिमार्ग की सरलता और सहजता का प्रतिपादन हुआ है, वहीं दूसरी ओर; गोपियों के उपालम्भ के द्वारा सूरदास की तीव्र सम्वेदनशीलता, भावुकता और अद्‌भुत काव्य-प्रतिभा का परिचय मिला है। गोस्वामी जी के लिए भी यह प्रसंग रुचिकर और स्वभावानुकूल था। धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में व्याप्त अराजकता, विद्वेष और संघर्ष के शमन के लिए वे आजीवन प्रयत्नशील रहे। मानस तथा अन्य ग्रन्थों के माध्यम से उन्होंने निर्गुण-सगुण, शैव-वैष्णव, ज्ञान-भक्ति आदि को लेकर उत्पन्न विवादों को दूर करते हुए

सामञ्जस्यवादी मार्ग निकाला। सूरदास ने भ्रमरगीत के माध्यम से निर्गुण पर सगुण की प्रतिष्ठा की है, ज्ञान से भक्ति को श्रेष्ठ बताया है। तुलसीदास ने यद्यपि अन्य ग्रन्थों में निर्गुण ब्रह्म की अवहेलना नहीं की है और भक्ति का पक्ष लेते हुए भी ज्ञान का तिरस्कार नहीं किया है, तथापि श्रीकृष्ण गीतावली में वह सूर के अधिक निकट दिखाई पड़ते हैं। यहाँ वह नारी और योग की असंगति का प्रश्न उठाते हैं (पद संख्या ३३), निर्गुण-निर्विकार ब्रह्म की खिल्ली उड़ाते हैं (पद संख्या ३८), भक्तिमार्ग की सरलता का प्रतिपादन करते हैं (पद संख्या ५१) और नीरस ज्ञानमार्ग की दुरूहता पर आक्षेप करते हैं।

श्रीकृष्ण गीतावली के उद्धव-गोपी सम्वाद का दार्शनिक-धार्मिक दृष्टि से महत्त्व है ही, उसका साहित्यिक तथा मनोवैज्ञानिक पक्ष भी अत्यन्त सबल है। तुलसी की गोपियाँ नन्ददास की गोपियों के समान तर्कपटु और वाक्-चुर कम, सूर की गोपियों के समान भाव-विह्वल और सम्वेदनशील आधिक हैं। उद्धव के विचित्र उपदेश को सुनकर वे स्तब्ध रह जाती हैं। उन्हें विश्वास ही नहीं होता कि उनके प्रिय कृष्ण ने इतना निष्ठुर सन्देश भेजा होगा। अपने अविश्वास को वे कई प्रकार से व्यक्त करती हैं और तभी उन्हें कुब्जा की याद आती है। बस, फिर क्या था? उनका ईर्ष्याजन्य आक्रोश कुब्जा पर बरस पड़ता है। वे कहती हैं–

मधुप! तुम्ह कान्ह की ही कही क्यों न कही है?
यह बात कही चपल चेरी की निपट चचेरीयै रही है।
कब ब्रज तज्यो, ग्यान कब उपज्यो? कब विदेहता लही है?
गये बिसारि रीति गोकुल की अब निर्गुन गति गही है।

एक अन्य पद में गोपियों का उद्धव के दूत कर्म के प्रति सन्देह और कुब्जा के प्रति झुँझलाहट और क्रोध इस प्रकार व्यक्त हुआ है–

मधुकर! कान्ह कही तें न होही!
कै ये नई सीख सिखई हरि निज अनुराग बिछोही।
राखी सचि कुबरी पीठ-पर ये बातें बकुचौंही।
स्याम सो गाहक पाइ सयानी खोलि दिखाई है गौंही।

इसी प्रकार, गोपियाँ कभी उद्धव की हँसी उड़ाती हैं, कभी उन पर व्यंग्य करती हैं, कभी कृष्ण के प्रति अपनी अटूट निष्ठा व्यक्त करती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि तुलसीदास ने ब्रज भाषा काव्य और कृष्ण-कथा में भी अपनी उसी रुचि, गहरी पैठ और कलात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है, जैसी कि अवधी भाषा और रामकथा में। यद्यपि श्रीकृष्ण गीतावली एक लघु काव्य है, तथापि समकालीन कृष्ण-काव्यों में सूरसागर के बाद दूसरे स्थान का अधिकारी है।

●

जायसी के काव्य में सामाजिक चिन्तन एवं युगबोध

डॉ. रवि कुमार गोंड़*

शोध-सार : भक्तिकालीन प्रेममार्गी कवि जायसी के काव्य में लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की गयी है। उनकी रचनाओं में निहित प्रेम ईश्वर-प्राप्ति का माध्यम है और सामाजिक समरसता एवं युगबोध का प्रतीक है। उन्होंने भावात्मक भावभूमि पर जीव और ब्रह्म की परिकल्पना रहस्यवाद के रूप में की है, जिसमें जीवनबोध के साथ-साथ युगबोध का अनुपम सामंजस्य है। जायसी ने अपने काव्य में 'अनलहक' की बात कही है और नारी को ब्रह्म का प्रतीक माना है। इनके काव्य में हिन्दू-मुस्लिम एकता, गुरु-महत्ता, सौन्दर्य-भावना, प्रकृति-दर्शन, हठयोग तथा शैतान आदि का चित्रण बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है।

बीज शब्द : गुरु, तन, मन, बुद्धि, सुआ, जगत, धन्धा, सामाजिक युगबोध, समाजशास्त्रीय वर्णन, भक्ति और ज्ञान, प्रकृति-चित्रण, मसनवी शैली।

मूल आलेख : मलिक मुहम्मद जायसी भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा के श्रेष्ठ प्रेमाख्यानक कवि माने जाते हैं। इनका जन्म सन् १४६४ ई. में उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के जायस नामक स्थान पर हुआ था। १५४२ ई. में इनकी मृत्यु हो गयी थी। जायसी द्वारा लिखित 'पद्मावत' ग्रन्थ (१५४० ई.) प्रेमाख्यानक काव्यधारा की श्रेष्ठ रचना है। उनके द्वारा लिखित और भी रचनाओं का परिचय मिलता है, जैसे– अखरावट, आखिरी कलाम और मसलानामा। कुछ विद्वान् कन्हावत और कहरानामा को भी जायसी की रचना मानते हैं, परन्तु इसकी अभी पुष्टि नहीं हो सकी है। पद्मावत ग्रन्थ मसनवी शैली में लिखी गयी सुन्दर रचना है। इसकी भाषा अवधी है। इस कृति में गुरु, तन, मन, बुद्धि, सुआ, जगत, धन्धा आदि दार्शनिक शब्दों का प्रयोग मिलता है, जिसमें युगबोध का दृश्य परिलक्षित होता है। कवि जायसी कहते हैं–

'मैं एहि अरथ पण्डितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा।।'

× × × ×

'तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुद्धि पदमिनी चीन्हा।।
गुरु सुवा जेहि पन्थ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धन्धा। बाँचा सोइ न एहि चित बन्धा।।'[१]

मलिक मुहम्मद जायसी के काव्य में लोकजीवन का दर्शन होता है, जिसमें सामाजिक युग-बोध का पुट निहित है। इनके काव्य में हिन्दू-मुस्लिम की सामाजिक एकता का चित्रण दिखाई पड़ता है। इतना ही नहीं; बल्कि उदारवादी दृष्टि के साथ-साथ सहिष्णुता की भावना का भी दृश्य देखा जा सकता है। कवि जायसी लिखते हैं–

'विरिछ एक लागी दुई डारा। एकहिं ते नाना परकारा।।
मात के रक्त पिता के बिन्दू। उपजे दुवौ तुरक औ हिन्दू।।'[२]

जायसी की दृष्टि बहुत ही सूक्ष्म थी। उन्होंने ग्रामीण प्रवेश का सूक्ष्म अवलोकन किया था। उन्हें स्त्री-विरह के सामाजिक बोध का ज्ञान था। वह माँग में निहित सिन्दूर की बात करते हुए स्त्री-सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। वह स्त्री के सामाजिक युगबोध का वर्णन मनोवैज्ञानिक ढंग से करते

* सहायक प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-११०००७

हुए लिखते हैं–

'बसौ माँग सीस उपराहीं। सेन्दुर अबही चढ़ा जेहि नाहीं।।
बिनु सेन्दूर अस जानत दीआ। उजियर पंथ रैनि महँ कीआ।।
नैन बाँक सरि पूज न कोऊ। मानसरोदक उलथहि दोऊ।।
राते कँवल कारहि अलि भँवा। घूमति माति चहहि उपसवा।।
अधर सुरंग अमी रस भरे। बिम्ब सुरंग लाजि बन फरे।।
फूल दुपहरी जानौ राता। फूल झरहि ज्यों-ज्यों कहबाता।।'[३]

जायसी ने प्रेम और सौन्दर्य के माध्यम से स्त्री के विरह को आत्मा और परमात्मा से जोड़ने का कार्य किया है। उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि एक स्त्री किस प्रकार से अपने जीवन के द्वन्द्व से लड़ते हुए अपने दिन को व्यतीत करती है। पति के दूर चले जाने पर उसका क्या हाल होता है? इसका समाजशास्त्रीय वर्णन जायसी ने बड़े ही प्रभावी ढंग से किया है। कवि जायसी लिखते हैं–

'पिउ वियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा नित-बोले पीऊ-पीऊ।।
अधिक काम दाधै सौ रामा। हरि लेई सुवा गएउ पिउ नामा।।
पिउ से कहेउ संदेसड़ा, हे भौरा हे काग।
सो-धनि विरहै जरि मुइ, तेहि क धुंआ मोंहि लाग।।
जिन्ह घर कन्ता ते सुखी, तिन्ह कान्हौ तिन्ह गर्व।
कंत पियारा बाहिरे, हम सब भूला सर्व।।
बरसै मघा झकोरि-झकोरी। मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी।।
पुरवा लाग भूमि जल पूरी। आक जवास भई तस झूरी।।'[४]

जायसी के काव्य में प्रकृति-चित्रण का समावेश है। वह सूफी सन्त थे। सूफी सन्तों ने प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन– दोनों रूपों का वर्णन सजीव रूप में किया है। जायसी के काव्य में ऋतु दर्शन, चाँद, पौधे, वृक्ष, नदी, पहाड़ आदि का दृश्य देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त; उसमें ब्रह्म का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। कवि जायसी रहस्यवादी शैली का प्रयोग करते हुए लिखते हैं–

'कातिक सरद चन्द उजियारी। जग सीतल हौं विरहै जारी।।
चौदह करा चाँद परगासा। जनहु जरै सब धरति अकासा।।'[५]

जायसी ने स्त्री को ब्रह्म का प्रतीक माना है। उनका मानना है कि नारी गुणों की खान होती है। उसके अन्दर ईश्वर का वास होता है। वह सामाजिक युग की दृष्टि से समाज में स्त्री की प्रतिष्ठा को स्थापित करते नजर आते हैं। कवि जायसी लिखते हैं–

'रवि शशि नखत दिपहि ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती।।
जहँ-जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी। तहँ-तहँ छिटकि जोति परगसी।।'[६]

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी रचनाओं में लक्षणा एवं व्यंजना का प्रयोग बहुल रूप में किया है। वह बड़ी ही चतुराई से भक्ति और ज्ञान का सहारा लेते हुए स्त्री के प्रति समाज को सद्ज्ञान का पाठ पढ़ाते हैं। वह समाज को ज्ञान देते हुए बताते हैं कि स्त्री की स्वतन्त्रता एवं उसके कार्य और महत्त्व की भूमिका कितनी अहम है और कितनी सार्थक। कवि जायसी लिखते हैं–

'ए रानी मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी।।

जब लगि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जौं खेलहु आजू।।
पुनि सासुर हम गौनब काली। कित हम कित एह सरवर पाली।।'[७]

निष्कर्ष : उपर्युक्त विवरणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि जायसी के काव्य में सामाजिक युग का चित्रण बहुत ही सूक्ष्म ढंग से मिलता है। एक तरफ प्रकृति का सुन्दरपन है, तो वहीं दूसरी ओर; आत्मा-परमात्मा का दर्शन समाहित है। पद्मावत ग्रन्थ में तो स्त्री-संघर्ष, साहस, विरह, सिंगार, कर्तव्यबोध आदि का कुशल ज्ञानबोध दिखाई पड़ता है। जायसी साहित्य-जगत में सूफी सन्त कवि के रूप में हमेशा सम्माननीय एवं आदरणीय रहेंगे।

सन्दर्भ-सूची

१. डॉ. जगदीश कुमार प्रजापति– हिन्दी साहित्य का इतिहास : प्रवृत्यात्मक अध्ययन, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या, संस्करण – २००२, पृष्ठ १०७
२. वही– पृष्ठ १११ ३. वही– पृष्ठ ११४
४. वही– पृष्ठ ११५
५. डॉ. राम अँजोर सिंह तथा अन्य– हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास, हिन्दी पत्रकारिता एवं निबन्ध-लेखन, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या-फैजाबाद, २००३, पृष्ठ १४७
६. वही– पृष्ठ १४७ ७. वही– पृष्ठ १४८

अन्य सहायक ग्रन्थ

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– जायसी ग्रन्थावली, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. २००७
२. परशुराम चतुर्वेदी– सूफी महाकवि जायसी, भारत प्रकाशन मन्दिर, सं. १९६६
३. डॉ. शिवसहाय पाठक– मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य, ग्रन्थम, कानपुर, सं. १९६४
४. मलिक मुहम्मद जायसी– पद्मावत, स्पेस पब्लिशिंग हाउस, द्वितीय संस्करण-२०१६
५. हरिमोहन– मलिक मुहम्मद जायसी, गौतम बुक कं., सं. २०१२

●

भारतीय ज्ञान परम्परा का नैतिक स्वरूप माधव कौशिक के खण्डकाव्यों के विशेष सन्दर्भ में

सौरभ सिंह*

शोध-सार– भारतीय ज्ञान परम्परा ज्ञान-विज्ञान और जीवन-दर्शन का अद्भुत संगम है। यह ज्ञान रूपी सागर हिमालय से नि:सृत सैकडों नदियों के सतत् प्रवाह का परिणाम है, जो ज्ञान के अनुभव एवं अवलोकन के कठोर प्रयोग से विकसित हुआ है। भारतीय ज्ञान परम्परा आधुनिक विज्ञान, ज्योतिष, आयुर्वेद, कर्म, धर्म, त्याग, तपस्या तथा लौकिक और पारलौकिक ज्ञान का अक्षय पात्र है। हर युग में साहित्यकारों ने इस पर अपनी कलम चलाकर युगबोध को अपनी रचनाओं से सार्थक किया है। इसी परिप्रेक्ष्य में, माधव कौशिक भारतीय ज्ञान परम्परा के ध्वजवाहक समकालीन साहित्यकार हैं। विवेच्य रचनाकार द्वारा भारतीय लोक-परम्परा के मिथकों एवं पौराणिक आख्यानों के माध्यम से भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। रचनाकार द्वारा आख्यानों एवं मिथकों का प्रयोग मात्र कथा को पुन: दोहराने व कह देने भर से नहीं है। उनका उद्देश्य तो प्राचीन होते हुए नैतिक मूल्यों के आवरण में समकालीन समस्याओं को चित्रित करने से है। उनकी ये रचनाएँ परम्परा से प्राप्त प्राचीन होते नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना करती हैं। इस शोध-पत्र में माधव कौशिक के खण्डकाव्यों– 'सुनो राधिका' एवं 'लौट आओ पार्थ' के माध्यम से भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है, जिसका उद्देश्य भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों में आस्था को पुनर्जीवित करना है तथा इसके लिए आवश्यक है कि हम भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग रहे वेदों, उपनिषदों और पुराणों में वर्णित प्राचीन मूल्यों, जैसे– सत्य, अहिंसा, प्रेम, शील, बन्धुता, समता, समरसता व मानवता, वसुधैव कुटुम्बकम् तथा लोक-मंगल एवं लोक-कल्याण आदि को पुन: व्यावहारिक और नैतिक धरातल पर उतार सकें।

बीज शब्द– सत्य, अहिंसा, समता, समरसता, मानवता, मिथक, लोक-मंगल, लोक-कल्याण, वैयक्तिक, उपयोगितावाद, गद्यकविता, कर्मवाद।

मूल आलेख– भारतीय ज्ञान परम्परा विशाल सभ्यता से परिपूर्ण पृथ्वी पर मानव-अस्तित्व के साथ जुड़ी जीवन-प्रणाली है, जिसमें दर्शन, विज्ञान, कला और साहित्य का अद्भुत समावेश है। यह सम्पूर्ण परम्परा सदियों से विभिन्न भाषिक समुदायों के सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक सम्पर्क से विकसित हुई, जिसमें समय के साथ-साथ अनेक प्रकार के सकारात्मक और नकारात्मक– दोनों ही बदलाव देखने को मिले। भारत में ज्ञान की परम्परा एक से अधिक संस्कृतियों का समागम है, जिसकी झलक हमें विविध ज्ञान-प्रणाली तथा जीवन-मूल्यों में दिखाई देती है। आधुनिक काल में भारतीय ज्ञान परम्परा के सम्वाहक रचनाकारों में समकालीन हिन्दी साहित्य के पुरोधा कवि, गजलकार, लेखक माधव कौशिक जी का नाम समादृत है।

समकालीन हिन्दी साहित्य में माधव कौशिक पद्य और गद्य– दोनों विधाओं में लेखन-कार्य करने वाले सिद्धहस्त साहित्यकार हैं, जिनकी वर्ष २०२४ तक ३७ से अधिक प्रकाशित रचनाएँ

* शोधार्थी– हिन्दी विभाग, बिड़ला परिसर, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल), उत्तराखण्ड

इसका प्रमाण हैं। उनकी लेखन-यात्रा का प्रारम्भ १९८६ में एक गज़लकार के रूप में हुआ और यह लेखन-यात्रा आगे चलकर नवगीतकार तथा कवि के रूप में परिणत हुई। उन्होंने एक ओर गज़ल, नवगीत और कविता जैसी छन्द-बद्ध रचनाएँ कीं, तो वहीं दूसरी ओर; आधुनिक युग में प्रचलित छन्द-मुक्त या गद्य-कविता का सृजन किया। छन्द-युक्त रचना-शैली से छन्द-मुक्त रचना-शैली की यात्रा में 'सुनो राधिका' और 'लौट आओ पार्थ' जैसे दो महत्त्वपूर्ण खण्डकाव्य प्रमुख हैं। उनके विधागत वैविध्य को इंगित करते हुए उदयभानु हंस लिखते हैं कि– ''यह सुनिश्चित है कि मुक्त-छन्द का काव्य भी वही कवि लिख सकता है, जो छन्दोबद्ध काव्य का सर्जक है। आपका मुक्त-छन्द और उसमें रचित यह काव्य वही कविता है, जिसमें कहीं बौद्धिकता, चिन्तन, विचार-प्रवाह ने उसे बोझिल, दुर्बोध नहीं होने दिया। यदि इसे 'गद्यकविता' या 'गद्यकाव्य' भी कहा जाए, तो यह गद्य से सर्वथा भिन्न है। यह बाणभट्ट का गद्य है, जो कवित्व की कसौटी है, किन्तु कादम्बरी की तरह न तो यह क्लिष्ट है, न कल्पना-बाहुल्य से चमत्कृत और न ही अस्पष्ट। ललित गद्य लिखकर भी बाणभट्ट को अन्ततः 'कवि' कहा और माना गया है।''[१]

प्रत्युत इसी छन्द-बद्ध से मुक्त-छन्द तक की लेखन-यात्रा का परिणाम 'सुनो राधिका' और 'लौट आओ पार्थ' खण्डकाव्य है। इन खण्डकाव्यों में भारतीय जीवन-परम्परा के प्रेरक तत्त्वों को मुक्त छन्द में रखते हुए भी लेखक भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित मिथकों को पुनर्स्थापित करने का सार्थक प्रयास करते हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य में भगवान् श्रीकृष्ण को मिथकीय रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास होता रहा है, जिसमें हरिऔध कृत 'प्रियप्रवास' (१९१४) और धर्मवीर भारती कृत 'कनुप्रिया' (१९५९) के उपरान्त, माधव कौशिक की 'सुनो राधिका' और 'लौट आओ पार्थ' को रखा जा सकता है। इन रचनाओं में मिथकों का प्रयोग एक परम्परा के रूप में दिखाई देता है। साहित्यकार मूल्यों और सिद्धान्तों के प्रतिपादन एवं उनकी अभिव्यक्ति के लिए मिथकों का प्रयोग करते हैं। समकालीन साहित्यकार माधव कौशिक अपनी 'सुनो राधिका' और 'लौट आओ पार्थ' रचनाओं में मिथकों का उत्कृष्ट प्रयोग करते हैं। उन्होंने भारतीय परम्परा के विराट् पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण को अपने काव्य का आधार बनाकर दोनों खण्डकाव्यों की रचना की। इन रचनाओं में मिथकों का उपयोग समकालीनता के सन्दर्भ हुआ है। जिस उपयोगितावादी दृष्टि के सम्बन्ध में डॉ. वेद प्रकाश गौतम लिखते हैं कि– ''मिथकों और पुराख्यानों को नये ढंग से व्याख्यायित करने के प्रयास हिन्दी-कविता में बराबर होते रहे हैं। समकालीन कविता में द्वापर, विशेषतः महाभारत के सन्दर्भ, वर्तमान मूल्य-विघटन के बयान के लिए कदाचित् अधिक उपयुक्त पाये गये हैं। राधा को आधार बनाकर धर्मवीर भारती ने 'कनुप्रिया' में युद्धोत्तर मनःस्थितियों को व्यक्त करने का सफल प्रयास किया था। लेकिन 'कनुप्रिया' में राधा के माँसल शरीर और संयोग के क्षणों की सुधि कुछ अधिक मुखर है। 'सुनो राधिका' में माधव कौशिक आलिंगन-परिरंभन के अतीत में न जाकर समकालीन परिदृश्य को पूरी तरह से केन्द्र में रखते हैं। कृष्ण की सोच और अवलोकन-बिन्दु से अतीत के कुछ पृष्ठ पलटते जाते हैं और उनकी व्याख्या-पुनर्व्याख्या में आज की विसंगतियाँ खुलती चली जाती हैं।''[२]

इस प्रकार, हिन्दी कविताओं में मिथकों और पुराख्यानों की नयी व्याख्या का प्रयास निरन्तर होता रहा है। समकालीन कविता में महाभारत के सन्दर्भों का उपयोग वर्तमान मूल्य-विघटन को व्यक्त करने के लिए माधव कौशिक का प्रयोग उत्कृष्ट है। माधव कौशिक राधा के शृंगार वर्णन को महत्त्व न देकर 'सुनो राधिका' में समकालीन परिदृश्य को केन्द्र में रखते हैं और

कृष्ण के दृष्टिकोण से अतीत और वर्तमान की विसंगतियों को उजागर करते हैं। 'लौट आओ पार्थ' में वे अर्जुन को महाभारत-युद्ध के बाद उत्पन्न हुए अनास्था के दौर में भी कर्मवाद के माध्यम से आशावादी बने रहने का सन्देश देते हुए दिखते हैं–

''सव्यसाची ! / भोर पहले / नहीं होता उजाला /
इसलिये कहता हूँ मैं / विश्वास के दीपक जलाओ /
पार्थ ! / मेरी बात मानो, लौट आओ।''[३]

'सुनो राधिका' खण्डकाव्य स्वगत कथन शैली में पाँच सर्गों में रचित है, जिसमें कौशिक जी ने भगवान् श्रीकृष्ण को एक समाज-चेता के रूप में चित्रित किया है। प्रस्तुत रचना में श्रीकृष्ण राधिका के माध्यम से उस सम्पूर्ण समाज के साथ-साथ स्वयं का भी विश्लेषण व आत्मावलोकन करते हुए प्रतीत होते हैं। रचना में माधव कौशिक ने महाभारतकालीन समय को आधार बनाकर तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक समस्याओं को चित्रित करने का प्रयास किया है, साथ ही; उनकी काव्य-रचना का मूल उद्देश्य मिथकों के माध्यम से वर्तमान समाज में व्याप्त समस्याओं और उनके समाधान को प्रस्तुत करने से है। इसकी सामाजिकता के सम्बन्ध में माधव कौशिक स्वयं लिखते हैं कि– ''सुनो राधिका काव्य, भगवान् श्रीकृष्ण की महान सामाजिक दृष्टि और मौलिक विचारधारा को अभिव्यक्त करने की दिशा में एक तुच्छ प्रयास भर है।''[४]

भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रेम और समाजसेवा को जीवन के उच्च आदर्शों के रूप में स्थान दिया गया है। प्रेम को केवल व्यक्तिगत या दैहिक भावनाओं तक सीमित न रखते हुए इसे मानवता, प्रकृति और समस्त जीवों के प्रति गहन करुणा और स्नेह के रूप में देखा गया है। इस परम्परा में प्रेम को आत्मा का मूल स्वभाव माना गया है, जो मनुष्य को स्वार्थ से परे ले जाकर समाज और विश्व-कल्याण के लिए प्रेरित करती है। माधव कौशिक की 'सुनो राधिका' में कृष्ण और राधा का प्रेम-वर्णन, राधा का समाजसेवी रूप तथा युद्धोत्तर विभीषिका का विस्तृत विवेचन किया गया है। वे कृष्ण और राधा के प्रेम-वर्णन को माँसल रूप में अभिव्यक्ति न देकर, उसे एक ऊर्जा पुञ्ज के रूप में व्याख्यायित करते हैं। माधव कौशिक की 'सुनो राधिका' में कृष्ण और राधा के प्रेम को आध्यात्मिक ऊर्जा-स्रोत के रूप में चित्रित किया गया है। इन कृतियों में राधा को एक समाजसेवी के रूप में प्रस्तुत करते हुए युद्धोत्तर विभीषिका का गहन विश्लेषण किया गया है। उनका प्रेम माँसलता से परे, एक प्रेरणादायक शक्ति के रूप में उजागर होता है, जो भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रेम का आदर्श रूप है–

''किन्तु सबसे अधिक तो मैंने/तुमसे सीखा है/तुम्हीं से जाने हैं जीवन-मूल्यों को /सृजित करने के सूत्र/तुम्हीं ने दी है दृष्टि/तुम्हीं ने प्रदान किया है दृष्टिबोध/तुम्हीं ने प्रशस्त किया है दृष्टिपथ/केवल तुम्हीं हो दिव्य।''[५]

भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रेम को केवल वैयक्तिक भावना नहीं माना गया है, बल्कि इसे समस्त सृष्टि और प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने का माध्यम समझा गया है। प्रेम को मनुष्य के आत्मिक और बौद्धिक विकास के लिए आवश्यक माना गया है, क्योंकि यह हमें सम्पूर्ण प्रकृति के रहस्यों को जानने की दृष्टि प्रदान करता है। प्रेम के माध्यम से मनुष्य प्रकृति के अदृश्य प्रतीत होने वाले रहस्यों का साक्षात्कार करता है और उसमें छिपे सौन्दर्य का आस्वादन करने की शक्ति प्राप्त करता है। इस परम्परा में प्रेम को केवल निजी अनुभव न मानकर, जीवन और सृष्टि के साथ एकात्मकता और सामंजस्य स्थापित करने का साधन माना गया है। माधव

कौशिक 'सुनो राधिका' में ऐसे प्रेम की स्थापना करते हैं–

''वही प्रेम/जो दृष्टि देता है/और दिव्यता भी/सौन्दर्य देता है/और सौन्दर्य-बोध भी/क्षमता प्रदान करता है प्रकृति की/रहस्यमयी वाणियाँ सुनने की/विलुप्त रंगों को देखने की/वायु में तैरते स्वरों की/सुरमंडलों को समझने की/तभी व्यक्ति स्वयं को विराट का/अंश होते प्रतीत करता है/अनुभव करता है/रक्त में बजती वीणाएँ/रोम-रोम में अनुगुँजित/जलतरंग का / आस्वादन करता है।''[६]

भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्मवाद का सिद्धान्त प्रमुख स्थान रखता है, जो यह मानता है कि हर व्यक्ति का वर्तमान और भविष्य उसके द्वारा किए गए कर्मों पर आधारित होता है। कर्मवाद के अनुसार, व्यक्ति का भाग्य उसके अपने कार्यों का परिणाम है और व्यक्ति अपने कर्मों के माध्यम से अपने जीवन को सुधार सकता है। गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण कर्मफल का महत्त्व बताते हैं। 'जैसा कर्म, वैसा फल' के आधार पर व्यक्ति को नैतिकता, धर्म और आत्मानुशासन के मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है। कर्मवाद न केवल व्यक्ति के आत्मिक विकास को प्रेरित करता है, बल्कि समाज में नैतिक और आध्यात्मिक संतुलन बनाए रखने में भी सहायक है। माधव कौशिक की 'लौट आओ पार्थ', पाण्डवों के महाप्रस्थान पर्व पर लिखी गयी रचना है, जिसमें लेखक पाण्डवों की पलायन-प्रवृत्ति के विरोध में कर्मवाद के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करने का सन्देश देते हैं–

''ज़िंदगी से भागना / अपराध भी है / पाप भी है।''[७]

यथा, एक अन्य उदाहरण में–

''आप जैसे धनुर्धर का / कर्म है निर्माण करना /
संस्कृति के उस / भुवन का / जिसकी नींवें हो / कहीं
पाताल में / और शिखर छूता हो नीले अंबरों को।''[८]

पलायनवादी सोच के विरोध में लेखकीय प्रतिबद्धता कुछ ऐसी है कि वे भारतीय ज्ञान परम्परा के उच्च आदर्शों को स्थापित करने के लिए मिथकीय कथानक को फेण्टेसी में बदलने में भी संकोच नहीं करते। इस विषय में डॉ. राजेन्द्र टोकी लिखते हैं कि– ''महाभारत या किसी पौराणिक ग्रन्थ में कृष्ण का ऐसा कोई कथन नहीं मिलता। वैसे भी पाण्डवों के महाप्रस्थान से पहले कृष्ण की मृत्यु हो चुकी थी। ऐसे में, कृष्ण का पाण्डवों को पलायन के मार्ग पर जाने से रोकना एक 'फैण्टेसी' है। इस प्रकार, यह काव्य एक फैण्टेसी ही है। अत: यह कहना गलत न होगा कि कृष्ण, वास्तव में; माधव कौशिक ही हैं, जो एक पौराणिक प्रसंग का सहारा लेकर अपनी बात कह रहे हैं। सम्भवत: यही कारण है कि पौराणिकता के झीने आवरण में से हम अपना ही समाज, उसमें पनपता नैराश्य, विषाद, हताशा झाँकते हुए देखते हैं।''[९]

मिथकों की कथा के अनुसार, पाण्डवों के महाप्रस्थान से पूर्व ही भगवान् श्रीकृष्ण की मृत्यु हो जाती है, किन्तु रचनाकार श्रीकृष्ण के बहाने पाण्डवों को महाप्रस्थान से लौटने के सन्देश के साथ ही उन्हें कर्तव्य के मार्ग पर चलने का उपदेश देते हैं। इन्हीं मूल्यों के सम्प्रेषण के लिए माधव कौशिक 'लौट आओ पार्थ' खण्डकाव्य में फैण्टेसी शिल्प का प्रयोग करते हैं–

''तुम सदा विचलित रहोगे / हर दफा फेंकोगे अपने अस्त्र /
लेकिन, हर दफा मैं / सारे संशयों को मिटाकर /पुनः तुम्हें

कर्त्तव्य-पथ पर / अग्रसर रहने की / अंतिम सीख दूँगा।''[१०]

'सुनो राधिका' में राधा, श्रीकृष्ण को अपना विस्तार करने को कहती हैं। प्रत्युत यह विस्तार वैयक्तिक व निज-कल्याण की अपेक्षा विश्व-कल्याण की बात करता है, साथ ही; श्रीकृष्ण को आत्मचेतस से विश्वचेतस होने की प्रेरणा देता है, जिससे सम्पूर्ण विश्व का कल्याण हो सके। माधव कौशिक कृष्ण के माध्यम से वैदिक युग के महापुरुषों के समान बहुआयामी होने की बात करते हैं। वे एक ही साँचे में फिट होने वाले आधिभौतिक युग के महामानव को अपनी क्षमताओं के विस्तार एवं विश्वचेतस होने को कहते हैं–

''अपनी असीमितता को / सीमित मत करो /
फैलने दो इसे / दिग्-दिगंत में / धूप, वायु सदृश /
विलीन होने दो / दसों दिशाओं में / सुनो ! /
विस्तार करो स्वयं का।''[११]

भारतीय ज्ञान परम्परा में धर्म का महत्त्व अत्यन्त व्यापक और गहन है, जो मानव-जीवन और समाज के संचालन का मूल आधार है। धर्म का अर्थ सामान्यत: धारण करने से लिया जाता है, अर्थात् जो धारणीय हो, वही धर्म है। भारतीय संस्कृति में मनुष्य ने जीवन को सुगम बनाने के लिए सत्य, अहिंसा, दया, करुणा और लोक-कल्याण जैसे नैतिक मूल्यों को धर्म का आधार माना है। वैदिक साहित्य में इन मूल्यों का विशेष उल्लेख मिलता है। वैदिक युग में धर्म न केवल व्यक्तिगत जीवन को संचालित करता था, बल्कि समाज को नैतिकता, अनुशासन और न्याय प्रदान कर उसकी प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त करता था। इसी अवधारणा के साथ माधव कौशिक ने 'लौट आओ पार्थ' में मानवता और धर्म को सर्वोपरि माना है–

''जानता है कौन / मानवता बड़ी है / मानवों से /
सोचता है कौन / धरती से बड़ा है /
धर्म अपना।''[१२]

इसी तरह, 'सुनो राधिका' में वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने धर्म की प्रतिस्थापना हेतु कभी आदेश, उपदेश, मैत्री तथा कभी अग्रज का स्वर अपनाया है। यही भारतीय ज्ञान परम्परा की समन्वयवादी दृष्टि रही है–

''मानव अस्तित्व को / बचाने के लिए / धर्म की प्रतिष्ठापना
के लिए /सर्जनात्मकता की रक्षा हेतु / कभी आदेश का स्वर /
कर्कश हुआ / तो कभी / उपदेश का स्नेहिल स्पर्श /
कभी मैत्री के भाव का सुझाव / तो कभी अग्रज का स्नेह।''[१३]

भारतीय ज्ञान परम्परा वैदिक काल से ही ज्ञान और कलाओं को सम्पूर्णता में समेटे हुए है। उसमें जहाँ धर्म और अध्यात्म की बातें हैं, तो वहीं विज्ञान की अनेक विद्याओं, जैसे– आयुर्वेद, चिकित्सा, अर्थ और राजनीति आदि भी हैं। वैदिक काल से ही कलाओं का अपना अलग और विशेष महत्त्व रहा है। ये कलाएँ मनुष्य के वैयक्तिक विकास में सहायक हैं। कलाओं के महत्त्व पर दृष्टिपात करते हुए 'सुनो राधिका' में माधव कौशिक कहते हैं कि ये कलाएँ ही मनुष्य को नर से नारायण और अति इन्द्रिय हो जाने के सुगम और सहज साधन हैं, जो निरन्तर उसे ईश्वर के समान गुणों वाली बना देती हैं–

''क्या हैं कलाएँ? / जीवन जीने की / अनुपम शैली /

इंद्रिय से अतींद्रिय हो जाने की / अनूठी और अप्रतिम राह ! /
कला, कौशल, शिल्प / नृत्य, नाट्य, संगीत / घ्राण, रस, रंग,
गंध से / जुड़े सभी अवयव / नर को नारायण बनाने के / सहज
और सुगम साधन हैं।''[१४]

भारतीय ज्ञान परम्परा में लोक-मंगल की कामना प्रमुख है। माधव कौशिक के खण्डकाव्य रागात्मकता को लोक-मंगल से लेकर लोक-कल्याण तक जोड़कर देखने के हिमायती हैं। उनके खण्डकाव्यों में रागात्मकता वैयक्तिक नहीं, प्रत्युत सामाजिक स्तर पर दिखाई देती है, जिससे सम्पूर्ण समाज के लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सके। 'लौट आओ पार्थ' खण्डकाव्य की भूमिका में माधव कौशिक लिखते हैं कि– ''ऐतिहासिक तथ्यों तथा जीवन के सत्यों की तरह साहित्य का भी अपना सच होता है। साहित्य का सच सबसे अधिक मार्मिक, आत्मीय तथा मानवीय होता है। साहित्य के इस सच का अन्तिम लक्ष्य तथा ध्येय लोक-कल्याण तथा लोक-मंगल की भावना से जुड़ा है। इसलिए साहित्य का सत्य जीवन के सत्य से विपरीत भी चला जाय, तो भी अपनी सृजनात्मक संरचना में यह विराट् तथा उदात्त रहता है। साहित्य की इसी विराटता और उदात्तता में समाज की कुशलता और विस्तार की प्रवृत्ति फलती-फूलती और बलवती होती है।''[१५] इस प्रकार, यदि समाज के स्तर पर रागात्मक सम्बन्ध का अभाव हो, तो सम्पूर्णता सम्भव नहीं है। समाज को लोक-मंगल के साथ लोक-कल्याण के मार्ग पर जाने के लिए परस्पर रागात्मिका भाव को अपनाना पड़ेगा–

''रागात्मकता के बिना / सम्पूर्णता सम्भव नहीं /
सम्भव नहीं मांगलिकता / और बिना लोक-मंगल के /
कहाँ से उतरेगा / लोक-कल्याण का मार्ग।''[१६]

निष्कर्षत: माधव कौशिक की कृतियाँ 'सुनो राधिका' और 'लौट आओ पार्थ' भारतीय ज्ञान परम्परा के गहन दर्शन को आधुनिक सन्दर्भों में सजीव करती हैं। इन रचनाओं में प्रेम, लोक-कल्याण, धर्म, राजनीति और मानवीय मूल्यों का अद्वितीय समावेश है। उन्होंने प्रेम को केवल व्यक्तिगत भावना तक सीमित न रखकर इसे मानवता, प्रकृति और समस्त सृष्टि के प्रति करुणा और स्नेह के व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है। प्रेम और समाजसेवा को परस्पर पूरक मानते हुए, उन्होंने भगवद्गीता के निष्काम कर्मयोग के सिद्धान्त को अपने साहित्य में जीवन्त किया है, जो न केवल आत्मिक विकास का मार्ग दिखाता है, बल्कि समाज को नैतिकता और स्थायित्व की दिशा में प्रेरित करता है। साथ ही; उन्होंने इन कृतियों के माध्यम से वैदिक काल की भारतीय ज्ञान परम्परा को आधुनिक सन्दर्भों में नये आयाम दिए हैं और मिथकीय पात्रों के माध्यम से नैतिकता और आदर्शों को स्थापित किया है। उपभोक्तावादी अपसंस्कृति के दौर में उनके साहित्य ने समाज को दिशा प्रदान करते हुए सांस्कृतिक और नैतिक पुनरुत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। यह साहित्य न केवल भारतीय परम्परा की गहराई को समझाता है, बल्कि उच्छृंखल समाज को परिष्कृत करने का सन्देश भी देता है।

सन्दर्भ-सूची

१. डॉ. लालचंद गुप्त मंगल– माधव कौशिक : सृजन की समीक्षा, विजया बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, २०२२, पृ. सं. १९९
२. वही– पृ. २१३

३. माधव कौशिक– लौट आओ पार्थ, सत-साहित्य भण्डार प्रकाशन, नई दिल्ली, २००१, पृ. १५
४. माधव कौशिक– सुनो राधिका, आई.बी.ए प्रकाशन, अंबाला कैण्ट, २००९, पृ. ०१ (भूमिका से)
५. वही– पृ. ६२
६. वही– पृ. ३७
७. वही– पृ. २५
८. वही– पृ. ३७
९. डॉ. लालचंद गुप्त मंगल– माधव कौशिक : सृजन की समीक्षा, विजया बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, २०२२, पृ. २२७
१०. माधव कौशिक– लौट आओ पार्थ, सत-साहित्य भण्डार प्रकाशन, नई दिल्ली, २००, पृ. ४५
११. माधव कौशिक– सुनो राधिका, आई.बी.ए प्रकाशन, अंबाला कैण्ट, २००९, पृ. ११
१२. माधव कौशिक– लौट आओ पार्थ, सत-साहित्य भण्डार प्रकाशन, नई दिल्ली, २००, पृ. ५८
१३. माधव कौशिक– सुनो राधिका, आई.बी.ए प्रकाशन, अंबाला कैण्ट, २००९, पृ. ४०
१४. माधव कौशिक– सुनो राधिका, आई.बी.ए प्रकाशन, अंबाला कैण्ट, २००९, पृ. ३८
१५. डॉ. लालचंद गुप्त मंगल– माधव कौशिक : सृजन की समीक्षा, विजया बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, २०२२, पृ. २०२
१६. माधव कौशिक– सुनो राधिका, आई.बी.ए प्रकाशन, अंबाला कैण्ट, २००९, पृ. ३८

●

हिन्दी साहित्य का शोकगीत : सरोज स्मृति

डॉ. पूजा सिंह*

महाकवि निराला ने हिन्दी साहित्य-जगत का प्रथम शोकगीत लिखा– 'सरोज स्मृति'। निराला आजीवन प्रियजनों का बिछोह ही सहते रहे। प्राणों से प्रिय पत्नी, भाई, भाभी– सभी की मृत्यु को निराला ने बर्दाश्त किया, किन्तु अपनी प्रिय पुत्री सरोज का असमय जाना निराला को अन्दर तक झकझोर गया। 'सरोज स्मृति' की एक-एक पंक्तियाँ एक पिता के मन की व्यथा को प्रतिबिम्बित करती हैं। शायद यही कारण है कि निराला का यह गीत हिन्दी साहित्य-जगत का प्रथम शोकगीत बन गया।

निराला की यह रचना बहुप्रशंसित, बहुचर्चित और महान शोकगीति है। आँसुओं से भींगी निराला की यह रचना शोकगीति के रूप में हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। किसी भी शोकगीत के निर्माण में कवि को तीन बातों का ध्यान रखना पड़ता है– प्रथम; अवसर तथा स्थान विशेष की व्यंजना, द्वितीय; तज्जनित भावों की व्यंजना और तीसरा; दार्शनिक समाप्ति अथवा अंत। डॉ. शकुन्तला दूबे ने लिखा है कि– ''एलिजी में कवि शोक प्रकट करने से पहले अपने प्रिय वियुक्त व्यक्ति से सम्बन्धित स्थान विशेष की याद करता है और उससे सम्बन्ध रखने वाली समस्त घटनाओं को एक-एक करके क्रमश: व्यंजित करता जाता है। उसके साथ व्यतीत किये हुए दिनों की सुखद स्मृतियाँ एक-एक कर उसके सामने आती जाती हैं और उसे व्याकुल बना देती हैं। तत्पश्चात् उसके अभाव में उसकी क्षति से उत्पन्न शोक हृदय से फूट पड़ता है। उसके शोकातुर हृदय के साथ पाठक भी तादात्म्य स्थापित करने लगता है। अन्तिम पदों में कवि की शोकातुर से उत्पन्न मूर्छा दूर होती हुई दिखाई पड़ती है। एक प्रकार से उसकी संज्ञा पुन: लौटती है और वह सचेत हो जाता है। यह संसार उसे क्षणभंगुर और नश्वर दिखाई देता है। समष्टि की व्यापक पीड़ा में वह अपने व्यक्तिगत दु:ख को भी एक छोटे से अंश के रूप में देखने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो उसे अपने दु:ख पर विजय प्राप्त हो गयी हो। जब भी वह दु:ख के विषय में सोचता है, तो उसका अपना दु:ख किसी गहरे दार्शनिक भाव में परिवर्तित हो जाता है।

'सरोज स्मृति' में निराला जी ने एक पिता के रूप में जिस प्रकार अपनी पुत्री के सम्पूर्ण जीवन को चित्रित करने का प्रयास किया है, वह अद्वितीय है। सरोज स्मृति नामक लम्बी कविता के आरम्भ में कविवर निराला अपनी स्वर्गीया पुत्री सरोज को सम्बोधित करते हुए कहते हैं–

'ऊनविंश पर जो प्रथम चरण / तेरा वह जीवन-सिन्धु तरण; / तनये, ली
कर दृक्-पात तरुण / जनक से जन्म की 'विदा' अरुण!
गीते मेरी, तज रूप-नाम, / वर लिया अमर शाश्वत विराम,
पूरे कर शुचितर सपर्याय / जीवन के अष्टादशाध्याय,
चढ़ मृत्यु-तरणि पर तूर्ण-चरण / कह– 'पित:, पूर्ण-आलोक वरण
करती हूँ मैं, यह नहीं मरण, / 'सरोज' का ज्योति:शरणं तरण।'

अर्थात् हे पुत्री! अपने जीवन के उन्नीसवें वर्ष में प्रवेश करते ही तू जीवन रूपी सागर को

* एसोसिएट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, सनबीम महिला कॉलेज, वरुणा, वाराणसी, उ.प्र.

पार कर गयी, अर्थात् तेरी मृत्यु हो गयी। हे बेटी! तूने अपनी यौवन भरी दृष्टि डालकर पिता से जन्म की विदा ले ली, अर्थात तू जन्म लेकर अपने पिता के पास आयी थी और अब दु:खद विदा लेकर चली गयी। हे मेरे गीतों की प्रेरणा! इस भौतिक संसार के नाम और रूप के बंधनों को तोड़कर तूने उस अमर शाश्वत मृत्यु का वरण किया और अपने जीवन के पवित्रतम १८ वर्ष सर्वांग रूप से पूरे कर तू शीघ्रता के साथ चरण बढ़ाकर मृत्यु रूपी नौका पर सवार हो गयी– यह कहती हुई कि– 'पिता जी! मैं आज पूर्ण प्रकाश का वरण कर रही हूँ। यह मेरा मरण नहीं है, अपितु आज तुम्हारी सरोज परम ज्योति की शरण में जा रही है।' लाल रंग दु:ख का प्रतीक है। इसी से दु:ख भरी विदा को अरुण कहा है। मृत्यु के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति है। कवि आगे कहता है–

'अशब्द अधरों का, सुना, भाष, / मैं कवि हूँ, पाया है प्रकाश
मैंने कुछ अहरह रह निर्भर / ज्योतिस्तरणा के चरणों पर।
जीवित-कविते, शत-शर-जर्जर / छोड़कर पिता को पृथ्वी पर
तू गई स्वर्ग, क्या यह विचार– 'जब पिता करेंगे मार्ग पार
यह, अक्षम अति, तब मैं सक्षम, तारूँगी कर गह दुस्तर तम?'
कहता तेरा प्रयाण सविनय/कोई न अन्य था भावोदय।
श्रावण-नभ का स्तब्धान्धकार / शुक्ला प्रथमा, कर गई पार।।'

अर्थात् मैंने संसार की मूक वेदना का हाहाकार सुना है। मैंने दिन-रात स्वरूप सरस्वती के चरणों में अपने आप को पूर्णरूपेण समर्पण करके कुछ आन्तरिक प्रकाश प्राप्त किया है। जीवित साकार कविता के समान सुन्दर है मेरी बेटी। सैकड़ों बाणों से घायल और जर्जर बने अपने माता-पिता को इस पृथ्वी पर छोड़ कर तू स्वर्ग चली गयी। क्या ऐसा करते समय तेरे मन में यह विचार आया था कि जब मेरे पिता जी जीवन रूपी मार्ग को पार करने का प्रयत्न करेंगे और अपने आप को अशक्त एवं असमर्थ पाएँगे, तब सामर्थ्यवान हो उनको इस पूर्ण अंधकार से पार उतार दूँगी? इस संसार से विनयपूर्वक तेरा प्रयाण यही घोषित करता है कि तेरे मन में अन्य कोई उदय नहीं हुआ। तू इस भाव को लेकर श्रावण मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को आकाश के गहन अन्धकार को पार करके चली गयी। वेदना और शोक के भावों की व्यंजना पूरी कविता में है। कवि सरोज से सम्बन्धित एक-एक घटना का स्मरण करता है और उसके हृदय से दारुण वेदना की हूक उठती है। पुत्री के लिए उसने जो किया और जो नहीं किया– दोनों ही उसके हृदय को सालते हैं। वह स्पष्टत: स्वीकार करता है–

'धन्ये, मैं पिता निरर्थक था, / कुछ भी तेरे हित न कर सका।
जाना तो अर्थोगमोपाय / पर रहा सदा संकुचित-काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर / हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।
शुचिते, पहनाकर चीनांशुक / रख सका न तुझे अतः दधिमुख।
क्षीण का न छीना कभी अन्न / मैं लख न सका वे दृग विपन्न;
अपने आँसुओं अतः बिम्बित / देखे हैं अपने ही मुख, चित्त।।'

अर्थात् अपने जीवन को सार्थक बना लेने वाली मेरी पुत्री! मैं व्यर्थ ही तेरा जीवन पिता बना था। तेरे लिए मैं कुछ भी नहीं कर सका। मैं धनोपार्जन के उपाय जानता था, परन्तु धन कमाने में सदा संकोच करता रहा। धनोपार्जन के मार्ग पर अनर्थों को देख कर में स्वार्थ-सिद्धि के युद्ध

मैं सदैव पराजित होता रहा। हे पवित्रता की मूर्ति! मैं तुझे रेशमी वस्त्र न पहना सका और न तुझको भर पेट दूध-दही ही खिला सका। मैंने निर्बल के हाथ का कभी अन्न नहीं छीना। मैं दीन-दुखियों के आँसुओं को देख न सका। मैंने आँसुओं के दर्पण में सदा अपने स्वरूप और भावों को प्रतिबिम्बित होते हुए देखा है। इन पंक्तियों में निराला जी के जीवन की सम्पूर्ण वेदना एवं कचोट मुखर हो उठी है। तत्पश्चात् कवि निराला, प्रसंग परिवर्तित कर, साहित्य के क्षेत्र में अपने संघर्ष की ओर संकेत करते हैं–

'सोचा है नत हो बार-बार' / –यह हिन्दी का स्नेहोपहार,
यह नहीं हार मेरी, भास्वर / वह रत्नहार– लोकोत्तर वर,
अन्यथा, जहाँ है भाव शुद्ध / साहित्य-कला-कौशल, प्रबुद्ध,
हैं दिए हुए मेरे प्रमाण / कुछ वहाँ, प्राप्ति को समाधान,
पार्श्व में अन्य रख कुशल हस्त / गद्य में पद्य में समाभ्यस्त।'

अर्थात् मैंने कई बार अत्यन्त विनम्रतापूर्वक विचार किया है कि आलोचकों ने जो मेरा इतना विरोध किया है, वह वस्तुत: मेरी पराजय नहीं है, बल्कि यह हिन्दी भाषा की स्नेह स्वरूप भेंट है, जो श्रेष्ठ उज्ज्वल अलौकिक हार के समान है। अन्यथा साहित्य के अगाध सागर में जहाँ साहित्य और कला के शुद्ध, पवित्र और कलापूर्ण भाव संगृहीत हैं, उनको बढ़ाने में मैंने भी अपना योगदान दिया है। मेरा साहित्यिक कृतित्व इसका प्रमाण है। अन्य कुशल साहित्यकारों की कृतियों के बराबर रखकर यदि देखा जाए, तो स्पष्ट हो जाएगा कि मैंने गद्य-पद्य– दोनों में समान अधिकार के साथ रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। अपने इसी सन्दर्भ को और स्पष्ट कर वह अपने साहित्यिक विरोधियों के सम्बन्ध में कहते हैं–

'देखें वे, हँसते हुए प्रवर, / जो रहे देखते सदा समर
एक साथ जब शत घात घूर्ण / आते थे मुझ पर तूले तूर्ण,
देखता रहा मैं खड़ा अपल / वह शर क्षेप, वह रण-कौशल
व्यक्त हो चुका चीत्कारोत्कल / ऋद्ध युद्ध का रुद्ध कंठ फल।
और भी फलित होगी वह छवि / जागे जीवन जीवन का रवि,
लेकर, कर कल तूलिका कला, / देखो क्या रंग भरती विमला,
वांछित उस किस लांछित छवि पर, / फेरती स्नेह की कूची भर।'

अर्थात् वे श्रेष्ठ लोग, जो सदैव मेरे साहित्यिक संघर्ष को देखते रहे हैं, इस बात को देख़ें कि अब मेरे ऊपर एक साथ सैकड़ों आक्रमण अत्यन्त तीव्र गति से हो रहे हैं। तन में स्थिर भाव को अपलक दृष्टि से टकटकी बाँधे उनके इस व्यंग्य-बाण चलाने के कौशल को एवं युद्ध में पराजित होकर अब उनका कष्ट रूद्ध हो गया है। मेरे साहित्य द्वारा जीवन में प्रेरणा-प्रदायक सूर्योदय होगा। देखना! सरस्वती अपने सुन्दर हाथों में कला की सुन्दर कूची लेकर कैसे-कैसे रंग भरती है, अर्थात् मैं कैसी-कैसी काव्य-कृतियों की सृष्टि करता हूँ। आलोचकों द्वारा लोहित मेरी कृतियाँ माँ सरस्वती को स्वीकार हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ में हम यह कह सकते हैं कि निराला जी जिन्दगी भर यही सोचते रहे कि हिन्दी के आलोचक उनके प्रति निर्मम रहे और उनको अपने 'कृतित्व' के अनुरूप सम्मान प्राप्त नहीं हो पाया। निराला जी को इस बात का दु:ख सदैव रहा और शायद यही कारण है कि उनकी यह कुण्ठा अवसर पाते ही उभर कर सामने आ जाती है।

ऐसा कदापि नहीं है कि निराला जी ने व्यंग्य के बाण केवल आलोचकों पर ही चलाए हैं,

बल्कि उन्होंने उस समय के कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के प्रति भी अपने भावों को व्यंग्यों के माध्यम से व्यक्त किया है। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के प्रति निराला जी का आक्रोश स्पष्ट है। वे यह सोच लेते हैं कि अपनी पुत्री का विवाह कान्यकुब्जों में कर सकेंगे, अतएव निराला जी, अपने एक परिचित साहित्यिक नवयुवक को बुलाकर, उससे सरोज के विवाह का प्रस्ताव रखते है–

'फिर आई याद मुझे सज्जन है / मिला प्रथम ही विद्वज्जन
नवयुवक एक, सत्साहित्यिक, कुल कान्यकुब्ज, यह नैमित्तिक
होगा कोई इंगित अदृश्य, /मेरे हित है हित यही स्पृश्य
अभिन्दनीय। बंध गया भाव, / खुल गया हृदय का स्नेह-स्राव,
खत लिखा, बुला भेजा तत्क्षण, / युवक भी मिला प्रफुल्ल, चेतन।
बोला मैं हूँ रिक्त हस्त / इस समय, विवेचन में समस्त-
जो कुछ है मेरा अपना धन / पूर्वज से मिल करूँ अर्पण
यदि महाजनों को, तो विवाह / कर सकता हूँ; पर नहीं चाह
मेरी ऐसी, दहेज देकर / मैं मूर्ख बनूँ, यह नहीं सुधर,
बारात बुलाकर मिथ्या व्यय / मैं करूँ, नहीं ऐसा सुसमय।
तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम / मैं सामाजिक चोग के प्रथम,
लग्न के पढ़ूँगा स्वयं मन्त्र / यदि पंडित जी होंगे स्वतंत्र।
जो कुछ मेरा, वह कन्या का, / निश्चय समझो, कुल धन्या का।'

प्रस्तुत पंक्तियों में निराला जी की स्वच्छन्दता का संकेत द्रष्टव्य है। उनमें समाज के बाह्य आडम्बरों व कुरीतियों से लड़ने का अपार साहस था। उनकी इसी स्वभावगत विशेषता की ओर संकेत कर डॉ. रामविलास शर्मा का निम्न कथन सत्य ही प्रतीत होता है कि– ''निराला जी के व्यक्तित्व में निर्भीकता और उद्दण्डता कूट-कूट कर भरी है। श्मशान और नगर में वह स्वच्छन्दता से विचरते हैं। उनकी निर्भीकता दु:साहस की सीमा तक पहुँचती है। इसका असर उनकी बात-चीत पर भी है। जब उन्होंने महात्मा गाँधी से कहा था कि मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति महात्मा गाँधी से मिलने आया हूँ, तत्कालिक नेता से नहीं– तब भी उनका यही भाव था।''

निराला जी अपने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए सरोज के विवाह का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि हे पुत्री! तेरे विवाह में पण्डित जी आए, जनता के लोग भी आए, निमन्त्रित साहित्यकार और विशिष्टजन भी पधारे। उन्होंने पूर्ण रूप से नवीन पद्धति वाले इस विवाह को देखा। तेरे ऊपर कलश का पवित्र जल छिड़का गया। तू मेरी ओर देख कर धीरे से मुस्कुराई और तेरे होठों पर स्पन्दन की एक लहर बिजली की तरह लहरा उठी। तेरे उर में अपने पति की सुन्दर छवि भर कर फूल रही थी और तेरा तादात्म्य-भाव मुखर हो रहा था। एक गहरी नि:श्वास लेकर तू मानो खिल उठी। तेरा एक-एक अंग भविष्य के विश्वास की आशा में बँध कर निश्छल हो उठा। नीचे की ओर झुके हुए तेरे नयनों से प्रकाश की रेखा उतर कर तेरे होठों पर थर-थर काँपने लगी–

'आए पण्डित जी, प्रजा वर्ग, / आमंत्रित साहित्यिक, ससर्ग
देखा विवाह आमूल नवल; / तुझ पर शुभ पड़ा कलश का जल।
देखती मुझे तू, हँसी मन्द / होठों में बिजली फँसी, स्पन्द
उर से भर झूली छवि सुन्दर / प्रिय की अशब्द श्रृंगार, मुखर
तू खुली एक-उच्छ्वास संग / विश्वास, स्तब्ध बंध अंग-अंग,

नत नयनों से आलोक उतर / काँपा अधरों पर थर-थर-थर।'

प्रस्तुत पंक्तियों में सात्विक अनुभावों का विधान द्रष्टव्य है। कवि के व्यक्तिगत जीवन का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण देखते ही बनता है।

'सरोज स्मृति' में 'सरोज' की मृत्यु एक दु:खद घटना है और जहाँ तक मेरा मानना है, इस लम्बी कविता की यही घटना इसे एक महान 'शोकगीत' निर्धारित करती है। कविता के आगे का प्रसंग इसी ट्रेजडी को घोषित करता है। इस प्रकार, शोकगीत गीतिकाव्य की ट्रेजडी है– ऐसा हम कह सकते हैं। जिस प्रकार ट्रेजडी में हम महान नायक के पतन से दु:खी और आतंकित होते हैं, उसी प्रकार शोकगीत में किसी सुन्दर सुकुमार जीवन का अवसान दिखाया जाता है और इससे करुणा और शोक की उत्पत्ति होती है। शोक-संतप्त निराला जी का हृदय भी अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु का स्मरण कर कह उठता है कि हे पुत्री! कुछ दिन ससुराल में रहकर तू प्रसन्नतापूर्वक अपनी नानी की स्नेहमयी गोद में आ बैठी। जहाँ तेरे मामा-मामी तुझको अपने स्नेह से उसी प्रकार आप्लावित करते रहे, जिस प्रकार बादल धरती को अपार जल देकर सुख-सम्पदा से परिपूर्ण कर देते हैं। वे तेरे लालन-पालन में ही व्यस्त रहते थे। वह लता रूपी तेरी माता भी वहीं की थी, जिससे तू कली के रूप में खिली थी। तू उन्हीं लोगों के स्नेह की गोद में पली थी और उन्हीं लोगों से सब प्रकार हिल-मिल गयी थी। अंतिम समय में तूने इसी स्नेहमयी गोद में शरण ली और अपने सुन्दर नेत्रों को बन्द करके तू महाप्रयाण कर गयी।

निराला ने जिस तन्मयता और व्यथा के साथ इस गीत के शब्दों को पिरोया है, वह किसी के भी हृदय को द्रवित करने में सक्षम है। एक पिता अपनी पुत्री के जाने का दु:ख किस प्रकार सहन कर रहा है, उसे निराला जी ने इस गीत में जीवन्त कर दिया है। जो पिता अपनी पुत्री के सुखमय जीवन के सपने सजाए बैठा है, अगर उसी पिता की गोद में वह पुत्री अपने प्राण त्याग दे, यह कितना कष्टदायी है? यह वही समझ सकता है, जिसने यह दु:ख सहा हो। यह कहने में कहीं कोई सन्देह नहीं कि, वास्तव में; 'सरोज स्मृति' ही हिन्दी साहित्य जगत का प्रथम 'शोकगीत' है।

●

डॉ. अनामिका के काव्य में स्त्री-संघर्ष के स्वर

नीतू यादव*

संघर्ष और स्त्री का सम्बन्ध चोली-दामन का रहा है। इतिहास साक्षी है कि स्त्री का जीवन और जीवन से जुड़ी प्रत्येक घटना का प्रस्थान-बिन्दु इसी संघर्ष का पर्याय रहा है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसे पुरुष के संरक्षण का मोह दिखाकर एक लक्ष्मण-रेखा में बाँध दिया जाता है। पिता, भाई और पुत्र की छत्रछाया में पनपा उसका जीवन सदैव दूसरे की इच्छा से परिचालित होता है। आदिकालीन इतिहास से लेकर आज के सन्दर्भों में यदि मनन करें, तो स्त्री का स्थान उसी धुरी पर खड़ा पाते हैं।

वस्तुत: पुरुषवादी समाज में सदियों से संघर्षरत नारी अपनी पहचान बनाने के लिए जिस अदम्य जिजीविषा एवं प्रबल इच्छाशक्ति की परिचायक रही है, वह उसके शिक्षित होने का ही परिणाम है, जो उसने अपने धर्म, आस्था, परम्परा एवं मूल्य-बोध से प्राप्त किया है। आज, आधुनिक युग में, नारी पुरुषों के प्रति प्रतिस्पर्धा न करके उनके समक्ष अधिकारों की माँग कर रही है, जिनकी संघर्षगाथा का उल्लेख कवयित्री अनामिका के काव्य में द्रष्टव्य होता है।

समकालीन हिन्दी साहित्य-जगत में अनामिका की कविताएँ स्त्री-जीवन की विडम्बनाओं की सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी रचनाओं में पुरुष का वर्चस्व तथा स्त्री-सम्वेदना की अभिव्यक्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है। साथ ही; वे स्त्री-जीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं को उद्घाटित करने में कुशल रही हैं। कवयित्री अनामिका पुरुष वर्ग के प्रति विद्रोह के तेवर नहीं दिखातीं, बल्कि वे पितृसत्तात्मक सोच को ही नकारती हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, जिसमें स्त्रियों को कमतर आँका गया। इसमें पुरुषों का कोई दोष नहीं। दोषी तो वह व्यवस्था है, जिसने बचपन से ही स्त्रियों के प्रति हीन भावना को बढ़ावा दिया।

स्त्रियों का संघर्ष तो माँ के गर्भ से ही शुरू हो जाता है और जीवनपर्यन्त चलता रहता है, इसलिए महादेवी वर्मा ने कहा है– 'मैं नीर भरी दुख की बदली।' पहले स्त्रियाँ घरों तक ही सीमित रहीं, वहाँ भी; उनका संघर्ष कभी कम नहीं रहा। आज, जब वे ऑफिस जाकर नौकरी करती हैं, तब भी घर की जिम्मेदारी उनके कंधों से कम नहीं हुई, अपितु दोहरा कार्यभार बढ़ गया। घर के सारे काम-काज सँभालने के बाद, बाहर ऑफिस के उत्तरदायित्व भी निभाती हैं, फिर भी; समाज में उन्हें वो तवज्जो नहीं मिली, जो मिलनी चाहिए थी। अत: स्त्री घर से निकल गयी, समाज में काम-काज सँभाला, ऑफिस की जिम्मेदारी मिल गयी, पुरुषों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने लगी, लेकिन रसोई की जिम्मेदारी अभी भी उसके कंधों पर है, जिसकी जद्दोजहद को उकेरते हुए कवयित्री अनामिका कहती हैं–

''समय : सुबह साढ़े सात, एफ. एम. टाइम।
स्थान : सीढ़ी के नीचे आलने घेरकर बनाया गया पूजा-घर।
दृश्य: कुर्सी पर दफ्तर की साड़ी। देह पर एक भींगा कुरता, हाथ में दुर्गासप्तशती।
'या देवी सर्वभूतेषु'... सविता, देखो बेटी, जल तो नहीं रही सब्जी?
'निद्रारूपेण संस्थिता ..... जागा पिंटू, उसे जगाओ, स्कूल-बस छूटेगी।

* शोधार्थी– हिन्दी विभाग, हे.नं.ब. गढ़वाल (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड

'नमस्तस्यै नमस्तस्यै' फोन बज रहा है, उठाओ तो।
मेरा होगा, तो कह देना- सी.एल. पर हूँ आज।
सिर दुख रहा है।''[१]

कवयित्री ने स्त्री के सामान्य दिन का चित्रण किया है, जिसमें वह जीवन की जटिलताओं, उसकी आस्था, मातृत्व, कार्यस्थल की जिम्मेदारियों और सामाजिक दबावों का बोझ अपने कंधों पर उठाए हुए है। यह संघर्ष का एक शक्तिशाली स्वर है, जो आज की महिलाओं के जीवन को प्रतिबिम्बित करता है। स्त्रियाँ इस संघर्ष का सामना करते हुए आगे बढ़ रही हैं और इसी दोयमदर्जे की स्थिति में वे अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रही हैं। वे नौकरी करती हैं, घर-गृहस्थी सँभालती हैं और बच्चों को पढ़ा-लिखाकर बड़ा भी करती हैं। ऐसा नहीं है कि पुरुष नौकरी के अलावा कुछ कर नहीं सकते, बल्कि उन्हें चूल्हा-चौका और रोते हुए बच्चे को दुलारना हेय और उबाऊ लगता है या फिर शारीरिक बल के आधिक्य के कारण वे स्त्रियों की तरह अपना समायोजन नहीं कर पाते। स्त्रियाँ अकेले ही घर-परिवार की जिम्मेदारी निभाती हैं। कवयित्री डॉ. अनामिका स्त्रियों के इस संघर्ष का वर्णन 'चौका' कविता में व्यक्त करती हैं–

''सारा शहर चुप है,
धुल चुके हैं सारे चौकों के बर्तन।
बुझ चुकी है आखिरी चूल्हे की राख भी,
और वह / अपने ही वजूद की आँच के आगे
औचक हड़बड़ी में / खुद को ही सानती,
खुद को ही गूँधती हुई बार-बार
खुश है कि रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी।''[२]

स्त्रियों में यह संघर्ष न केवल बाहरी परिस्थितियों के खिलाफ है, अपितु यह एक आन्तरिक यात्रा है, जो आत्म-पहचान और आत्म-मूल्यहीनता की दिशा में दृष्टिगत होती है। इस सन्दर्भ में अनामिका स्वयं कहती हैं– ''इसी दृष्टि से स्त्रियाँ विशिष्ट हैं कि कोई काम उनके लिए छोटा या ओछा नहीं। एक तरह की दत्तचित्तता से वे हर तरह का काम कर लेती हैं– बीमार की नाक पोंछने से लेकर क्वांटम फिजिक्स में अनुसंधान तक। इसीलिए वे विशेष आदर की पात्र भी हैं। पहले की स्त्रियाँ तो तन-मन से ही लगी रहती थीं दूसरों के विकास में, अब आर्थिक स्वावलम्बन के कारण तन-मन-धन से लगी रहती हैं– फिर भी इतनी हिकारत!''[३] स्त्रियों ने लगभग सभी क्षेत्रों में अपनी पहचान बना ली है, फिर भी; समाज द्वारा स्त्रियों की संघर्षशीलता, उनके योगदान की अनदेखी की जा रही है।

अनामिका की कविताएँ स्त्री-संघर्ष का स्वर हैं, जहाँ स्त्रियाँ अतीत से लेकर वर्तमान तक अपने मनोभावों को जहाँ स्वयं तक ही सीमित रखती थीं, वहीं आज वे एक सशक्त आवाज बनकर उभर रही हैं। कवयित्री अपनी कविताओं में पुरुषों की मानसिकता का विरोध करके स्त्री की पीड़ा और कड़वाहट को बड़ी सहजता से व्यक्त करती हैं और पुरुष वर्ग से यही गुहार लगाती हैं कि हमें भी एक मानव के रूप में देखा जाए, न कि किसी अन्य दृष्टि से। कवयित्री अनामिका ने समाज के इस दोहरेपन की स्थिति को स्वयं उनके मुँह से कहलवाया है–

''भोगा गया हमको / बहुत दूर के रिश्तेदारों के
दुख की तरह।

एक दिन हमने कहा / हम भी इंसान हैं–
हमें कायदे से पढ़ो एक एक अक्षर
जैसे पढ़ा होगा बी.ए. के बाद
नौकरी का पहला विज्ञापन।''[४]

वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाए, तो अभी भी स्त्री की स्थिति इतनी बदली नहीं है। अनामिका इस स्थिति में सुधार की उम्मीद करती हैं। इस सम्बन्ध में लेनिन ने कहा था– ''औरत की हालत सभी जगह एक-सी है। चाहे वह राजकुमारी हो या नौकरानी, उसकी इज्जत पुरुष के चाहने, न चाहने पर है। उसकी प्रतिष्ठा शरीर-शुद्धता, परम्परागत सामान्यता पर है।''[५] अर्थात् इसकी वजह कोई एक व्यक्ति नहीं है, बल्कि पूरी सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें स्त्री-पुरुष– दोनों शामिल हैं। स्त्रियों के सहयोग के बिना कोई सत्ता लम्बे समय तक नहीं चल सकती। स्त्रियों का पुरुषवादी सत्ता की ओर बढ़ना ही इसकी सबसे बड़ी वजह रही है।

कवयित्री अनामिका स्त्री-विमर्श की प्रबल पक्षधर हैं। उनके लेखन में शालीनता की तीव्र धार है, क्योंकि उन्होंने समाज में जो देखा, सहा, भोगा– उसे अपनी कलम से व्यक्त किया। यही स्त्री-विमर्श और गहन चिन्तन उनके लेखन को एक नयी दिशा प्रदान करता है। अनामिका की कलम और दृष्टिकोण ने स्त्रियों को एक नया मुकाम दिया। वे हर वर्ग, वर्ण, जाति और नस्ल की स्त्री की स्थिति की निष्पक्ष जाँच-पड़ताल करती हैं। स्त्री होने के नाते उनमें स्त्रियों के प्रति एक सम्वेदनशील लगाव दिखाई देता है। औरत से जुड़े मुद्दे उनके लिए हमेशा करीब रहे, इसलिए वे इन्हें जमीनी हकीकत के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। अनामिका की कविताओं में संघर्षरत स्त्री का चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से किया गया है। 'भामती की बेटियाँ' जैसी अनेक स्त्रियाँ समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए निरन्तर संघर्ष कर रही हैं–

''लिखने की मेज़ वही है, वही आसन
पाण्डुलिपि वही, वही बासन....
ग्रंथ लिख रही हैं पर
भामती की बेटियाँ!...
कृपा नहीं, प्रेम का प्रसाद भी नहीं लेंगी,
भामती की बेटियाँ
ग्रंथ अपने स्वयं ही रचेंगी, लगातार
इसी तरह, हर युग में।''[६]

अनामिका की कविताएँ स्त्री-संघर्ष और उनकी भावनाओं को एक नई दृष्टि प्रदान करती हैं। उनकी कविताओं में स्त्रियों की वास्तविकता और उनके अनुभवों को गहनता से समझने पर जोर दिया गया है। इसके लिए रूढ़ि और पारम्परिक सोच को बदलना आवश्यक है, जिसका हवाला देते हुए 'मदन कश्यप' ने लिखा है– ''भारतीय स्त्रियों के जीवन-संघर्ष तथा हास-परिहास और गीत-अनुष्ठान आदि के जरिए पीड़ा को सह पाने की उनकी परम्परागत युक्तिहीन युक्ति के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने पर अनामिका की कविताओं के नए अर्थ खुलते हैं, जिन तक कविता को देखने-परखने के रूढ़ ढाँचे को तोड़कर ही पहुँचा जा सकता है।''[७]

अनामिका की कविताएँ पितृसत्ता का विरोध करते हुए स्त्रियों की स्थिति को बयाँ करती हैं कि आज भी स्त्रियाँ हर रोज पतियों द्वारा छोटी-छोटी बात पर मार-काट, गाली-गलौज झेल रही

हैं। इस पर भी पति उन्हें बार-बार यही कहकर प्रताड़ित करते हैं कि तुम अपनी औकात में रहो। उनकी औकात भी यही है कि बिना कुछ बोले पतियों की सेवा करना। अत: उनके मुख से बात निकलते ही सारा काम पूरा हो जाए। अगर कभी किसी कारणवश तुरन्त काम पूरा नहीं हुआ, तो मार-पीट, लाठी-डण्डे, गाली-गलौज शुरू हो जाते हैं। स्त्रियाँ जिस उत्पीड़न को झेल रही हैं, उनका वर्णन करते हुए कवयित्री अनामिका 'अभ्यागत' कविता में कहती हैं–

''रोज़ निकाला जाता है मुझको।
रोज़ केंचुए की तरह / गुड़ी-मुड़ी हो
फैल जाती हूँ फिर से।
वे कहते हैं और कहते हैं ठीक–
अपनी औकात जाननी चाहिए।''[८]

कवयित्री निरन्तरता और पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में उसकी ताकत और प्रतिरोध का अवलोकन करती हैं। समाज की अपेक्षाएँ और सीमाएँ स्त्रियों की स्वतन्त्रता और स्वाभिमान के लिए एक बड़ी चुनौती बन जाती हैं, जिसे प्राप्त करना इतना आसान नहीं है।

पितृसत्तात्मक समाज में जो स्त्री अपना सम्पूर्ण जीवन घर-परिवार को समर्पित कर देती है, बदले में उसे उत्पीड़न ही मिलता है। सुख-समर्पण करने वाली नारी हमेशा दु:ख के बोझ तले दबी रही। पति को परमेश्वर मानने वाली स्त्री को मार-पीट करके अपमानित करना पुरुषों के लिए आम बात हो गयी, जिससे उनकी स्थिति दिन-प्रतिदिन बद से बदतर होती चली गयी। कवयित्री उनकी स्थिति को अपने व्यंग्यात्मक लहजे में इस प्रकार कहती हैं–

''खाये ही जाती हैं / शाम से सुबह तक वे
खूब मिर्चीदार गालियाँ / ऊपर से थप्पड़, घूँसे, डाँट, ताने–
बोनस में– / बाई वन, गेट वन फ्री।''[९]

इससे प्रतीत होता है कि समाज में स्त्रियों को एक के बदले अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ता है। कवयित्री समाज की संकीर्ण मानसिकता को उजागर करती हैं, जहाँ स्त्रियों को केवल एक वस्तु के रूप में देखा जाता है और उनकी वास्तविक पहचान को नजरअंदाज किया जाता है– ''कोई यह नहीं सोचता है कि पुरुष की सफलताओं के नीचे स्त्री दबती चली गयी। हाथ में हथियार लेकर पुरुष और भी बड़ा हो गया और भी शक्तिशाली। बच्चों को सँभालती, पीठ पर बोझा ढोती स्त्री और भी छोटी हो गयी। एक विजेता, दूसरा सिर्फ उसकी विजय को सँभाल कर रखने वाला अनुचर। पुरुष ने नियम-परम्पराएँ बनाईं, स्त्री सिर्फ उनमें शामिल हुई। उसकी अपनी कोई परम्परा नहीं। उसके बनाए कोई नियम नहीं।''[१०]

कवयित्री अनामिका कामकाजी महिलाओं की पीड़ा को व्यक्त करते हुए उनकी स्थिति चक्की के समान बताती हैं, जो दिन-रात चलती रहती है। उसी तरह, स्त्रियों की स्थिति भी निरन्तर संघर्षपूर्ण है। पुरुष स्त्रियों की सम्वेदनाओं और उसके अस्तित्व को नकारने में अपना बड़प्पन समझते हैं, जिसके कारण स्त्रियाँ अक्सर अन्याय, शोषण, तिरस्कार और घृणा का सामना करती हैं। वे किसी प्रकार का प्रतिकार नहीं करतीं, अपितु अपने अस्तित्व की गुहार लगाती हैं। जब उन्हें किसी प्रकार से आत्म-संतुष्टि नहीं मिलती, तो वे अपने भीतर दबी इच्छा-शक्ति को प्रकट करती हैं, जिसकी अभिव्यक्ति अनामिका की कविताओं में एक सशक्त आवाज़ बनकर उभरी है–

''एक चीख मेरे भी भीतर दबी है।
उसका बस चले अगर तो
मेरी पसलियाँ तोड़ती / निकल आए बाहर।''[११]

उक्त पंक्तियों से यह प्रतीत होता है कि महिलाएँ अपने भीतर एक गहरी निराशा और दु:ख को समेटे हुए हैं, जो अब चीख बनकर उभर रही है। वे आज तक समाज की अपेक्षाओं और दबावों के कारण इसे व्यक्त नहीं कर पायी थीं। उनकी यह आवाज़ स्वतन्त्रता और आत्म प्रकटीकरण का प्रतीक है।

स्त्री की वास्तविक स्थिति और उसकी मनोवृत्ति को अनामिका अपनी कविता में दर्शाती हैं। जिस तरह पाठक कविता को पढ़कर उसकी रसानुभूति करना चाहता है, लेकिन उसके गहरे मर्म को समझने की कोशिश कोई नहीं करता है, ठीक उसी प्रकार; स्त्री की स्थिति भी है। इस पीड़ा को कवयित्री ने 'स्त्री कवियों की जलाहतें' नामक कविता में व्यक्त किया है–

''कविता भी है तो स्त्री ही / कोई उसे सुनता नहीं,
सुनता भी है तो समझता नहीं,
सब उसके प्रेमी हैं और दोस्त कोई नहीं।
कितनी अकेली है।''[१२]

कवयित्री स्त्री के अंतर्निहित संघर्ष और उसकी अनसुनी आवाज़ को उजागर करती हैं। उनकी कविताएँ न केवल स्त्रियों की कठिनाइयों को दर्शाती हैं, बल्कि उनके अदृश्य बलिदान और साहस का भी अवलोकन करती हैं।

नारी सदैव पुरुषों के व्यक्तित्व के विकास में अपना सर्वस्व समर्पण करती आयी है। वह उसकी प्रगति को अपनी प्रगति मानती है और इसके लिए हर सम्भव प्रयास भी करती है। किन्तु इसके विपरीत; हम पुरुषों में इस प्रकार के भाव महिलाओं के प्रति कम ही पाते हैं। पुरुषत्व के मोह में स्त्री को भोग्या समझकर उसका इस्तेमाल किया जाता है। कवयित्री अनामिका ने इसे अपनी कविता 'फर्नीचर' में इस प्रकार व्यक्त किया है–

''मैं उनको रोज झाड़ती हूँ
पर वे ही हैं इस पूरे घर में
जो मुझको कभी नहीं झाड़ते।''[१३]

कवयित्री कहती हैं कि स्त्रियाँ अपने विरोधाभास में जी रही हैं। वे घर-परिवार में सभी के साथ मित्रवत व्यवहार करती हैं, लेकिन उनके साथ सखा-स्वरूप व्यवहार करने वाले कम ही हैं। पारिवारिक सम्बन्धों में पति भी उनका मित्र न होकर एक मालिक बन जाता है और पत्नी दया, करुणा, क्षमा तथा धैर्य के साथ उनकी सेवा में उपस्थित रहती है। स्त्रियों के इस संघर्ष को कवयित्री ने इन शब्दों में उद्घाटित किया है–

''घर में घुसते ही
जोर से दहाड़ते थे मालिक और एक ही डाँट पर
एकदम पट्ट / लेट जाती थीं वे / दम साधकर,
जैसे कि भालू के आते ही / लेट गया था
रूसी लोककथा का आदमी।''[१४]

स्त्रियाँ घर में गृहस्थी सँभालने और बच्चों की परवरिश करने तक ही सीमित रह जाती हैं।

इस स्थिति में; वे मानसिक कुण्ठा से ग्रस्त हो जाती हैं और परिवार में उपस्थित रहकर भी उपेक्षित सा महसूस करने लगती हैं, क्योंकि घर-परिवार के कामों में उनका सलाह-मशविरा बहुत कम ही लिया जाता है। स्त्रियों की इस अभिव्यक्ति पर कवयित्री अनामिका ने 'अनुवाद' कविता में लिखा है–

''लोग दूर जा रहे हैं– / हर कोई हर किसी से दूर–
लोग दूर जा रहे हैं और बढ़ रहा है / मेरे आस-पास का 'स्पेस'।''[१५]

इस कविता के माध्यम से कवयित्री स्त्रियों की इस उपेक्षा और उनकी छिपी हुई भावनाओं को उजागर करती हैं, जो समाज में उनकी स्थिति को दर्शाता है। ऐसी स्थिति में; स्त्रियाँ अपने आपको अकेला मानने लगीं, जिससे उनके आस-पास खाली स्थान बढ़ रहा है। कवयित्री उस स्थान को अपनी कल्पना और बिम्बों से सजाकर उसे कविता में स्थान देती हैं।

अत: कहा जा सकता है कि कवयित्री डॉ. अनामिका की कविताएँ स्त्री-जीवन के अनसुलझे पक्षों को सुलझाने का प्रयास करती हैं, जहाँ अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती स्त्रियों को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया गया है। वे स्त्री-मुक्ति की बात तो करती हैं, किन्तु पुरुषों के साथ को नकार कर नहीं। वस्तुत: वे मुक्ति उस पितृसत्ता से चाहती हैं, जो स्त्री-पुरुष को कभी समानता के स्तर पर जीने का अवसर नहीं देती। इसलिए वे ऐसे साहचर्य-सुख की परिकल्पना करती हैं, जिसमें स्त्री और पुरुष के बीच उन्मुक्त भाव से समता का समावेश हो और इस स्वतन्त्रता के मध्य परस्पर सम्प्रीति, सम्मान व सौहार्द्र जैसे मूल्य सम्पोषित हो सकें।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. डॉ. अनामिका– दूब-धान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. ४८
२. डॉ. अनामिका– अनुष्टुप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. ४६
३. डॉ. अनामिका– मन माँझने की जरूरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. ५२
४. डॉ. अनामिका– खुरदुरी हथेलियाँ, राधा-कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. १३-१४
५. सम्पा. अभिषेक कश्यप– अनामिका : एक मूल्यांकन, सामयिक बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : प्रथम २०१३, पृ. सं. ३८९
६. डॉ. अनामिका– दूब-धान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. २६
७. डॉ. अनामिका– कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, कवर पेज, पृ. सं. ०१
८. डॉ. अनामिका– कविता में औरत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. १११
९. डॉ. अनामिका– कविता में औरत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. ११८
१०. सम्पा. अभिषेक कश्यप– अनामिका : एक मूल्यांकन, सामयिक बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : प्रथम २०१३, पृ. सं. ३६६
११. डॉ. अनामिका– खुरदुरी हथेलियाँ, राधा-कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. ४३
१२. डॉ. अनामिका– टोकरी में दिगन्त थेरी गाथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. १४०
१३. डॉ. अनामिका– खुरदुरी हथेलियाँ, राधा-कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. १९
१४. डॉ. अनामिका– खुरदुरी हथेलियाँ, राधा-कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. २७
१५. डॉ. अनामिका– कविता में औरत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. ४८

●

दिनकर की नारी-दृष्टि 'रश्मिरथी' की युद्धभूमि में द्रौपदी और 'उर्वशी' की आत्म-चेतना का विमर्श

डॉ. जैस्मीन पटनायक*

हिन्दी काव्य-जगत में रामधारी सिंह 'दिनकर' एक ऐसे कवि के रूप में स्थापित हैं, जिनकी कविता में राष्ट्रभक्ति, ऐतिहासिक चेतना और सामाजिक सरोकारों के साथ-साथ स्त्री-विषयक दृष्टिकोण भी प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुआ है। दिनकर को सामान्यत: 'वीर रस' के कवि के रूप में जाना जाता है, लेकिन यदि उनके सम्पूर्ण काव्य-साहित्य पर दृष्टि डालें, तो स्पष्ट होता है कि उन्होंने नारी की सम्वेदना, आत्मबल और विचारधारा को भी गहराई से स्पर्श किया है। उनकी दो प्रमुख काव्य-रचनाएँ– 'रश्मिरथी' और 'उर्वशी'– इस विमर्श को दो भिन्न परिप्रेक्ष्यों में प्रस्तुत करती हैं। एक ओर 'रश्मिरथी' में द्रौपदी जैसे पौराणिक पात्र के माध्यम से स्त्री के प्रतिरोध, आक्रोश और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उसकी मुखरता को व्यक्त किया गया है, वहीं 'उर्वशी' में नारी के प्रेम, स्वतन्त्रता, आत्मबोध और नारीत्व की जटिलताओं को अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण तथा दार्शनिक रूप में उकेरा गया है।

दिनकर की काव्य-दृष्टि में नारी कोई निर्बल, उपेक्षित या केवल प्रेम का पात्र नहीं, अपितु वह एक सजीव, संघर्षशील और आत्मसजग सत्ता है। उनके काव्य में नारी केवल सौन्दर्य की प्रतिमा नहीं, अपितु चेतना की वाहक और युगधर्म की वाहिनी बनकर उभरती है। 'रश्मिरथी' की युद्धभूमि में द्रौपदी अन्याय के विरुद्ध खड़ी एक ज्वलन्त प्रतिरोध की आकृति है, जो वीर रस से ओत-प्रोत होकर समस्त समाज, धर्म और सत्ता से प्रश्न करती है। वह केवल अपमान की शिकार नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना को झकझोरने वाली प्रतिरोधी शक्ति है। वहीं दूसरी ओर, 'उर्वशी' में चित्रित नारी-आकृति शरीर और आत्मा के मध्य सम्वाद करती हुई एक ऐसी स्त्री है, जो अपने अस्तित्व की गरिमा, प्रेम की स्वायत्तता और मानवीय भावों की गहराई को समझने की चाह रखती है। वह देह से परे आत्मा की अभिव्यक्ति है, जो पुरुष की कामना का साधन नहीं, बल्कि स्वतन्त्र अनुभूति और विचार की वाहक है। दिनकर की ये दोनों नारी-प्रतिमाएँ– द्रौपदी और उर्वशी– एक ओर पौराणिकता में रची-बसी हैं, तो दूसरी ओर; आधुनिक स्त्री-विमर्श के मूल स्वरूप से गहराई से जुड़ती हैं। दिनकर की काव्य-दृष्टि में नारी न तो आदर्शवाद की जड़ प्रतिमा है, न ही भोग की वस्तु; वह तो विचारशील, सम्वादशील और आत्मनिर्भर मानव है। इस प्रकार, दिनकर की रचनाओं में नारी एक जीवन्त विचार बनकर उभरती है, जो साहित्य के साथ-साथ समाज के विमर्श को भी समृद्ध करती है।

दिनकर के समय में भारतीय समाज एक ओर पारम्परिक मूल्यों से बँधा हुआ था, वहीं दूसरी ओर; स्वतन्त्रता-संग्राम और सामाजिक नवजागरण के प्रभाव से बदलाव की प्रक्रिया में था। ऐसे समय में; नारी का स्वरूप मात्र संकोचशील, त्यागमयी और श्रद्धा की पात्र नहीं रह गया था, बल्कि वह प्रश्न करती, प्रतिकार करती और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती स्त्री के रूप में सामने

* सहायक आचार्य– हिन्दी, कलिंग इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस, भुवनेश्वर, उड़ीसा

आ रही थी। 'रश्मिरथी' की युद्धभूमि में जब द्रौपदी की ललकार सुनाई देती है, तो वह केवल पाण्डवों को ही नहीं, समाज को भी झकझोरती है। दूसरी ओर, 'उर्वशी' में एक अप्सरा की प्रेम-कथा के माध्यम से दिनकर नारी की आन्तरिक स्वतन्त्रता और अस्तित्व की तलाश का दर्शन कराते हैं। यह विरोधाभास नहीं, बल्कि दिनकर की समग्र स्त्री-दृष्टि को उजागर करता है– जहाँ स्त्री केवल प्रेम और सौन्दर्य का प्रतीक नहीं, बल्कि बुद्धि, शक्ति और चेतना का प्रतिनिधित्व करती है।

'रश्मिरथी' की द्रौपदी पौराणिक नायिका होते हुए भी, दिनकर की दृष्टि में एक विचारशील, साहसी और संघर्षशील स्त्री है। वह समाज की चुप्पी और पाण्डवों की निष्क्रियता पर प्रश्नचिह्न लगाती है। उसका वह प्रसंग, जहाँ वह वीर कर्ण से प्रश्न करती है– ''जो भोगी थी भरी सभा में, तूने कुछ क्यों नहीं कहा?'' — एक नारी के आत्मसम्मान और सामूहिक मौन के खिलाफ उसके प्रतिरोध का उद्घोष बन जाता है। दिनकर यहाँ स्त्री को केवल करुणा की पात्र नहीं, बल्कि अन्याय के विरुद्ध खड़ी होने वाली सामाजिक चेतना का प्रतीक बनाते हैं।

'उर्वशी' में उर्वशी प्रेम की देवी होते हुए भी, केवल एक पुरुष-आकर्षण की छवि नहीं है। वह प्रेम करती है, लेकिन स्वतन्त्रता को पहले स्थान पर रखती है। दिनकर ने यहाँ नारी के आत्मबोध, उसकी इच्छाओं, भय, संघर्ष और आध्यात्मिक तथा भौतिक द्वन्द्व को बहुत सूक्ष्मता से पकड़ा है। वह अर्जुन के प्रति आकर्षित होती है, लेकिन उसका प्रेम स्वत्वहीन समर्पण नहीं, बल्कि चेतन निर्णय है। 'उर्वशी' में नारी प्रेम करती है, लेकिन स्वाभिमान और आत्मनिर्णय के साथ। वह शरीर और आत्मा– दोनों की पुकार है, जिसे दिनकर 'शाश्वत नारी' के रूप में चित्रित करते हैं।

वहीं 'रश्मिरथी' में नारी सामाजिक प्रश्नों की वाहक है। द्रौपदी का सम्वाद न केवल महाभारत की पुनर्व्याख्या है, बल्कि आधुनिक स्त्री की न्याय के प्रति चेतना का स्वर है। 'रश्मिरथी' की द्रौपदी आज के युग में स्त्री की उस आवाज़ का प्रतीक बनती है, जो पुरुषवादी चुप्पी और पितृसत्तात्मक अन्याय के खिलाफ उठती है। 'उर्वशी' का स्त्री-विमर्श आज की नारी की आत्म-चेतना, उसकी इच्छाओं और अस्तित्व की स्वतन्त्र खोज को समर्थन देता है। दिनकर ने द्रौपदी और उर्वशी जैसे पौराणिक पात्रों के माध्यम से स्त्री को नया साहित्यिक और सामाजिक सन्दर्भ दिया। उन्होंने यह दर्शाया कि स्त्री केवल कथा की पात्र नहीं, बल्कि समाज और इतिहास की निर्माता है। उनके स्त्री पात्र समय के पार जाते हुए आज भी उतने ही जीवन्त, विद्रोही और चिन्तनशील हैं। द्रौपदी का चरित्र महाभारत में शक्ति, प्रतिशोध और प्रश्नचिह्न की मूर्ति है, किन्तु पारम्परिक दृष्टिकोणों में वह एक त्रासदी की पात्र मानी जाती है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपने महाकाव्य 'रश्मिरथी' में द्रौपदी को नयी दृष्टि से प्रस्तुत किया है– न केवल एक अपमानित स्त्री के रूप में, बल्कि एक ऐसी युगनायिका के रूप में, जो न्याय और स्वाभिमान की माँग करती है। दिनकर की द्रौपदी न तो रोती है, न विलाप करती है– वह ललकारती है, चेतावनी देती है और चुनौती देती है। उसका स्वर, उसकी पीड़ा केवल स्त्री जाति तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सम्पूर्ण मानव-समाज से सम्वाद करती है। 'रश्मिरथी' के पंचम सर्ग में दिनकर ने द्रौपदी के उस ऐतिहासिक प्रश्न को फिर से जीवित कर दिया है, जब वह वीर कर्ण से सभा में पूछती है– ''सभा में क्या था धर्म? मौन क्यों थे धर्मराज?'' तथा ''जो भोगी थी भरी सभा में, तूने कुछ क्यों नहीं कहा?'' यह प्रश्न केवल कर्ण के प्रति नहीं, बल्कि समूची पुरुष सत्ता, पाण्डवों की कायरता और समाज की चुप्पी पर आघात करता है। द्रौपदी की यह ललकार दिनकर के काव्य में स्त्री-चेतना की ज्वाला बन जाती है। वह पूछती नहीं, उत्तर माँगती

है। यह प्रतिरोध एक स्त्री की तरफ से उस समय है, जब पुरुष-सत्ता निरपेक्ष और निस्पृह बनी हुई थी। जहाँ पारम्परिक द्रौपदी को 'पाँच पतियों की पत्नी', 'अग्निकन्या' या 'संकट की जड़' के रूप में देखा गया, वहीं दिनकर की द्रौपदी प्रतीक है– न्याय की आकांक्षा, आत्मगौरव और सामाजिक प्रश्नों के विरुद्ध खड़ी स्त्री का। द्रौपदी के शब्दों में केवल दु:ख नहीं, बल्कि अभिमान का शंखनाद है। वह आत्मदया नहीं करती, बल्कि समाज के नीति-नियंताओं से जवाब माँगती है।

दिनकर ने कर्ण और द्रौपदी के बीच हुए काल्पानिक सम्वाद को जिस तरह लिखा है, वह स्त्री-पुरुष सम्बन्धों और सामाजिक सत्ता पर गहरा विमर्श है। कर्ण, जो स्वयं सामाजिक अन्याय का शिकार रहा है, द्रौपदी से उस सभा के मौन पर क्षमा माँगता है। यह क्षमा-याचना केवल एक पुरुष का निजी पश्चाताप नहीं, बल्कि पूरे पुरुष समाज की आत्मग्लानि है। द्रौपदी यहाँ अबला नहीं, बल्कि जाग्रत आत्मा है, जो कर्ण को यह कहती है कि– ''नारी किसी की दासी नहीं, नारी केवल प्रेम नहीं। वह भी निर्णय ले सकती है, वह भी संकल्पों की धनी है।'' दिनकर की द्रौपदी महाभारत की नहीं रह जाती, वह समकालीन स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है, जो अपने अधिकारों के लिए बोलती है, जो अपने साथ हुए अन्याय को प्रश्न बनाकर समाज के सामने रखती है, जो अब अपने लिए 'धर्म' की पुनर्व्याख्या चाहती है। यह वह स्त्री है, जो केवल पीड़िता नहीं, परिवर्तन की वाहक है। दिनकर ने द्रौपदी के चरित्र को वर्णनात्मक नहीं, प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। द्रौपदी शक्ति का स्वर है, उसकी चुप्पी शर्मिंदा समाज की गूँगी गवाही है और उसका प्रश्न विकृत धर्म और निष्क्रिय नैतिकता पर आघात है। दिनकर की भाषा यहाँ केवल काव्यात्मक नहीं, चेतनामूलक और सृजनात्मक प्रतिरोध की भाषा बन जाती है। द्रौपदी के माध्यम से दिनकर स्त्री की अस्मिता और उसकी चेतना को एक ऐतिहासिक औचित्य प्रदान करते हैं।

'रश्मिरथी' की द्रौपदी दिनकर की काव्य-दृष्टि में केवल पौराणिक पात्र नहीं। वह आधुनिक स्त्री है, जो समाज से प्रश्न करती है, अपने सम्मान के लिए खड़ी होती है और न्याय की पुनर्स्थापना चाहती है। यह चरित्र आज भी उतना ही प्रासंगिक, प्रेरक और वैचारिक रूप से बलशाली है, जितना उस काल में था। द्रौपदी दिनकर के लिए नारी का इतिहास नहीं, उसका भविष्य है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' की काव्यकृति 'उर्वशी' केवल एक प्रेमकाव्य नहीं है, बल्कि यह नारी की आत्म-चेतना, उसकी स्वतन्त्रता, उसकी अस्तित्वगत जटिलताओं और सामाजिक बन्धनों के प्रति उसके रुख का एक व्यापक और गहन चित्रण है। यह काव्यकृति एक ओर प्रेम की महिमा का गायन करती है, तो दूसरी ओर यह भी दर्शाती है कि स्त्री केवल प्रेम की वस्तु नहीं, बल्कि प्रेम की शर्तों को तय करने वाली सत्ता भी हो सकती है। उर्वशी दिनकर के लिए आदर्श, स्वतन्त्र और स्वायत्त नारी का रूपक बन जाती है। यह रचना पौराणिक सन्दर्भों से प्रेरित है, जिसमें अप्सरा उर्वशी और अर्जुन के बीच का प्रेम और उसका क्रमिक विघटन वर्णित है। यह प्रेम शाश्वत और आत्मिक होते हुए भी मूल्य-आधारित और सम्प्रभुतावादी नहीं है। उर्वशी अर्जुन से प्रेम करती है, लेकिन जब उसे लगता है कि प्रेम उसकी आत्मनिर्भरता को बाधित कर रहा है, वह अर्जुन से विलग हो जाती है। यह निर्णय नारी की परम्परागत भूमिका को तोड़ता है, जिसमें स्त्री को प्रेम में समर्पित और आश्रित माना जाता है। दिनकर की उर्वशी का चरित्र अंतर्विरोधों से भरा है। वह प्रेम करती है, लेकिन स्वतन्त्रता को अधिक महत्त्व देती है। वह अर्जुन से कहती है– ''मैं प्रेम में हूँ, पर मैं तुम्हारी दासी नहीं हूँ।'' यह पंक्ति आधुनिक स्त्री-चेतना का मूल है। प्रेम बन्धन नहीं, चेतन विकल्प होना चाहिए। उर्वशी यहाँ उस स्त्री का प्रतीक बन जाती है, जो अपने निर्णय स्वयं

लेती है, भले ही वे कष्टदायक क्यों न हों।

'उर्वशी' काव्य में दिनकर एक और गहरी बहस प्रस्तुत करते हैं– नारी का देहबोध और आत्मबोध। उर्वशी, जो एक अप्सरा है– अर्थात् शारीरिक सौन्दर्य की मूर्ति– वह स्वयं यह प्रश्न उठाती है कि क्या उसका मूल्य केवल उसके रूप में है? या उसमें भी बुद्धि, विवेक और भावनात्मक गहराई है? ''मेरे रूप की छाया से परे जो मैं हूँ, क्या तुमने उसे देखा?'' यह प्रश्न स्त्री के वस्तुकरण के विरुद्ध है। दिनकर यह स्पष्ट करते हैं कि नारी देह से परे एक बौद्धिक, आत्मिक सत्ता है, जो प्रेम करती है, त्याग करती है और आत्मबल के साथ जीती है। दिनकर की उर्वशी समाज से सहमति नहीं, समझ चाहती है। वह अर्जुन से प्रेम करती है, लेकिन अपनी शर्तों पर। वह पितृसत्तात्मक प्रेम की गुलामी को अस्वीकार करती है। वह अपनी कामनाओं को दबाती नहीं, बल्कि स्वीकार करती है और फिर उन्हें नियन्त्रित भी करती है। यह वह स्त्री है, जो नारीत्व को केवल मातृत्व या त्याग से नहीं, बल्कि आत्म-निर्णय, आत्म-सम्वाद और आत्म-स्वीकृति से परिभाषित करती है।

'उर्वशी' में वर्णित स्त्री-चरित्र, समकालीन नारीवाद की कई मूल अवधारणाओं को स्पर्श करता है। उर्वशी प्रेम करती है, लेकिन जब उसे लगता है कि वह निर्णय उसकी स्वतन्त्रता को बाधित कर रहा है, तो वह पीछे हट जाती है। उर्वशी अपने प्रेम और आकर्षण को दबाती नहीं, वह उसकी सकारात्मक स्वीकृति करती है। वह अर्जुन की 'प्रेम की सत्ता' को पूर्णत: अस्वीकार करती है, यदि वह बराबरी का स्थान न दे। दिनकर की यह रचना १९६० के दशक में लिखी गयी, परन्तु इसके विचार २१वीं सदी की स्त्री-चेतना से भी कहीं अधिक उन्नत प्रतीत होते हैं।

'उर्वशी' केवल विचारधारा नहीं, एक काव्यात्मक अनुभव भी है। दिनकर की भाषा में रसात्मकता है– प्रेम, पीड़ा और आत्मसंघर्ष के भाव। दार्शनिकता है– देह और आत्मा का द्वन्द्व। प्रतीकात्मकता है– उर्वशी। वह केवल पात्र नहीं, एक विचार, एक चेतना है। यह काव्य एक ओर प्रेम की शाश्वत महिमा को स्वीकार करता है, तो दूसरी ओर; स्त्री की सम्प्रभु सत्ता और उसकी आत्मनिर्भरता को भी। दिनकर की उर्वशी स्त्री-विमर्श की एक सशक्त, सुन्दर और बौद्धिक प्रतिमा है। वह किसी की परछाईं नहीं, किसी के प्रेम की दासी नहीं– वह स्वयं अपनी सत्ता है। 'उर्वशी' इस बात का साक्ष्य है कि दिनकर ने स्त्री को सिर्फ पुरुष के प्रेम की वस्तु नहीं, बल्कि एक स्वतन्त्र आत्मा के रूप में स्वीकार किया है– जो प्रेम करती है, जीती है और जब आवश्यक हो, तो अपने प्रेम से भी ऊपर उठकर आत्मसम्मान को चुनती है। भारतीय पौराणिक साहित्य में स्त्री पात्रों को परम्परागत रूप से त्याग, करुणा और श्रद्धा के प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु आधुनिक साहित्य में, विशेष रूप से दिनकर जैसे कवियों के काव्य में, इन पात्रों का पुनर्पाठ हुआ है। 'रश्मिरथी' की द्रौपदी और 'उर्वशी' की उर्वशी — दोनों पौराणिक पात्र हैं, परन्तु दिनकर ने इन्हें सांस्कृतिक और भावनात्मक रूप से समकालीन नारी के प्रतीक के रूप में पुन: गढ़ा है। इन दोनों पात्रों की तुलना करते हुए हम यह देख सकते हैं कि कैसे पौराणिक नारी का आधुनिक पुनराविष्कार साहित्य में स्त्री-विमर्श को एक नई दिशा देता है।

द्रौपदी और उर्वशी : दो पृष्ठभूमियाँ, एक उद्देश्य

पहलू	द्रौपदी ('रश्मिरथी')	उर्वशी ('उर्वशी')
पौराणिक स्रोत	*महाभारत*	*ऋग्वेद, महाभारत व कथाओं का मिश्रण*
मुख्य संघर्ष	सार्वजनिक अपमान और मौन समाज के खिलाफ विद्रोह	प्रेम में आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की रक्षा
स्थान	सामाजिक–राजनीतिक संदर्भ	निजी–आध्यात्मिक संदर्भ
स्वभाव	विद्रोही, मुखर, सामाजिक प्रश्न उठाने वाली	संवेदनशील, आत्मचिंतनशील, भावनात्मक स्वतंत्रता की प्रतीक

दिनकर की दृष्टि में दोनों पात्र नारी के दो अलग–अलग रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं– द्रौपदी सामाजिक अन्याय के विरुद्ध खड़ी एक योद्धा है, उर्वशी आत्मिक खोज और प्रेम में स्वतन्त्रता की आकांक्षी है। दिनकर ने अपने काव्य में पौराणिक पात्रों को सांकेतिक और वैचारिक रूप में प्रस्तुत किया है, न कि केवल धार्मिक या मिथकीय सन्दर्भों में। द्रौपदी, जो पारम्परिक महाभारत में अपमानित और बदला लेने वाली स्त्री है, दिनकर की दृष्टि में समाज से न्याय की माँग करने वाली राजनीतिक चेतना है। उर्वशी, जो एक अप्सरा के रूप में केवल सुन्दरता और कामना की प्रतीक मानी जाती थी, दिनकर के यहाँ स्त्री-स्वाभिमान, इच्छा की अभिव्यक्ति और बौद्धिक स्वतन्त्रता का प्रतीक बनती है। यह अतिक्रमण केवल साहित्यिक प्रयोग नहीं है, बल्कि पितृसत्तात्मक पौराणिक विमर्श पर एक वैचारिक टिप्पणी है। भारत की सांस्कृतिक परम्परा में नारी को या तो देवी बना दिया गया या दासी। बीच का स्थान, जहाँ वह एक सामान्य, सोचने-समझने वाली मानव सत्ता हो– उसे नकारा गया। दिनकर की द्रौपदी और उर्वशी इसी बीच के रिक्त स्थान को भरती हैं। द्रौपदी एक ऐसी नारी है, जो कर्मभूमि में अन्याय के विरुद्ध खड़ी होती है। धर्म, अधर्म और नीति के प्रश्नों को उठाती है। उर्वशी प्रेम की भूमि में स्त्री के अधिकार, इच्छा और निर्णय को आत्मबोध के साथ जोड़ती है। यह नारी की भूमिका का विस्तार है– वह केवल सम्बन्धों में नहीं, बल्कि विचारधारा, दर्शन और संघर्ष में भी सक्रिय है।

पौराणिक साहित्य में स्त्री का मूल्यांकन अक्सर उसकी सौन्दर्य-सम्पन्नता या मातृत्व के आधार पर किया गया है। दिनकर ने इस दोहरेपन को तोड़ा है। द्रौपदी केवल सुन्दरी नहीं– वह धर्मसभा की प्रश्नवाचक है। उर्वशी केवल कामना नहीं– वह आत्मानुशासन और आत्मनिर्णय की देवी है। इस प्रकार, सौन्दर्य और शक्ति का जो द्वैध विमर्श सदियों से चला आ रहा था, दिनकर उसे एकीकृत दृष्टि से देखते हैं। उनकी स्त्री न सुन्दरता से वंचित है, न संघर्ष से। दिनकर यह सिद्ध करते हैं कि पौराणिक चरित्रों में आधुनिक स्त्री-विमर्श के बीज-तत्त्व पहले से मौजूद हैं, आवश्यकता केवल उन्हें नवदृष्टि से देखने की है। द्रौपदी का 'मैं प्रश्न करूँगी' कहना आज की स्त्री की 'मैं चुप नहीं रहूँगी' की घोषणा जैसा है। उर्वशी का 'मैं प्रेम करूँगी, पर शर्तों के साथ' कहना, आज की स्त्री की 'मैं अपनी शर्तों पर जीऊँगी' की अभिव्यक्ति है। यह संस्कृति का पुनर्पाठ है, जहाँ बीते युग की स्त्रियाँ केवल इतिहास नहीं, वर्तमान और भविष्य की आवाज़ भी हैं। दिनकर की रचनाओं में पौराणिक स्त्रियाँ जीवित और जागरूक स्त्रियाँ हैं। वे अब सिर्फ कथा नहीं, विचार और परिवर्तन की वाहक हैं। उनकी द्रौपदी और उर्वशी, भारत की सांस्कृतिक चेतना में स्त्री की भूमिका, गरिमा और स्वतन्त्रता का पुनर्लेखन करती हैं। यह तुलना दिखाती है कि कैसे दिनकर जैसे कवियों ने पौराणिक पात्रों के माध्यम से समकालीन स्त्री-चेतना को साहित्यिक वैधता दी और हिन्दी साहित्य को स्त्री-विमर्श की दिशा में एक नया आधार प्रदान किया।

दिनकर हिन्दी साहित्य के महत्त्वपूर्ण कवि हैं, जिनकी काव्य-रचनाओं में नारी के चरित्रो को नयी सम्वेदना और दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। उनकी भाषा, प्रतीक और शैली में नारी की बहुआयामी छवि उभरती है, जो परम्परागत नारीवादी सीमाओं को तोड़कर नारी को स्वतन्त्र, सशक्त और आत्म-चेतन स्वरूप में चित्रित करती है। दिनकर की भाषा शुद्ध, प्रखर और भावपूर्ण है। वे नारी पात्रों की अभिव्यक्ति में सरल और प्रभावशाली हिन्दी का प्रयोग करते हैं, जिससे भावनाओं की गहराई तक पहुँचना सहज होता है। उनकी भाषा में संस्कृत और लोक साहित्य के समृद्ध शब्द, उपमा और अलंकारों का मिश्रण मिलता है, जो नारी के व्यक्तित्व को विविधता और जीवन्तता प्रदान करता है।

भावात्मकता और गम्भीरता : दिनकर की भाषा में नारी की पीड़ा, प्रेम, साहस और संघर्ष की भावात्मकता सजीव रूप से झलकती है। वे अत्यन्त सम्वेदनशील शब्दों का चयन करते हैं, जो पाठक के मन को छू जाते हैं। दिनकर कभी-कभी तीव्र और मार्मिक शब्दों का प्रयोग करते हैं, ताकि नारी के भीतर के संघर्ष को सशक्तता से व्यक्त किया जा सके। दिनकर के काव्य में प्रतीक (सिम्बलिज्म) का अत्यन्त महत्त्व है, जो नारी की जटिल भावनाओं और आन्तरिक संघर्षों को समझने में सहायक होते हैं।

द्रौपदी का प्रतीकात्मक चित्रण : द्रौपदी केवल एक नायिका नहीं, बल्कि आदर्श नारी, शक्ति, धैर्य और न्याय की प्रतीक है। उसका व्यक्तित्व युद्धभूमि की नारी के रूप में लड़ाई, अपमान और न्याय की प्रतीक्षा का प्रतिनिधित्व करता है।

उर्वशी का प्रतीक : उर्वशी नारी के सौन्दर्य, मोह और आत्म-चेतना का द्योतक है। वह नारी की स्वतन्त्रता और आत्म-स्वीकृति का प्रतीक है।

प्राकृतिक प्रतीक : दिनकर ने नारी को प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों, जैसे– सूर्य, चन्द्रमा, अमरूद के पेड़, नदी आदि से जोड़कर उसके सौन्दर्य और शक्ति को दर्शाया है। दिनकर की शैली में काव्यात्मक छन्द, गहन भाव और दार्शनिक विमर्श का संगम मिलता है।

महाकाव्यात्मक शैली : 'रश्मिरथी' जैसे महाकाव्यों में दिनकर ने युद्धभूमि की जटिलताओं के बीच नारी के अदम्य साहस को शिल्पकारी ढंग से प्रस्तुत किया है। उनकी शैली में वीर रस के साथ-साथ शृंगार और करुण रस का भी सम्मिलन है।

नारी के मनोवैज्ञानिक पहलू : दिनकर की शैली में नारी की आन्तरिक पीड़ा, स्वाभिमान और भावनाओं को सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। उनकी शैली में नारी के प्रेम, त्याग, क्रोध और वेदना जैसे विभिन्न भावों की विविधता मिलती है। दिनकर की भाषा, प्रतीक और शैली में नारी-दृष्टिकोण अत्यन्त समृद्ध और जटिल है। वे नारी को पारम्परिक सीमाओं से ऊपर उठाकर स्वतन्त्र, सशक्त और आत्म-चेतन व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनकी रचनात्मकता नारी-विमर्श को नयी ऊँचाइयों पर ले जाती है, जहाँ नारी की सम्वेदनशीलता और शक्ति– दोनों का सम्मान होता है। समकालीन स्त्री-विमर्श में नारी के अधिकार, स्वायत्तता और सशक्तीकरण की बात होती है। यह विमर्श पारम्परिक नारी की भूमिका को चुनौती देता है और नारी को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सन्दर्भों में स्वतन्त्र अस्तित्व देने की बात करता है। दिनकर की नारी-दृष्टि इस समकालीन विमर्श से कई मायनों में जुड़ी हुई है।

स्वतन्त्रता और आत्म-चेतना : दिनकर की नायिकाएँ, जैसे– द्रौपदी और उर्वशी, न केवल पाश्चात्य नारीवादी विचारों से मेल खाती हैं, बल्कि वे अपनी सामाजिक भूमिका से ऊपर उठकर आत्म-स्वीकृति और स्वतन्त्रता की खोज करती हैं। दिनकर की कविताओं में नारी पारम्परिक बन्धनों, सामाजिक अपेक्षाओं और उत्पीड़न के विरुद्ध लड़ती हैं, जो समकालीन स्त्री-विमर्श का भी मूल है।

सशक्त नारी की भूमिका : द्रौपदी की तरह नारी की भूमिका केवल परिवार या पति की भूमिका तक सीमित नहीं है, बल्कि वह अपने निर्णयों, इच्छाओं और अधिकारों के प्रति जागरूक होती है। आज के समय में नारी-अधिकारों, शिक्षा, समानता और स्वतन्त्रता– के लिए संघर्ष कर रही है। दिनकर की कविताएँ इस संघर्ष के लिए प्रेरणा हैं। समकालीन स्त्री-विमर्श नारी के आन्तरिक मनोवैज्ञानिक पक्षों को भी समझने का प्रयास करता है। दिनकर की नारी-दृष्टि इस परिप्रेक्ष्य से भी प्रासंगिक है, क्योंकि वे नारी की आत्म-चेतना, वेदना और संघर्ष को विस्तार से प्रस्तुत करते हैं।

धार्मिक और सांस्कृतिक सन्दर्भ : समकालीन विमर्श में धार्मिक और सांस्कृतिक बन्धनों की भूमिका पर भी चर्चा होती है। दिनकर ने धार्मिक कथाओं में नारी की भूमिका को नया अर्थ दिया है, जो आज के विमर्श के लिए महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ प्रदान करता है। द्रौपदी की छवि में नारी के उत्पीड़न के विरुद्ध लड़ाई, न्याय की माँग और अपनी गरिमा के लिए संघर्ष की बात है। यह समकालीन नारीवादी आन्दोलनों की भावनाओं से मेल खाता है। उर्वशी की कथा नारी की स्वतन्त्र इच्छा और आत्म-स्वीकृति की कहानी है, जो समकालीन स्त्री-विमर्श के आत्म-निर्णय के सिद्धान्त से जुड़ती है। यद्यपि दिनकर की नारी-दृष्टि सशक्त है, परन्तु कुछ आलोचक इसे पूरी तरह आधुनिक स्त्री-विमर्श से मेल खाता नहीं मानते, क्योंकि इसमें कुछ पारम्परिक संस्कार और सीमित सामाजिक भूमिका की झलक भी मिलती है। दिनकर की नारी-दृष्टि समकालीन स्त्री-विमर्श के लिए प्रासंगिक है। वे नारी को संघर्षशील, सशक्त और स्वतन्त्र स्वरूप में प्रस्तुत करते हैं, जो आज की नारी की जंग और आत्म-प्रत्यय की कहानी के साथ मेल खाती है। हालाँकि उनकी रचनाएँ पूरी तरह आधुनिक विमर्श से मेल न खा पाती हों, फिर भी; वे स्त्री-विमर्श के विकास में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। दिनकर की रचनात्मकता में नारी-दृष्टि न केवल हिन्दी साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, बल्कि यह नारी के व्यक्तित्व, उसकी आन्तरिक जटिलता, संघर्ष और सशक्तीकरण का भी सशक्त चित्रण प्रस्तुत करती है। उनकी कविताएँ नारी की बहुआयामी छवि को सामने लाती हैं और नारीवादी विमर्श को नयी दिशा देती हैं।

सशक्त और स्वतन्त्र नारी : दिनकर ने नारी को सशक्त, स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी कविताओं में नारी केवल पारम्परिक गृहिणी या पति की सन्तान नहीं, बल्कि स्वतन्त्र सोच रखने वाली और अपने अधिकारों के लिए लड़ने वाली नायिका होती है। दिनकर की नारी-दृष्टि में सम्वेदनशीलता के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक गहराई भी है, जो नारी के भीतर के द्वन्द्व, प्रेम, वेदना और संघर्ष को सूक्ष्मता से उजागर करती है।

नारी का सामाजिक सन्दर्भ : दिनकर ने नारी को उसके सामाजिक परिवेश के साथ जोड़ा है, जहाँ नारी को अपने अस्तित्व के लिए पारम्परिक और सामाजिक बन्धनों से लड़ना पड़ता है। दिनकर की नारी-दृष्टि समकालीन स्त्री-विमर्श की अनेक धाराओं से मेल खाती है। वे नारी के अधिकार, स्वतन्त्रता, आत्म-चेतना और सामाजिक समानता के पक्षधर हैं। उनकी कविताएँ आज की नारी के संघर्ष और विजय की कहानी को प्रतिबिम्बित करती हैं। दिनकर की रचनात्मकता में नारी केवल कोमलता या प्रेम की प्रतीक नहीं है, बल्कि वह विद्रोह, चेतना और शक्ति की मूर्ति भी है। उनकी भाषा, प्रतीक-योजना और काव्य-शैली नारी के बहुआयामी व्यक्तित्व को उजागर करने के लिए अत्यन्त प्रभावशाली रही है। दिनकर की भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी जन-मानस से जुड़ी है। वह ओजपूर्ण, भावविह्वल और वैचारिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। नारी पात्रों के माध्यम से वह भाषा को एक सशक्त माध्यम बनाते हैं, जो केवल कोमल भावनाओं को नहीं, बल्कि संघर्ष, विद्रोह और आत्म-गौरव को भी अभिव्यक्त करती है। दिनकर के काव्य में नारी प्रतीकों के माध्यम से विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्शों को उद्घाटित करती है। नारी को 'अग्नि'

और 'ज्योति' का प्रतीक बनाकर दिनकर उसे आत्मबल और चेतना का स्वरूप प्रदान करते हैं। नारी को जननी और भूमि के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत कर वे उसकी सृजनात्मकता और धैर्य की महत्ता को रेखांकित करते हैं। दिनकर की शैली में ओजपूर्ण अभिव्यक्ति और करुणामय सम्वेदना का सुन्दर समन्वय है। 'रश्मिरथी' की वीर रस प्रधान शैली जहाँ द्रौपदी की अपराजेय छवि को उभारती है, वहीं 'उर्वशी' की सौन्दर्यात्मक और दार्शनिक शैली नारी की आत्म-अन्वेषण की प्रक्रिया को प्रस्तुत करती है।

गद्यात्मक छन्द प्रयोग : दिनकर छन्दों के बन्धन से मुक्त होकर गद्यात्मक शैली में गहराई से स्त्री-चेतना को उभारते हैं। वे पुरुष दृष्टि से नहीं, बल्कि सम्वेदनशील और अनुभूतिपरक दृष्टि से नारी को देखते हैं। दिनकर के काव्य में नारी पात्र केवल प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे सम्वाद करती हैं– समाज से, पुरुषों से और अपने आप से। यह सम्वादात्मकता उन्हें जड़ या सहानुभूति की पात्र नहीं, बल्कि विमर्श की सक्रिय एजेण्ट बनाती है। दिनकर के समय में भले ही संगठित स्त्री-विमर्श साहित्य के केन्द्र में नहीं था, परन्तु उनके काव्य की नारी प्रतिमाएँ आज के स्त्री-विमर्श के कई बिन्दुओं से सम्वाद करती हैं। आज के स्त्री-विमर्श में स्त्री की स्वायत्तता, पहचान और आत्म-निर्णय की माँग प्रमुख है। दिनकर की 'उर्वशी' आत्मचेतन स्त्री है, जो प्रेम, देह और आत्मा के बीच सम्वाद करती है। वह अपने निर्णय खुद लेती है, परम्परा को चुनौती देती है और अपने अस्तित्व के लिए जूझती है। उर्वशी कहती है– ''मैं केवल तुम्हारा सुख नहीं, अपना मार्ग भी हूँ।'' यह कथन समकालीन नारीवादी विमर्श के 'सेल्फ' के स्वरूप को स्पष्ट करता है। द्रौपदी का चित्रण केवल एक पीड़िता के रूप में नहीं है, बल्कि प्रतिरोध की प्रतीक के रूप में है। समकालीन विमर्श में जब स्त्री सत्ता से टकराती है और प्रश्न करती है, तो द्रौपदी की छवि आज भी उतनी ही प्रासंगिक हो उठती है। वह पूछती है, सभा में बैठे धर्मगुरुओं से– ''क्या स्त्री का अपमान धर्म है?'' यह प्रश्न आज भी न्यायपालिका, पितृसत्तात्मक व्यवस्था और सामाजिक मूल्य-व्यवस्था पर लागू होता है।

'उर्वशी' में देह, प्रेम और आत्मा के बीच द्वन्द्व को दिनकर ने गहन दार्शनिक स्तर पर उठाया है। आज के स्त्री-विमर्श में भी यह प्रश्न उठता है कि क्या स्त्री केवल देह है? क्या उसकी कामनाएँ और उसकी इच्छाएँ वैध हैं? दिनकर इस प्रश्न से टकराते हैं और उत्तर में उर्वशी को एक सम्वेदनशील, स्वतन्त्र और जिज्ञासु स्त्री के रूप में चित्रित करते हैं। दिनकर की नारी मात्र प्रेमिका या योद्धा नहीं है, वह सृजनकर्ता भी है– जननी और संस्कृति की वाहिका। समकालीन स्त्री-विमर्श में मातृत्व को पुनर्परिभाषित किया गया है। दिनकर के काव्य में यह परम्परा को चुनौती न देकर, सृजन की भूमिका को आत्म-गौरव से जोड़ती है। दिनकर की रचनात्मकता में नारी का स्थान केवल काव्य की शोभा तक सीमित नहीं है, बल्कि वे स्त्री को एक विचार, चेतना और क्रिया के रूप में स्थापित करते हैं। द्रौपदी और उर्वशी उनके काव्य में दो ऐसे स्तम्भ हैं, जो समय, संस्कृति और चेतना के अन्तराल को पाटते हैं। दिनकर की नारी-दृष्टि दो ध्रुवों को एक साथ समेटती है– वीरता और करुणा। द्रौपदी जहाँ आक्रोश की ज्वाला है, वहीं उर्वशी आत्म-विनम्रता और प्रेम की गहराई है। यह विविधता उनके स्त्री पात्रों को सम्पूर्णता प्रदान करती है।

दिनकर भारतीय परम्परा से जुड़कर आधुनिक चेतना का संधान करते हैं। वे स्त्री को देवी, जननी या पतिव्रता के पारम्परिक रूपों से निकालकर उसे 'मनुष्य' के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह दृष्टिकोण आधुनिक स्त्री-विमर्श की नींव से मेल खाता है। दिनकर का नारी-चित्रण केवल एकपक्षीय नहीं है। वे सम्वाद के माध्यम से स्त्री और पुरुष, कर्तव्य और अधिकार, देह और आत्मा के बीच सेतु बनाते हैं। यह सम्वादात्मकता उनके साहित्य को स्थायित्व और व्यापकता प्रदान करती है।

आज जब स्त्री-विमर्श अपने विविध चरणों में विविध मुद्दों से जूझ रहा है – देह, पहचान, अधिकार, प्रतिनिधित्व– दिनकर का साहित्य इन विमर्शों को भारतीय सन्दर्भ में एक गहन और सम्वेदनशील धरातल प्रदान करता है। हालाँकि दिनकर स्वयं नारीवादी नहीं थे, परन्तु उनकी काव्य-दृष्टि में स्त्री के लिए जो सम्मान, समझ और स्थान है, वह उन्हें आधुनिक स्त्री-विमर्श का एक मौन सहयोगी बना देता है। आज के सन्दर्भ में उनके साहित्य का पुनर्पाठ न केवल साहित्यिक, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी आवश्यक हो गया है।

सन्दर्भ-सूची

१. दिनकर (१९५२)– रश्मिरथी (द्वितीय संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, प्रयाग।
२. दिनकर (१९६१)– उर्वशी (प्रथम संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली।
३. विश्वनाथ त्रिपाठी (२०१०)– रामधारी सिंह दिनकर की काव्य-दृष्टि (पृष्ठ ४५–७२), साहित्य संगम प्रकाशन, वाराणसी।
४. के. पाण्डेय (२००८)– हिन्दी काव्य में स्त्री की छवि (पृष्ठ १०१–१३५), साहित्य भवन, दिल्ली।
५. एम. वर्मा (२०१५)– आधुनिक हिन्दी कविता में नारी-विमर्श (पृष्ठ ८९–११८), राधाकृष्ण प्रकाशन, भोपाल।
६. आर. मिश्रा (२०१२)– भारतीय साहित्य और स्त्री-चेतना (पृष्ठ ५७–९३), नवीन साहित्य निकेतन, लखनऊ।
७. एस. कुमार (२०१७)– रामधारी सिंह दिनकर : एक पुनर्पाठ (पृष्ठ ६३–९५), प्रभात प्रकाशन, पटना।
८. जी. शर्मा (२०११)– उर्वशी : देह, प्रेम और आत्मा का संघर्ष (पृष्ठ ३३–६६), सरस्वती बुक्स, दिल्ली।
९. पी. चौधरी (२०१८)– युद्ध और नारी : रश्मिरथी का स्त्री पक्ष (पृष्ठ ४८–८०), यश प्रकाशन, जयपुर।
१०. एन. जोशी (२००५)– काव्य और चेतना : दिनकर के काव्य में नारी-स्वर (पृष्ठ २९–५५), साहित्य गंगा, नागपुर।
११. डी. ठाकुर (२०१६)– समकालीन स्त्री-विमर्श और हिन्दी साहित्य (पृष्ठ ७४–११०), बुक्स इंडिया, नई दिल्ली।
१२. वी. शर्मा (२०१९)– स्त्री-दृष्टि और हिन्दी कविता (पृष्ठ ९२–१२१), नवनीत प्रकाशन, पटना।
१३. एस. झा (२०२०)– दिनकर का साहित्य और स्त्री-विमर्श (पृष्ठ ४०–७७), भारती प्रकाशन, बनारस।
१४. आर. श्रीवास्तव (२०१३)– हिन्दी साहित्य में नारी की भूमिका (पृष्ठ ५५–८८), विद्या निकेतन, इलाहाबाद।
१५. ए. शुक्ला (२०२१)– स्त्री और साहित्य : एक विमर्श (पृष्ठ १००–१३५), संकल्प पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

●

हिन्दी महिला नाट्य-लेखन में अभिव्यक्त स्त्री-जीवन की समस्याएँ

देवानंद यादव*, प्रो. रेनू सिंह**

शोध-सारांश : वर्तमान समाज में स्त्री-जीवन अनेक जटिल समस्याओं से ग्रस्त है, जो जन्म से पहले ही प्रारम्भ हो जाती हैं। भ्रूणहत्या जैसी अमानवीय प्रथाएँ आज भी विद्यमान हैं, जहाँ पुत्र-प्राप्ति की लालसा में कन्या-भ्रूण को समाप्त कर दिया जाता है। यदि कोई स्त्री जन्म ले भी लेती है, तो उसे लिंग-भेद, सामाजिक उपेक्षा और पारिवारिक असमानता का सामना करना पड़ता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में पुरुषों को उत्तराधिकार प्राप्त होता है, जबकि स्त्री को इस अधिकार से वंचित रखा जाता है। समाज में प्रचलित दहेज-प्रथा ने न केवल स्त्री को आर्थिक बोझ बना दिया है, बल्कि उसके विवाह को एक सौदा बना दिया है, जिसके कारण कई बार अयोग्य वर से भी विवाह कर दिया जाता है। स्त्रियों की सुरक्षा आज भी एक गम्भीर चिन्ता का विषय बनी हुई है। यौन-उत्पीड़न, घरेलू हिंसा और बलात्कार की घटनाएँ उन्हें मानसिक और शारीरिक पीड़ा पहुँचाती हैं। इसके अतिरिक्त; वैवाहिक जीवन में असमानता, सास-ननद द्वारा प्रताड़ना, संतान न होने पर बाँझपन का लांछन और केवल कन्या संतान होने पर स्त्री को दोषी ठहराने जैसी सामाजिक कुरीतियाँ उसे दोयम दर्जे का जीवन जीने पर विवश करती हैं। इन समस्त समस्याओं को हिन्दी महिला नाटककारों ने अपनी रचनाओं में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उनके नाटक स्त्री-जीवन की जटिलताओं को उजागर करते हुए समाज की विषमताओं पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। यह शोध-पत्र स्त्री-जीवन की उन समस्याओं का विश्लेषण करता है, जिन्हें महिला नाटककारों ने अपने नाट्य साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है।

बीज शब्द : स्त्री-जीवन, नारी-जीवन की समस्या, हिन्दी महिला नाट्य-लेखन, स्त्री-विमर्श, हिन्दी नाटक।

वर्तमान हिन्दी महिला नाट्य-लेखन में मीराकांत, नादिरा जहीर बब्बर, मधु धवन, विभा रानी और इंदिरा दांगी जैसी नाटककारों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इन्होंने अपने नाटकों में स्त्री-जीवन को केन्द्र में रखते हुए समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया है। इनके नाट्य-लेखन में पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के संघर्ष, अधिकार, उत्पीड़न और अस्तित्व की जटिलताओं को प्रमुखता से उकेरा गया है।

हिन्दी महिला नाट्य-लेखन में स्त्री-जीवन से जुड़ी समस्याओं का अध्ययन निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है—

पितृसत्तात्मक समाज-व्यवस्था : इंदिरा दांगी का नाटक 'रानी कमलापति' पितृसत्तात्मक समाज-व्यवस्था की उन जटिलताओं को उजागर करता है, जहाँ स्त्री को पुरुष-सत्तात्मक हितों के अनुरूप जीवन जीने के लिए विवश किया जाता है। नाटक में रानी कमलापति का विवाह निज़ामशाह से उनकी माँ सरकार की महत्त्वाकांक्षा और राजनीतिक स्वार्थ के कारण होता है,

* शोधार्थी– हिन्दी विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकण्टक, म.प्र.

** अधिष्ठाता– मानविकी एवं भाषा संकाय, हिन्दी विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकण्टक, म.प्र.

जबकि उनके पिता कृपाराम इसका विरोध करते हैं। परन्तु समाज में स्त्री की भूमिका केवल सौदेबाजी की वस्तु बनकर रह जाती है। निज़ामशाह के लिए विवाह मात्र सत्ता और उत्तराधिकारी-प्राप्ति का साधन है, जिससे स्त्री के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। रानी कमलापति अपने आत्मसम्मान और स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करती हैं, लेकिन समाज की रूढ़ियाँ और सत्ता-संरचनाएँ उसे नियन्त्रित करने का प्रयास करती हैं। अन्ततः उसकी माँ ही परिवार और कबीले की परम्पराओं की रक्षा के नाम पर उसे मृत्यु के लिए विवश कर देती हैं, जो पितृसत्ता की जड़ता को उजागर करता है। इस प्रकार, नाटक पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति, उसकी सीमाएँ और संघर्ष को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है।

विभा रानी कृत नाटक 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो' पुरुष की कुत्सित मानसिकता एवं पितृसत्तात्मक समाज-व्यवस्था के कारण स्त्री के ऊपर उसके वर्चस्व को व्यक्त करता है। नाटक में अंकिता के पिता द्वारा अंकिता का बलात्कार करने पर जब वह घर से चली जाती है, तो उसकी माँ उससे मिलने के लिए जाने लगती हैं। अंकिता का पिता उसे रोकते हुए कहता है– ''मैं तुम्हारा पति हूँ। यह मेरा घर है। यहाँ वही होगा, जो मैं चाहूँगा और तुम वही करोगी, जो मैं कहूँगा।''[१]

नाटक में अंकिता के पिता द्वारा अंकिता का बलात्कार किया जाता है, जिसके कारण अंकिता काफी मानसिक पीड़ा झेल रही होती है। उसके मित्र सुजीत और इशिता उसे सान्त्वना देते हैं और उसे इशिता अपने घर ले जाती है। नाटक में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का यथार्थ वर्णन भी देखने को मिलता है। जब इशिता के घर जाने के लिए अंकिता की माँ निकलती हैं, तो उसका पति उसे रोकते हुए कहता है– ''ज्यादा तेवर दिखाने की कोशिश मत करो। मत भूलो कि इस घर में मैं कमाता हूँ, मैं। तू मेरे पैसों पर पलने वाली कुतिया हो, just a bitch. मैंने अगर तुम्हें छोड़ दिया न, तो दर-दर की भिखारन हो जाओगी, दर-दर की भिखारन। और घर से निकाली गई कुतिया को बाहर वाले नोंच-नोंच कर खा जाते हैं।''[२] एक स्त्री अपना घर छोड़कर पति के घर में आती है और उसे अपना घर समझकर अपना सर्वस्व पति को समर्पित कर देती है। परन्तु पति घर में पैसा कमाने का स्रोत अपने आप को समझता है और अपनी पत्नी को वह केवल पैर की जूती समझने लगता है। अंकिता का पिता भी अपनी पत्नी को केवल अपने घर की पालतू कुतिया समझता है, जो घर के काम करे, परन्तु घर के निर्णय में कोई दखल न दे।

लिंग-भेद : नाटक 'सकुबाई' में सकुबाई के घर पर आर्थिक तंगी होती है, जिसके कारण सकुबाई और उसकी बहन वासंती को स्कूल नहीं जाने दिया जाता, परन्तु उसके भाई नितिन को पढ़ने के लिए स्कूल भेज दिया जाता है। सकुबाई पढ़ने के लिए जिद करती है। वह कहती है– ''मैं पाठशाला जाने के लिए बहुत रोई थी। इस पर मेरी माँ ने जोर से एक थप्पड़ मेरे गाल पर मारा और बोली– तू पाठशाला जाएगी? तू पाठशाला जाएगी, तो घर का काम कौन करेगा?''[३] नितिन को पढ़ाया जाता है, क्योंकि वह लड़का है।

भ्रूणहत्या : 'जी, जैसी आपकी मर्जी' नाटक की पात्र दीपा जब अपनी माँ के गर्भ में थी, तब उसका पिता अस्पताल लेकर जाता है, उसका गर्भपात करवाने के लिए। परन्तु डॉक्टर गर्भपात करने से इनकार करते हुए कटता है– ''मैं आपकी रिपोर्ट पुलिस में कर सकता हूँ। आपकी हिम्मत भी कैसे हुई इस काम के लिए मेरे पास आने की।''[४] यह नाटक पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों के प्रति भेदभाव और उनकी उपेक्षा को दर्शाता है। दीपा, जो झाँसी की रानी की

भूमिका निभाकर अपनी प्रतिभा साबित करती है, समाज द्वारा उचित सम्मान और अवसर से वंचित रहती है। उसकी माँ और बहनों के साथ किया गया भेदभाव दर्शाता है कि लड़कियों की शिक्षा और प्रतिभा की सराहना होते हुए भी उन्हें समान अधिकार नहीं मिलते। वहीं, बेटे को विशेष सुविधाएँ दी जाती हैं, जो पारिवारिक और सामाजिक असमानता को उजागर करता है। यह नाटक स्त्रियों की संघर्षशीलता और सामाजिक अन्याय के प्रति चेतना जगाने का प्रयास करता है।

प्रेम विवाह की समस्या : मधु धवन के नाटक 'मैंने कब चाहा' में दीपक अपने से बड़ी लड़की एकता से अंतरजातीय प्रेम विवाह करता है। परन्तु एकता के दीपक से ज्यादा पढ़ी-लिखी होने के कारण उसे अपने शिक्षित होने पर अहंकार होता है, जिसके कारण उन दोनों के आपसी रिश्ते बिगड़ जाते हैं। दीपक एकता को छोड़कर उत्तरकाशी संन्यास लेकर चला जाता है। अंत में, एकता को अपने किए पर पछतावा होता है और वह दीपक के विरह में जल रही है। वह अपने पछतावे में कहती है– ''मैंने कब कहा मैं परित्यक्ता होऊँ... पुत्र बेबाप का कहलाये...? मुझे बस मेरा पति मिल जाये... मैं दुनिया की तमाम खुशियाँ उसके चरणों पर न्योछावर कर दूँगी... वे जो कहेंगे, मैं वही करूँगी।''[५]

यह नाटक स्त्री की सामाजिक स्थिति, वैवाहिक जीवन में उसकी आश्रयशीलता और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रभाव को उजागर करता है। एकता का पश्चाताप यह दर्शाता है कि विवाह केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना का भी हिस्सा है, जिसमें स्त्री की पहचान और सम्मान जुड़ा होता है। पति के बिना स्वयं को असुरक्षित और अस्वीकार्य मानने की उसकी भावना इस बात को रेखांकित करती है कि समाज में स्त्री की स्वायत्तता सीमित है। अंततः, नाटक यह सन्देश देता है कि स्त्री को केवल पति और परिवार के सन्दर्भ में नहीं, बल्कि अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

परित्यक्त स्त्री-जीवन : 'जी, जैसी आपकी मर्जी' नाटक की पात्र शोभा काकू को उसके पति छोड़कर अमेरिका चले जाते हैं, नौकरी करने के लिए। परन्तु वहाँ जाने के बाद १५ वर्ष बीत जाते हैं, वह वापस नहीं आते। वहीं पर वह किसी अन्य लड़की से विवाह कर लेते हैं। उन्हें संतानें भी होती हैं। १५ वर्ष तक इंतजार करने के बावजूद भी काका वापस नहीं आते हैं और एक बार अपने बच्चों को भारत घुमाने के लिए आते हैं, तब शोभा काकू से बिना मिले ही चले जाते हैं। इससे शोभा काकू अपने हाथ की दोनों नसों को काटकर आत्महत्या कर लेती है। 'जी, जैसी आपकी मर्जी' की पात्र सुल्ताना को चार लड़कियाँ होती हैं, जिसके कारण उसका पति उसे तलाक देकर छोड़ देता है। 'कंधे पर बैठा था शाप' नाटक में कालिदास अपनी पत्नी विद्योत्तमा से प्रेरणा ग्रहण करके महान कवि कालिदास बनते हैं, जिसके कारण वह अपनी पत्नी का त्याग कर देते हैं। वह उसे केवल गुरु रूप में ही स्वीकार करते हैं। विद्योत्तमा को अपना गुरु मानते हैं और गुरु के समान सम्मान देते हुए, वे उनके साथ पत्नी रूप में नहीं रह सकते। विद्योत्तमा अपने आपको पति द्वारा परित्यक्त मानकर कालिदास को शाप देती है– ''मैं तुम्हें कुछ दे सकती हूँ.. हाँ... हाँ... मैं तुम्हें शाप देती हूँ... जाओ! तुम्हारे जीवन के अंत का कारण एक स्त्री ही हो... तुमने पत्नी की कामना का अपमान किया है। उस कामना का, जिस पर उसका पूरा अधिकार है। अहंकार से भरे तुम्हारे इस जीवन का अंत उसके हाथों होगा, जिसे तुम और तुम्हारा समाज अबला कहता है और उसे अबला बने रहने पर विवश करता है। मेरा शाप व्यर्थ नहीं जाएगा महाकवि .....कभी नहीं .....कभी नहीं...।''[६]

विवाह-विच्छेद : 'जी, जैसी आपकी मर्जी' की पात्र सुल्ताना को लगातार चार लड़की पैदा होने के बाद उसका पति अकील उसे तलाक दे देता है। सुल्ताना कहती है– ''अचानक पीछे से मेरे शौहर आए और कहा– 'काहे का शौहर? तलाक... तलाक.. तलाक..ले, हो गया तलाक।' और फिर मुझे घसीट कर, धक्के मार-मार के मेरी लड़कियों के साथ घर से बाहर निकाल दिया।''[७]

अनैतिक यौन-सम्बन्ध : विभा रानी के नाटक 'दूसरा आदमी दूसरी औरत' में शोमा अपने पति से असंतुष्ट होने के कारण संभव सिंह के साथ अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करती है। संभव सिंह भी शादीशुदा है, परन्तु वह शोमा के साथ शारीरिक सम्बन्ध बनाता और प्रेम करता है। विभा रानी अपने नाटक के माध्यम से यह सन्देश देती हैं कि परपुरुष से अवैध सम्बन्ध रखने वाली स्त्री समाज में सम्मानजनक स्थान नहीं पा सकती। उसे केवल 'दूसरी औरत' का दर्जा मिलता है, जो पुरुष के साथ शारीरिक सुख तो पा सकती है, लेकिन सामाजिक स्वीकृति नहीं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को केवल भोग की वस्तु मानती है और उस पर अपना वर्चस्व बनाए रखना चाहती है। नादिरा बब्बर का नाटक 'जी, जैसी आपकी मर्जी' में बबली का विवाह एम.बी.ए. पास अमरदीप कोहली से होता है, जो कि दिल्ली में बड़ी कम्पनी में बड़ी पोस्ट पर है। वह खुद को 'माचो मैन' समझता है और बबली के साथ शारीरिक सम्बन्ध से संतुष्ट नहीं होता है। वह बबली से कहता है– ''या बबली! तुम्हारे साथ सेक्स करना ऐसा, जैसे किसी मरी हुई मछली के साथ– No satisfaction what so ever.''[८] अमरदीप कोहली अपनी पत्नी बबली से यौन-असंतुष्टि के कारण उसे छोड़कर अपने बॉस की पत्नी अनीता के साथ अफेयर करता है।

यौन-शोषण एवं बलात्कार : वर्तमान समय में महिलाओं के ऊपर होने वाले अपराधों में यौन-शोषण एवं बलात्कार एक गम्भीर समस्या बनती जा रही है। महिला नाटककारों ने अपने नाटकों में यौन-शोषण एवं बलात्कार की समस्या को उठाया है। मीराकांत का नाटक 'अंत हाजिर हो' मध्यवर्गीय परिवार के अन्दर यौन-उत्पीड़न की समस्या को लेकर लिखा गया है। समाज में किस प्रकार सामाजिक रिश्तों का पतन हो रहा है, इसका जीता-जागता उदाहरण 'अंत हाजिर हो' नाटक में देखने को मिलता है। नाटक के पूर्वार्द्ध में नरेन्द्र द्वारा सलोनी और उसकी माँ के साथ सम्बन्ध एवं नाटक के अंत में छोटी के पिता द्वारा छोटी और अनु दीदी के साथ यौन-उत्पीड़न– यह समाज की विडम्बना और विकृति को दर्शाता है। पुरुष की कुत्सित वासना का शिकार लड़कियाँ होती हैं। पहले घर के बाहर स्त्रियाँ असुरक्षित थीं, परन्तु वर्तमान में घर के अन्दर भी वे खुद को सुरक्षित महसूस नहीं करती हैं। उसके अपने ही घर-परिवार के सदस्यों द्वारा उसका यौन-उत्पीड़न एवं बलात्कार किया जाता है। यह समस्या आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक नयी समस्या को दर्शाता है। साहित्य के क्षेत्र में जब से स्त्री-विमर्श का जन्म हुआ है, तब से स्त्रियों ने रचनाएँ लिखना आरम्भ किया है। उसके अन्दर उन्होंने अपनी स्वयं की अनुभूतियों के आधार पर स्त्रियों की समस्याओं को वाणी दी है। यही अभिव्यक्ति मीराकांत के नाटक 'अंत हाजिर हो' में देखने को मिलती है। इसमें स्त्री-विमर्श के माध्यम से स्त्रियों के ऊपर हो रहे यौन-शोषण और उत्पीड़न की समस्या को दिखाना एवं समाज को जागरूक करना लेखिका का उद्देश्य है। 'सकुबाई' नाटक में सकुबाई के ऊपर उसके मामा द्वारा बलात्कार करना दिखाया गया है। सकुबाई कहती है– ''एक दिन आई को जागरण के लिए सारी रात बर्तन धोने के लिए जाना

था। उस रात गहरी नींद में मुझे लगा जैसे मुझे कोई कुचल दे रहा है। दिन भर की जी-तोड़ मेहनत से थका मेरा बेहोश बदन... मैं यह समझ नहीं पा रही थी कि मेरे साथ क्या हो रहा है? बलात्कार...? या फिर छोटे मामा ने मुझे बेहोश कर दिया था।''[९]

'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो' नाटक में अंकिता के पिता एवं भाई द्वारा १५ दिनों तक लगातार उसके साथ बलात्कार करने की घटना पुरुष की कुत्सित कामवासना को चित्रित करता है। अंकिता कहती है– ''मैं यह सोच ही नहीं सकी कि मेरा बाप, मेरा भाई, जो मेरा अपना है, वह मेरे साथ ऐसा कुछ... यदि किसी अनजान आदमी ने... तो मैं पूरी ताकत से उसका मुकाबला करती, चीखती-चिल्लाती, लेकिन... लेकिन यहाँ तो वे हाथ थे, जिन्होंने मुझे प्यार से गोद में लेकर खिलाया था। मेरे सर पर हाथ फेरा था। यहाँ वे हाथ थे, जिन पर मैंने राखी बाँधी थी। यहाँ वे थे... जिन पर यकीन करके हम जीवित रहते हैं और निश्चिंत भी कि हमें कोई छू भी नहीं सकता।''[१०] यह अमानुषिकता भाई-बहन और पिता-पुत्री के सम्बन्ध को कलंकित कर देती है। यह कृत्य मानवीय और नैतिक मूल्यों के पतन का भी परिचायक है। 'जी, जैसी आपकी मर्जी' नाटक में हकीम अपनी बेटी के साथ बलात्कार करता है। सुल्ताना कहती है– ''घर पहुँची, तो पूरा घर खाली। सोच रही थी कि सबीहा और हकीम साहब कहाँ गए कि अचानक बाथरूम से लोटा गिरने की आवाज आई। तेजी से बाथरूम की तरफ दौड़ी, दरवाजे को धक्का मार के खोला, तो क्या देखती हूँ कि सबीहा बाथरूम में फर्श पर पड़ी हुई है। पूरी नंगी, मुँह में कपड़ा ठूँसा हुआ और वो हकीम नंगा मेरी बेटी पर चढ़ा हुआ था।''[११] नाटक में हकीम अपनी ही बेटी के साथ बलात्कार करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप सुल्ताना उसका खून कर देती है।

दाम्पत्य जीवन में विघटन : 'मैंने कब चाहा' नाटक में मधु धवन ने एक उच्चवर्गीय समाज की मानसिकता, छोटी-मोटी टकराहटों एवं प्रेम-विवाह या उनके परिणामों से अभिमानी स्त्री के कारण टूटते परिवारों की कथा को नाटक का वर्ण्य-विषय बनाया है। मधु धवन के नाटक 'मैंने कब चाहा' में दीपक अपने से उम्र में बड़ी लड़की एकता से अंतर्जातीय प्रेम-विवाह करता हैं। एकता दीपक से ज्यादा पढ़ी-लिखी है। उसे अपने एम.एस.सी. पास होने पर घमण्ड है। यही अहंकार दोनों के रिश्तों में दरार पैदा करता है और दीपक एकता को छोड़कर सन्यास लेकर उत्तरकाशी चला जाता है। दोनों का पारिवारिक सम्बन्ध बिगड़ जाता है। ''आधुनिक काल में स्त्री-स्वातन्त्र्य को लेकर जो विश्वव्यापी नारी-आन्दोलन हुए, उन्होंने सदियों से चले आते सामाजिक ढाँचे और पारिवारिक सम्बन्धों – स्त्री-पुरुष सम्बन्धों– में भारी उथल-पुथल मचा दी। परिवार और समाज को स्थायित्व एवं सुरक्षा प्रदान करने वाली विवाह जैसी मजबूत संस्था की जड़ें भी हिल गयीं। समानाधिकार की लड़ाई अहंकारों की टकराहट में बदल गई।''[१२] महिला नाटककारों ने यह बताने का प्रयास किया है कि एक स्त्री में अहंकार आ जाता है तो वह अपने ही परिवार की खुशियों को नष्ट कर डालती है।

हिंसा की शिकार नारी : घरेलू हिंसा का शिकार स्त्रियाँ सदा से होती रही हैं। नादिरा जहीर बब्बर के नाटक 'जी, जैसी आपकी मर्जी' में सुल्ताना के ऊपर उसकी सास और पति का अत्याचार देखा जा सकता है। सुल्ताना को चार बेटियाँ पैदा होने के बाद अकील और उसकी सास के द्वारा उसको बार-बार मारा-पीटा जाता है। सुल्ताना की सास कहती है– ''देख, मैंने चार-चार लड़के पैदा किए, तू एक तो घर का चिराग पैदा कर।''[१३] सुल्ताना को जब चौथी बार भी लड़की पैदा होती है, तो उसकी सास उसे घर से घसीटते हुए बाहर निकाल देती है। उसका

पति भी तीन बार तलाक-तलाक कहकर उसे तलाक दे देता है। यह नाटक घरेलू हिंसा, पितृसत्तात्मक मानसिकता और स्त्री के प्रति सामाजिक अन्याय को उजागर करता है। सुल्ताना पर होने वाला अत्याचार यह दर्शाता है कि समाज में अब भी पुत्र-जन्म को ही वरीयता दी जाती है, और स्त्री को उसकी संतान के आधार पर आँका जाता है। नाटक यह सन्देश देता है कि स्त्रियों को केवल सहनशीलता का प्रतीक न मानकर, उनके अधिकारों और गरिमा की रक्षा आवश्यक है।

वेश्यावृत्ति की समस्या : मीराकांत के नाटक 'कंधे पर बैठा था शाप' में गणिका कामिनी कुमारगुप्त से प्रेम करती है। परन्तु कुमारगुप्त उससे विवाह नहीं कर पाता, क्योंकि वह एक वेश्या है। इस नाटक में वेश्या जीवन की समस्याओं को चित्रित किया गया है। नाटक के अन्त में, राजम्मा गणिकाओं की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए कहती है– ''मेरी बच्ची! तूने वह बचा हुआ विष क्यों पी लिया? क्यों पी लिया? विष.... विष तो हम कब से पीती आई हैं। प्रवंचना का विष.... उपेक्षा का विष.... तिरस्कार का विष.... न जाने कब तक पीती रहेंगी विष! हमारा यह विषपान कोई न समझ पाया... कोई न समझ पाया... कोई नहीं।''[१४] नाटक 'सकुबाई' में सकुबाई की बहन वासंती आर्थिक तंगी से तंग आकर एक ऑटो ड्राइवर के साथ भाग जाती है और उसके साथ भी वह संतुष्ट न रहकर वेश्यावृत्ति को अपना लेती है।

कामकाजी महिलाओं की समस्या : एक स्त्री पत्नी के रूप में घर के सभी कार्य करती है। पति का ख्याल रखती है। वही जब माँ बनती है, तो बच्चों को सँभालती है। उनका पालन-पोषण करती है। स्कूल जाने पर उनको टिफिन लगाना, उन्हें कपड़े पहनाना, नहलाना-धुलाना और उन्हें पढ़ाना, उनका होमवर्क चेक करना आदि सभी कार्य करती है। इतना कार्य करने के बावजूद भी पति आसानी से कह देता है कि तुमने किया ही क्या है? तुम दिनभर करती क्या हो? 'आओ तनिक प्रेम करें' नाटक में सपन और ओम गुप्ता के बीच में नोंक-झोंक के मध्य जब ओम गुप्ता सपन के ऊपर आरोप लगाता है कि– ''माताएँ ढाई साल की उम्र से ही बच्चों को प्रेप में, फिर ट्यूशन पर भेज देती हैं। क्यों? क्योंकि इतनी देर बच्चा घर से बाहर रहेगा, तो मम्मियाँ आराम करेंगी। इतना ही आराम का शौक है, तो पैदा ही मत करो ना।''[१५] सपन जवाब देते हुए कहती है कि– ''मम्मियाँ कोई आराम नहीं करती हैं। जितने समय बच्चे बाहर रहते हैं, उतने समय में मम्मियाँ घर के सभी काम निपटा देती हैं। मर्द कब ध्यान देते हैं घर पर या बच्चों पर? उन्हें तो बस अपनी जरूरत के हिसाब से सब कुछ चाहिए। उनका रुटीन, उनकी जिन्दगी कुछ भी डिस्टर्ब न हो। बच्चों से भी चलते-चलते कैजुअली पूछ लेंगे पढ़ाई- लिखाई, परीक्षा-वरीक्षा। आ गए अच्छे मार्क्स, तो वेरी गुड, कीप इट अप। अपना कॉलर फटाक से ऊँचा कर लेंगे कि आखिर बच्चा किसका है? वरना सीधा मम्मियों पर हमला– कैसी माँ हो तुम? करती क्या हो सारा दिन? बच्चों को ठीक से पढ़ा भी नहीं सकतीं? पढ़ाना भी क्या? वह तो ट्यूशन पर जाते हैं। तुम्हें तो बस उन्हें देखना भर होता है। वह भी ढंग से नहीं कर पातीं।''[१६]

निष्कर्ष : हिन्दी महिला नाटककारों ने अपने नाटकों के माध्यम से स्त्री-जीवन की विविध समस्याओं को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया है। इंदिरा दांगी, विभा रानी, मधु धवन, मीराकांत और नादिरा जहीर बब्बर जैसी नाटककारों ने अपने नाटकों में नारी-जीवन के संघर्ष, उसकी पीड़ा और सामाजिक अन्याय को केन्द्र में रखा है। इन नाटकों में विशेष रूप से लिंग-भेद, परित्यक्त नारी-जीवन, वेश्यावृत्ति, असंतुष्ट पुरुष की कामवासना, दाम्पत्य-जीवन में तनाव और विघटन

जैसी गम्भीर समस्याओं को उकेरा गया है। इन नाटकों में पितृसत्तात्मक समाज द्वारा थोपे गए पुरुष वर्चस्ववादी विचारों और स्त्री-शोषण की जटिलताओं को दर्शाया गया है। पुरुषों की कुत्सित कामवासना, यौन-उत्पीड़न और बलात्कार की घटनाएँ न केवल स्त्री-जीवन को त्रस्त करती हैं, बल्कि समाज में स्त्री की असुरक्षित स्थिति को भी उजागर करती हैं। महिला नाटककारों ने अपने नाटकों में नारी-संघर्ष को एक सशक्त स्वर प्रदान किया है, जिससे समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता और शोषण पर गहन विमर्श किया जा सके। यह शोध-पत्र हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में चित्रित स्त्री-जीवन की समस्याओं का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करेगा। साथ ही; यह उन सामाजिक संरचनाओं की पड़ताल करेगा, जो नारी-उत्पीड़न के कारक बनती हैं तथा यह भी दर्शाएगा कि नाटकों के माध्यम से समाज को इन समस्याओं के प्रति जागरूक करने का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ-सूची

१. विभा रानी– अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ७० (२०१५)
२. वही– पृ. ७४
३. नादिरा जहीर बब्बर– सकुबाई, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. २१ (२००८)
४. नादिरा जहीर बब्बर– जी, जैसी आपकी मर्जी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. १२, (२०२०)
५. मधु धवन– चिंगारियाँ, मैंने कब चाहा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. १९२, (२०१७)
६. मीराकांत– कंधे पर बैठा था शाप, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, पृ. ५५ (२०१०)
७. नादिरा जहीर बब्बर– जी, जैसी आपकी मर्जी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ३१ (२०२०)
८. वही– पृ. ३८
९. नादिरा जहीर बब्बर– सकुबाई, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. ३० (२००८)
१०. विभा रानी– आओ तनिक प्रेम करें, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. ६२ (२०१५)
११. नादिरा जहीर बब्बर– जी, जैसी आपकी मर्जी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. ३४ (२०२०)
१२. जयदेव तनेजा– रंगकर्म और मीडिया, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. ६७ (२०१५)
१३. नादिरा जहीर बब्बर– जी, जैसी आपकी मर्जी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. ३१ (२०२०)
१४. मीराकांत– कंधे पर बैठा था शाप, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, पृ. ६० (२०१०)
१५. विभा रानी– आओ तनिक प्रेम करें, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. २० (२०१५)
१६. वही– पृ. २१

●

विवेकी राय की कहानियों में चित्रित ग्रामीण जीवन

विजय बहादुर पाल*, डॉ. हिमांशु शेखर सिंह**

सारांश– ग्रामीण जीवन से हमारा आशय है– सादा जीवन/बिना बनावट का जीवन। आज हम महसूस करते हैं कि शहरों के बनावटी जीवन से जब हम थक जाते हैं, तो शान्तिमय वातावरण की खोज में हमें अनायास ही गाँवों की याद आती है। गाँव के जीवन का प्रसंग आते ही हमारे चारों तरफ हरियाली, हवा में सोंधी-सोंधी खुशबू और पक्षियों का कलरव स्मृति-पटल पर अनायास ही उभर आते हैं। गाँव के परिवेश के अनुसार उनका खान-पान, वेश-भूषा उनकी पारम्परिकता पर निर्भर करती है। ग्रामीण जीवन में लोग अपने मन की बातें आपस में करते हैं और अभावों में भी खुशहाल रहते हैं। यद्यपि आज के दौर में ग्रामीण परिवेश में भी आधुनिकता ने अपने पैर पसार लिए हैं, जिस कारण ग्रामीण जनमानस में आपसी वैमनष्यता, कुण्ठा एवं ईर्ष्या की भावना उत्पन्न हो गयी है। सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परस्पर विरोधी मूल्य एक-दूसरे से निरन्तर टकरा-टकरा कर टूट रहे हैं। डॉ. विवेकी राय ने ग्रामीण जीवन में उपजी तमाम विसंगतियों, जैसे– किसानों की पीड़ा, मजदूरों का संघर्ष, गरीबी, नारी-संघर्ष, विधवाओं की दयनीय स्थिति, राजनीतिक वैमनस्य, ईर्ष्या, जातिवाद, दहेज-प्रथा जैसी तमाम कुरीतियों के तह में जाकर कथा का आधार बनाया है।

बीज शब्द– ग्रामीण जीवन, सामाजिक यथार्थ, वर्ग-संघर्ष, कृषक व मजदूर, आधुनिकता-परिप्रेक्ष्य।

आलेख– स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में ग्रामीण जीवन को कथा का आधार बना कर चले 'नई कहानी' आन्दोलन के प्रमुख रचनाकार डॉ. विवेकी राय ने भी ग्रामीण जीवन की विसंगतियों को कथावस्तु बनाया। 'नई कहानी' ग्राम-जीवन की पुनर्प्रतिष्ठा का ही आन्दोलन था। जहाँ एक ओर वे ग्राम्य-जीवन के यथार्थ मधुर सम्बन्धों के मर्म को उकेरते हैं, वहीं ग्रामीण जीवन में व्याप्त विसंगतियों को भी रोमांचक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। वे अपने कथा साहित्य के माध्यम से अंचल के तमाम सामाजिक रीति-रिवाज, सांस्कृतिक लोक-परम्परा, किसानों, मजदूरों, धार्मिक मान्यताओं, पारिवारिक सम्बन्धों का ताना-बाना बुनते हैं। साथ ही; समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं विसंगतियों, जैसे– भ्रष्टाचार, दहेज, ईर्ष्या, राजनीति के द्वारा समाज में विघटन, सम्भ्रान्त लोगों द्वारा ग्रामीणों का शोषण एवं अन्धविश्वासों का चित्रण भी किया है।

विवेकी राय ने अपनी कथा का आधार किसी अन्य लोक को नहीं बनाया, न ही कपोल कल्पित आधार को ग्रहण किया, बल्कि अपने लेखन का आधार आस-पास के परिवेश को ही बनाया। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि– 'स्वातन्त्र्योत्तर गाँवों के बदलाव और उसकी चुनौतियाँ जैसे कुरेद रही हैं। उनका अनकहा-अनछुआ यथार्थ उनके चारों ओर मँडरा रहा है। मैंने दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई जैसे महानगरों को नहीं देखा है। मैंने केवल अपने उन गाँवों को ही देखा।''[१] इसलिए भी कि गाँवों की समस्याओं एवं उसके उत्थान के प्रत्येक पहलू से वे दिन-रात दो-चार होते रहे।

वस्तुत: स्वातन्त्र्योत्तर ग्राम-जीवन को जिस बखूबी और समग्रता में विवेकी राय ने प्रस्तुत

* शोधार्थी– हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ. प्र.
** सह-आचार्य एवं अध्यक्ष– हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ. प्र.

किया, अन्य ग्राम-कथाकारों में इसके दर्शन दुर्लभ हैं। उनकी ग्राम-कथाओं में जहाँ एक ओर आत्मीयता और रागात्मकता है, वहीं दूसरी ओर; आधुनिकता की दुर्गन्ध में घुटती और शोषण की चक्की में पिसती क्रमशः सामाजिक व्यवस्था और ग्रामीण जन की दुर्दशा का यथार्थ अंकन है। इस सम्बन्ध में डॉ. सुवास कुमार ने कहा है– ''गाँव को उसकी सम्पूर्ण स्वाभाविकता में वही लेखक अभिव्यक्त कर सकता है, जो उसे शहरी दूरबीन से नहीं देखता हो, बल्कि गाँवों में रह कर नंगी-खुली आँखों से उसे देख और भोग सका हो।''[२] उनकी अधिकांश कहानियों की पृष्ठभूमि में ग्रामीण जनजीवन का चित्रण है, जिसमें जमीदारों एवं भूपतियों के जुल्म, शोषित, पीड़ित, उपेक्षित किसानों की पीड़ा, भ्रष्टाचार और गरीबी, ग्रामीणों की आशाओं-आकांक्षाओं पर कुठाराघात आदि का बेबाकी से चित्रण हुआ है।

जीवन-परिधि– यह इनका पहला कहानी-संग्रह है। इस संग्रह की कहानियों में अभावग्रस्त एवं गरीबी के थपेड़े खाते हुए लोगों की जीवन-व्यथा एवं विडम्बना को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'समस्या एक-दो की नहीं' कहानी में विधवा असहाय, जो आजीवन गरीबी की चक्की में पिसती तथा अभाव की मार सहती है, किसी एक खास नारी की व्यथा न होकर आम नारी की व्यथा है। केवल करुणा-सहानुभूति से इसका निदान और उपचार सम्भव नहीं है। वह इन फटेहाल श्रमजीवियों के मूल में झाँकने का प्रयास करते हैं, तो इसके मूल में आर्थिक वैषम्य दिखाई देता है। वह एक ही व्यवस्था में दो तरह की जीवनशैली के प्रति उपजे आक्रोश को परिलक्षित करते हैं– ''आखिर हम लोग अपने को ऊँचा-बड़ा-शिक्षित और प्रतिष्ठित समझते हैं! क्यों? क्या इसी बिना पर कीड़े-मकोड़ों की तरह जिल्लत की जिन्दगी बिताने वाले लोग भी धरती पर हैं?....ये क्यों ऐसे हैं? क्या इनके अन्दर औरों की भाँति रक्त-मज्जा और माँस आदि का प्रबन्ध नहीं है?....इन नीचों के बीच हमारी उच्चता का विश्वास क्या लज्जा-जनक नहीं है!''[३]

'अपना खून' नव परिवर्तित सामाजिक सम्बन्धों की टीस की कहानी है, जिसमें भले ही आपसी रिश्तों में मनमुटाव हो जाए, परन्तु विपदा एवं संकट के समय अपना खून ही काम आता है। लक्ष्मी सिंह और उनके काका दिवाकर सिंह के आपसी सम्बन्धों द्वारा इसका जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया गया है। 'बेईमानों के देश' कहानी सामाजिक भ्रष्टाचार की समस्या को उजागर करती है। 'जीवित शव का अतीत' एवं 'पाकिस्तानी' कहानियों में वह धार्मिक मुखौटे ओढ़कर स्वार्थ-सिद्धि में संलिप्त लोगों की निन्दा के साथ साम्प्रदायिक उन्माद की समस्या उत्पन्न करने वाली शक्तियों से सावधान रहने का सन्देश व्यंग्यात्मक एवं ग्रामीण बोली तथा ग्रामीण मुहावरे में देते हैं। 'कफ़न' कहानी निर्धनता और अभावग्रस्तता की पीड़ा एवं दुष्परिणामों को बहुत मार्मिकता के साथ उजागर करती है। भोला की पत्नी को साड़ी के अभाव में कुएँ मे डूबकर आत्महत्या करनी पड़ती है। 'लाटरी के रुपये' इस संग्रह की सबसे बड़ी कहानी है, जिसमें अध्यापक हरीश के माध्यम से मध्यम वर्गीय जिन्दगी का यथार्थ चित्र उकेरा गया है। वह लाटरी के रुपये प्राप्त होने पर मकान बनवाने से लेकर चुनाव लड़ने तक मंसूबे पाल लेता है। इसमें भाषा सर्वत्र सहज एवं परिस्थितियों के अनुरूप है– ''यह दुनिया प्रोपेगेंडा की है। जनता अन्धी होती है। उसकी नाक चाहे जिधर घुमा दो, वह व्यापारी और नेता नहीं समझती। उसके कान तो प्रचारों को पकड़ते हैं।''[४]

'नयी कोयल' की कहानियों में आर्थिक वैषम्य को उभारते हुए ग्राम्य-जीवन की निर्धनता

का चित्रण ही मुख्य रहा है। 'नयी कोयल' में केवल अभाव और विसंगतियाँ ही मुखर नहीं हैं, अपितु ग्रामीण मानस की सांस्कृतिक चहक और उस पर पड़ रहे नगरीय जीवन का विशद् एवं विश्वसनीय वर्णन है। साथ ही; अधिकांश कहानियाँ राजनीति के कारण गाँवों में परिवर्तनों को प्रदर्शित करती हैं। इसके साथ ही अन्य समस्याओं, जैसे– गरीबी, बेरोजगारी, अन्धविश्वास, व्यसनाधीनता, भ्रष्टाचार आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। 'रावण' कहानी राजनीति के कारण गाँवों में पनपी अराजकता एवं द्वेष की भावना को व्यक्त करती है, जिसमें बिहारिन सनीचर और रईस सरदार मुंशी जी के कोदों के खेत की कटिया और खलिहानी प्रसंगों से आर्थिक-नैतिक शोषण का युग-सत्य समाज के सर्वग्राह्य रूप से जुड़कर व्यवस्था पर चोट करती है– ''यह देखो लूट! तनिक भी इन बेइमानों को तमीज नहीं कि कितनी कटिया हुई और कितनी अँटिया बाँधते हैं? मालूम होता है हम अंधे हैं?'' और ''मजदूरों की अँटिया उठा-उठा कर अपने बोझ की ओर उसी प्रकार फेंकने लगे, जैसे कंस देवकी के नवजात पुत्रों को फेंक रहा हो।''[५]

'अभिनव विधि पूजा' कहानी में गाँवों में राजनेताओं के बढ़ते प्रभाव को दर्शाया गया है। 'काशी का भोज' कहानी में राजनीति के कारण गाँवों की एकता, शान्ति, भाईचारा, मेल-मिलाप किस प्रकार लुप्त हो गया है, इसे बहुत संजीदगी से प्रस्तुत किया गया है। 'कच्चा गुलाब' कहानी में समाज में प्रचलित दहेज जैसी घातक समस्या पर कुठाराघात किया गया है। वहीं 'कौन अंधा? कौन लाचार' में वोटों की राजनीति के हाथों बिके भारतीय लोगों पर करारा प्रहार किया गया है। 'नयी कोयल' कहानी में यान्त्रिकता का गाँवों में हो रहे विस्तार को एवं उसके प्रभाव को दिखाया गया है। शारीरिक श्रम की उपेक्षा और मानसिक तनाव की वृद्धि यदि समकालीन समाज की पहचान है, तो 'नयी कोयल' इसे अभिव्यंजित करने में समर्थ है– ''पुराने गाँव टूटकर खतम हो रहे हैं। नये गाँव बन रहे हैं। पुरानी शकलें ओझल होती जा रही हैं और इधर-उधर एक अनजान नवीनता छाती जा रही है। पंचायत, चुनाव, चकबन्दी, विकास और स्वराज्य के नये चरण जो गाँवों में आये, तो पुराने गाँव एकदम हिल उठे। उनमें खलबली मच गयी। उनकी शेष एकता एकदम नष्ट-भ्रष्ट हो गयी।''[६] इस संग्रह की सभी कहानियाँ ग्राम्य जीवन की समस्याओं को बहुत रोचकता से प्रस्तुत करती हैं। अधिकांश कहानियाँ राजनीति की सच्चाई को अभिव्यक्त करती हैं।

'गूँगा जहाज' संग्रह में स्वातन्त्र्योत्तर ग्रामीण समाज के बदलते स्वरूप, उनकी अभाव-ग्रस्तता को बहुत बारीकी से उकेरा गया है। संग्रह की प्रथम कहानी 'रामलीला' के माध्यम से पूँजीवादी युग की अर्थकेन्द्रित मानसिकता अभिव्यक्त हुई है, जिसमें कुरान मठ के बादशाह, महन्त और उनके चिलमचट्ट भक्त मर्दाना बाबा की क्रमशः हनुमान और रावण की भूमिकाएँ लंकादहन का दृश्य उपस्थित कर, धन-मद के उन्माद को अभिव्यंजित करती है। वहीं 'चुनाव चक्र' में लोकतान्त्रिक चुनाव-पद्धति की जाति-बिरादरीबाजी तथा नेताओं की जनसेवा की जगह स्वार्थी मनोवृत्ति पर तीखा व्यंग्य है, जो घुरहू चमार, छतरू, तेंतरी की माँ की असन्तोष व्यवस्था को हिला देने वाला है कि– ''लोग कहते हैं, नया जमाना आ गया। छोटे-बड़े और धनी-गरीब बराबर हो जायेंगे। सरासर झूठ, हमारी समझ में नहीं आ रहा है। सब कर्म-कमायी है, बड़े बड़े ही हैं और छोटे छोटे ही। एड़ी ऊँची करके कोई आसमान नहीं छू सकता।''[७]

जहाँ 'बाढ़ की यमदाढ़' में बाढ़ की विभीषिका से पीड़ित कृषकों का चित्रण किया गया है, तो वहीं दूसरी तरफ; 'टुकरा मिले बहुरिया' के द्वारा डोम राजा की भूख से बेहाली, पिटाई एवं

विकास योजनाओं के खोखलेपन को उकेरा गया है। डॉ. राय कहते हैं– ''गरीबों को बेघर बनाने में व्यवस्था का ही दोष नहीं, प्राकृतिक आपदाओं की भी एक भूमिका है। भूख से जले लोगों के कलेजे पर नमक का लेप हो गया है।''[८]

'आकाशवृत्ति' में ओलावृष्टि, शोषण और दलन की अनेक कठिनाइयों को झेलता-जूझता किसान असमय बूढ़ा हो जाता है या शीतल की तरह विक्षिप्त हो जाना पूरे कृषक समुदाय की त्रासदी है। इसी के सन्दर्भ में एल. उमाशंकर सिंह लिखते हैं कि– ''गूँगा जहाज डॉ. विवेकी राय की प्रतिनिधि कहानियों का ऐसा संग्रह है, जिसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश के ग्राम्यांचल (गाजीपुर, बलिया) की सटीक पड़ताल है। स्वातन्त्र्योत्तर गाँवों व ग्रामीण समाज के बदलते रूप की आधुनिक मुद्दों और विविध अन्तर्विरोधी टकराहटों को बड़ी ही गहराई से पहचान की है। ग्रामीण किसानों, श्रमजीवियों की समस्याओं, दु:खों व शोषण से उत्पन्न छटपटाहटों पर केन्द्रित दृष्टि है।''[९] 'तिला मूँगा' कहानी में लोककथा शिल्प में मशीनीयुग की हृदयहीनता की शिकार तिला मूँगा और अन्य बहनों की विपत्तिगाथा कही गयी है। 'झगड़ा' कहानी विघटित दाम्पत्य-जीवन की दास्तान को अभिव्यक्त करती है। डॉ. राय की नारी पात्रों में 'झगड़ा' की मुख्याल बो चाची अविस्मरणीय है। उसके पति कहते हैं– ''आँख पर वही पुरानपंथी का गट्ठर बाँध जिन्दगी भर गाँव की झापी में बन्द रह गयी। नयी दुनिया को देखा नहीं। सो, दुनिया कहाँ से कहाँ गयी।''[१०] इस संग्रह की कहानियाँ ग्रामीण जीवन की रूढ़ियों, विसंगतियों के ठहराव और दु:खों के संसार से हमारा साक्षात्कार कराती हैं।

'बेटे की बिक्री'– इस संग्रह की अधिकांश कहानियों में ग्रामीण समाज में प्रचलित दहेज की कुप्रथा की समस्या को उजागर कर उनके दुष्परिणामों की भयावहता को चिह्नित किया गया है। इसके साथ; अन्य समस्याओं भी को प्रदर्शित किया गया है। इन कहानियों में विराट गँवई जीवन के सांस्कृतिक एवं सामाजिक सौन्दर्य और संघर्ष के चित्र सहज लालित्यपूर्ण भाषा में मिलते हैं। 'माँग' एवं 'बेटे की बिक्री' कहानी दहेज की विभीषिका को बहुत संजीदगी से उजागर करती है। 'विद्रोह' कहानी दहेज तथा विधवा स्त्रियों की समस्या पर आधृत है।

'कालातीत'– इस कहानी-संग्रह में सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक यथार्थ से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को उभारा गया है। इसकी प्रत्येक कहानी में तत्कालीन भारतीय गाँवों की दुर्गति को प्रस्तुत करते हुए खोखली व्यवस्था को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है, जो उन्हें सोचने पर विवश कर देती है। संग्रह की भूमिका में एल. उमाशंकर सिंह लिखते हैं– ''प्रेमचन्द अपनी कहानियों में महाजनी समाज से लड़ते-जूझते नजर आते हैं, तो डॉ. विवेकी राय भी अपनी कहानियों में छद्म राजनीति व विकास से दो-दो हाथ करते दिखते हैं।''[११] इसी तरह, 'चित्रकूट के घाट पर' (१९८८) कहानी-संग्रह भी मानवीय मूल्यों में होने वाले संक्रमण को उजागर करती है तथा ग्रामीण परिवेश की समस्यायों का मार्मिक एवं भावपूर्ण अंकन करती है। 'पलिश' कहानी के माध्यम से बेरोजगारी जैसी आधुनिक समस्या के साथ-ही–साथ; आज की शिक्षा की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न खड़ा करते हैं और वहीं 'ब्रह्म विहार' कहानी में राजनेताओं की गाँवों के प्रति उदासीनता, सरकारी योजनाओं की निष्फलता, शिक्षा की दुर्दशा तथा गाँवों में प्राथमिक सुविधाओं के अभाव को चित्रित किया है। विवेकी राय ने सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र से सम्बन्धित समस्याओं को बहुत रोचक एवं तार्किक ढंग से अभिव्यक्त किया है, जिसमें व्यंग्य का भी पुट समाहित है, जहाँ राजनीति शिक्षा पर भी हावी होती है– ''गाँव के

प्राइमरी स्कूलों की हालत तो और भी चिन्ताजनक है। बच्चे नहीं हैं, अध्यापक नहीं हैं, टाट नहीं है और स्कूल चल रहा है। खिचड़ी बन रही है, इस खिचड़ी में भी भ्रष्टाचार। प्राथमिक स्कूल शिक्षालय नहीं, भोजनालय रह गये। मिड डे फूड स्कीम! पकड़ा दिया कटोरा, बच्चों! खाओ सरकारी भिक्षान्न! मोटा भ्रष्टाचार की खिचड़ी खा, सो भी मिली, मिली, नहीं मिली। कमाल की खिचड़ी, काग़ज पर खीर-पूड़ी और बासमती चावल तथा सोना मूँग दाल गमकती है और कटोरों में लोगों की दाल गलती है।''[१२]

गाँव में जातिवाद इस कदर हावी हो गया है कि गाँव को खा रहा है और राजनीति उसे और भी बढ़ावा दे रही है। ऊँच-नीच, छुआछूत की खाइयों में सुख-शान्ति का बेडा गर्क हो रहा है। टूटे लोग और टूटते चले जा रहे हैं। इस प्रकार, स्वातन्त्र्योत्तर गाँवों की स्थिति आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक– सभी क्षेत्रों में दयनीय हो गयी है। आज गाँवों में आपसी द्वेष, वैमनस्यता, धार्मिक कट्टरता बढ़ती जा रही है। गाँवों से पलापन कर लोग शहरों की ओर जा रहे हैं और गाँवों की तरफ भी लगातार शहरीकरण का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। लगता है, गाँव भीतर से उठकर सड़क पर आता जा रहा है, किसान दुकान बनता जा रहा है। खेत में खड़ा है, तो उसका चेहरा कुछ और तरह का है तथा सड़क पर कुछ और तरह का। किसानों की दशा दिन-ब-दिन बदतर होती जा रही है। आज किसान आत्महत्या करने को विवश है, क्योंकि संसाधनों तक पहुँच सामान्य किसान की है ही नही। इस कारण, साभ्रांत लोग कृषि जैसे संसाधनों पर कुण्डली मारकर बैठे हैं– ''गाँव पर तो सब ठीक-ठीक है। भीतर गाँव में बहुत गड़बड़ है। एक समय था, जब भारत में गाँव को देवस्थान के समान समझा जाता था। परन्तु आज उसी गाँव में यदि शहर के लोग चले जाएँ, तो ग्रामीण उन्हें लम्बी मारकर गिरा सकता है। बदलाव के इस दौर में सीधा-सादा गाँव भी तिकड़मी होता जा रहा है। कभी बड़े-बुजुर्गों से यह बात सुनी थी कि समाज में आना-जाना, खाना-खिलाना और लेना-देना– ये छह-व्यवहार सूत्र थे, परन्तु आज गाँवों से वह परम्परा उजड़ती जा रही है।'' आज समाज में तथा बड़े-बुजुर्गों के पास में बैठने का समय नहीं रहा। लोग आधुनिकता की अंधी दौड़ में लगातार दौड़े जा रहे हैं।

निष्कर्ष– विवेकी राय ने कहानियों के सहारे ग्रामीण जीवन की समस्याओं को सजीव एवं यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से ग्रामीण जीवन के उन तमाम पहलुओं को छुआ है, जो ग्राम्य जनजीवन में यत्र-तत्र परिलक्षित होते हैं। चाहे वह किसान जीवन की व्यथा रही हो या दहेज-प्रथा जैसी कुरीति, जिसमें पिसकर गरीब परिवारों की जिन्दगी उजड़ जाती है। उन्होंने चकाचौंध तथा दिखावे वाली परम्परा पर भी करारा प्रहार किया है, जिनमें गरीब मजदूर वर्ग के लोग शान एवं मरजाद की अंधी परम्परा का निर्वहन करते हुए बाहरी दिखावे हेतु शादियों में कर्ज लेकर खर्च करते हैं। डॉ. राय की कहानियों में परिवेशगत यथार्थ सर्वथा परिलक्षित होते हैं, जिससे वे पुराने गाँवों के भीतर जन्में नवीन गाँव की अकुलाहट, बेचैनी और पुराने-नये के मूल्य-संघर्षों को कथानक में ढालने में सफल हैं। भाषा में स्थानीय रंग खूब है, साथ ही; परिस्थितिजन्य ग्रामीण मुहावरों का सटीक प्रयोग दिखाई पड़ता है। ग्राम्य जीवन में प्रयोग होने वाले शब्दों का डॉ. विवेकी राय ने अपने कथा साहित्य में गहनता से प्रयोग किया है। उन्होंने गाँवों की सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं पर अपनी लेखनी के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति दर्ज करायी है।

सन्दर्भ-सूची

१. डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद– साठोत्तरी हिन्दी कहानी साहित्य में चित्रित ग्रामीण समस्याएँ, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण- २०११, पृ. २४
२. वेद प्रकाश 'अमिताभ'– अक्षर बीज की हरियाली, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, संस्करण- २००२, पृ. ३८
३. डॉ. विवेकी राय– सामलगमला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्रथम संस्करण- २०११, पृ. ७
४. वही– पृ. ६०
५. वही– पृ. ७८
६. वही– पृ. १५३
७. डॉ, विवेकी राय– गूँगा जहाज, अनुराग प्रकाशन, चौक, वाराणसी, द्वितीय संस्करण- २००५, पृ. १३
८. वही– पृ. २४
९. डॉ. मान्धाता राय– विवेकी राय और उनका सृजन-संसार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण- २००७, पृ. ९७
१०. डॉ. विवेकी राय– गूँगा जहाज, अनुराग प्रकाशन, चौक, वाराणसी, द्वितीय संस्करण- २००५, पृ. ७४
११. डॉ. विवेकी राय– सामलगमला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्रथम संस्करण- २०११, पृ. ३९७
१२. वही– पृ. ५३५

●

उर्मिला शिरीष की कहानियों में वृद्ध-विमर्श

डॉ. जयश्री बंसल*, माया चौरसिया**

संक्षेप– वृद्धों के जीवन में कहीं हर्ष, कहीं विषाद, कहीं उपेक्षा, कहीं तिरस्कार, तो कहीं अपमान भी मिलता है। वृद्धावस्था में जीवन से जुड़ी अनेक समस्याएँ उभर कर सामने आती हैं। प्रसिद्ध कहानीकार सुश्री उर्मिला शिरीष ने दिल्ली और अन्य नगरों-महानगरों की यात्राएँ की थीं। उन यात्राओं के दौरान वे वृद्धों के सम्पर्क में आयीं। उन्होंने बहुत करीब से उनके दु:ख, उनकी पीड़ा और उनके जीवन की त्रासदियों को देखा। उनकी समस्याओं को बहुत गहराई से समझा, समस्याओं को साझा किया और अपनी कहानियों में गढ़ा।

मुख्य-शब्द– वृद्ध, वृद्धावस्था, मानव-जीवन, उर्मिला शिरीष की कहानियाँ।

भूमिका– वृद्धों के जीवन में प्रकृति ने विविध रंग घोले हैं और इन विविध रंगों में वृद्ध जीवन के न जाने कितने रूप उभरकर सामने आते हैं। जिन्दगी की ढलती साँझ और जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों को अपने बेटा-बेटी, पोता-पोती या बहुत ही करीबी मित्र से वृद्ध अपना सुख-दु:ख साझा करते हैं। उम्र के इस पड़ाव पर शरीर कमजोर व शिथिल हो जाता है, पर कार्य करने का जज्बा आन्तरिक रूप से युवाओं से कहीं अधिक होता है। यदि हम मूल्यांकन की दृष्टि से तह में जाकर वृद्धों की भावनाओं, सम्वेदनाओं को समझें-पढ़ें, तो उनके अतीत की स्मृतियाँ वर्तमान में उनके जीवन की परतें खोलती नजर आएँगी। चाहे जो अवस्था हो, स्मृतियाँ कभी धुँधली नहीं होतीं। वह दृश्य-अदृश्य रूप से मानस-पटल पर अंकित रहती हैं।

समीक्षा– उर्मिला शिरीष ने हिन्दी कहानियों में वृद्धों के प्रति अपनी मानवीय सम्वेदनाओं को वाणी प्रदान की। उन्होंने भारतीय जनमानस में वृद्ध जीवन की सम्वेदना और आकांक्षाओं को नए कलेवर में दुनिया के समक्ष रखा है।

१. निर्वासन– कहानी का प्रमुख केन्द्र-बिन्दु दादाजी हैं। 'निर्वासन' कहानी दादाजी और पोते के बीच बिछड़ने और पुनर्मिलन की भावनात्मक यात्रा है। पोते को रेल में सफर के दौरान एक परिचित आवाज सुनाई देती है, जो उसे दादाजी की याद दिलाती है। स्टेशन पर वह खोजबीन करता है और आखिरकार; अपने दादाजी को एक झोपड़ी में मासूम बच्चों के साथ पाता है और उन्हें अपने साथ घर वापस आने को कहता है। दादाजी अपने अतीत की पीड़ा और दर्द से टूट चुके हैं और अपने ठोस बन चुके दिल के साथ वापस जाने से इन्कार कर देते हैं। लेकिन पोते के प्रेम और जिद के आगे, अन्ततः दादाजी पोते के साथ चलने लिए तैयार हो जाते हैं।

यह कहानी तीन पीढ़ियों के सम्बन्धों की मार्मिक दास्तान है। दादाजी, जिन्हें हालातों ने घर से बेघर कर दिया था, रेलवे स्टेशन पर भीख माँगते हुए एक अनाथ बच्ची का पालन-पोषण कर रहे थे। पोते ने दादाजी को इस कठिन जीवन से बाहर निकालकर अपने परिवार में जगह दी और मासूम बच्ची की परवरिश की जिम्मेदारी भी खुद पर ली। उर्मिला शिरीष की लेखनी की खासियत यह है कि वह कहानी को अनदेखे भावनात्मक छोर तक ले जाती हैं और पाठक को

* एसोसिएट प्रोफेसर एवं असिस्टेण्ट डायरेक्टर– मानव संसाधन विकास केन्द्र, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, म.प्र.

** शोधार्थी– तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, म.प्र.

घटनाओं के भीतर धीरे-धीरे प्रवेश कराती हैं। इस कहानी में दादाजी जड़ हैं, पोता शाखा है और बच्ची नई कली। तीनों एक-दूसरे के पूरक बनकर परिवार की सम्पूर्णता को दर्शाते हैं।

२. धरोहर– यह कहानी वृद्ध माता-पिता की विवशता और पीड़ा को सामने लाती है। बड़ा बेटा संदीप सीमा पर शहीद हो चुका है, छोटा बेटा छात्रावास में है और बहू गर्भावस्था के कारण अपने मायके चली गयी है। बूढ़े माता-पिता का जीवन बेटे की यादों और खालीपन के बीच गुजरता है। माँ दीवार पर टँगी तस्वीर से बातें करती है और पिता वह दर्द सहते हैं, जो बेटे की अर्थी को कन्धा देने से उपजा है। शहीद की पत्नी को शासन द्वारा मिलने वाली राशि भी, वृद्ध माता-पिता की परवाह किए बिना उसे दे दी जाती है, जिससे उनकी मुश्किलें और बढ़ जाती हैं। यह कहानी इस बात को उजागर करती है कि युद्ध सीमा पर खत्म होता है, पर असली संघर्ष तो शहीदों के परिवारों के जीवन में शुरू होता है, जहाँ उनका अकेलापन और त्रासदी किसी युद्ध से कम नहीं होती। यह बुजुर्ग माता-पिता के जीवन की एक पक्षीय कहानी नहीं है। इस कहानी में पारिवारिक जीवन में बदलते रिश्तों, आदर्शों और खोखली राजनीति को उर्मिला शिरीष ने पाठकों के सामने रखा है।

३. हैसियत– यह कहानी वृद्धावस्था के एकाकीपन और परिवार में अनदेखे हो जाने की पीड़ा को उजागर करती है। इसमें वृद्ध माता-पिता अपने ही घर में असहाय महसूस करते हैं। बहू दिखावे के लिए सेवा करती है, लेकिन उनकी पसन्द-नापसन्द की अनदेखी करती है। बेटे और बहू की उदासीनता और उनकी चीजों पर बन्दिशें उन्हें मासिक रूप से टूटने पर मजबूर कर देती हैं। एक दिन, तिरस्कृत महसूस कर, पिता घर छोड़कर स्टेशन की ओर निकल जाते हैं। पर तभी उनका भाई उन्हें ढूँढ़ता हुआ पहुँचता है, जिससे उन्हें थोड़ा सहारा मिलता है कि कोई तो है, जो उनकी परवाह करता है। यह कहानी वृद्धों के प्रति सम्वेदनहीनता और उनके मनोवैज्ञानिक संघर्षों का मार्मिक चित्रण करती है, जो समाज के बदलते परिदृश्य पर सवाल उठाती है।

४. प्रतीक्षा– विवेच्य कहानी एक वृद्ध माँ की मार्मिक यात्रा को प्रस्तुत करती है, जो अपने बच्चों की उदासीनता और अकेलेपन से जूझ रही है। पति के निधन के बाद, बेटे केवल अन्तिम संस्कार की औपचारिकता निभाकर चले गए, किसी ने उन्हें साथ चलने को नहीं कहा। इस उपेक्षा से माँ का विश्वास टूट गया और उन्होंने अकेले ही जीवन की यात्रा को स्वीकार लिया। अब उनका सहारा केवल पक्षी हैं, जिनमें वह अपने बच्चों का संसार देखती हैं। पति की तस्वीर के पास बैठकर अतीत की स्मृतियों में खो जाती हैं और डूबते सूरज के साथ उनकी आँखें भी आँसुओं से भर जाती हैं। लोगों की सलाह पर बच्चों के पास जाने का विचार आता है, लेकिन वह किस मुँह से कहें कि बच्चों के घर में उनके लिए जगह नहीं है। यह कहानी वृद्ध माँ के एकाकीपन और भावनात्मक संघर्ष को सम्वेदनशील ढंग से प्रस्तुत करती है। उर्मिला शिरीष ने कहानी में माँ के अकेलेपन को अभिव्यक्त करने के लिए पंछी को प्रतीक बनाया है। पंछी तो साँझ होते ही अपने घोसलों में आ जाते हैं, लेकिन माँ के दोनों बेटे नहीं आए, जिनकी प्रतीक्षा माँ इन पंछियों में करती है। इनमें ही अपने बच्चों की स्मृतियाँ तलाशती है। यह कृति मानवीय सम्वेदनाओं पर चोट करती है।

५. वानप्रस्थ– यह कहानी वृद्धावस्था में माता-पिता की भावनात्मक तकलीफ और सामाजिक स्थिति को गहराई से चित्रित करती है। अशोक अपनी माँ को गाँव से शहर ले आता है, लेकिन उसकी पत्नी शिल्पा उन्हें घर में लेकर आने से खुश नहीं है। औपचारिकता निभाते हुए शिल्पा का मन अपनी सास की बजाय अपनी माँ की स्थिति पर केन्द्रित है, जो खुद भी

अपने घर में उपेक्षित है। शिल्पा अपनी सास के प्रति सम्वेदनहीन रहते हुए अपनी माँ के लिए चिन्तित है और यह अन्तर्द्वन्द्व उसे बेचैन करता है। सास के मन में भी सवाल उठते हैं– ''बुढ़ापा क्यों इतनी तकलीफ देता है? अकेलापन क्यों नहीं मिटता?'' अन्ततः सास अपने आत्मसम्मान को सँजोते हुए बेटे अशोक से स्टेशन छोड़ने का आग्रह करती हैं और इस बार वह समधिन को भी अपने साथ ले जाने का निश्चय कर लेती हैं। वानप्रस्थ कहानी में उर्मिला शिरीष ने सास-बहू के रिश्तों की जटिलताओं को सम्वेदनशीलता से उकेरा है। शिल्पा अपनी माँ के लिए बेहद चिन्तित रहती है, लेकिन अपनी सास के दर्द को नजरअन्दाज करती है। अपनी सास को अस्पताल ले जाने का समय उसके पास नहीं है, पर डिंगी कुतिया के लिए समय निकाल लेती है। वहीं, जब उसकी अपनी माँ सरकारी अस्पताल में भर्ती होती है, तो उसकी भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं। इस कहानी में उर्मिला शिरीष ने समधिनों के सम्बन्धों को नयी दिशा देकर कथा को एक अलग मोड़ पर पहुँचाया है, जहाँ समधन का रिश्ता न केवल भावनात्मक सहारा बनता है, बल्कि रिश्तों के असल मूल्य पर भी रोशनी डालता है।

६. मुआवजा– इस कहानी में लेखिका एक वृद्ध व्यक्ति से मिलती है, जो उसके दादा जी से मिलता-जुलता प्रतीत होता है। वे उसे पैसे देने के लिए तत्पर होती हैं, किन्तु उनकी मौसी भिक्षावृत्ति के विरुद्ध होती हैं। प्रस्तुत कहानी में, लेखिका के अन्तर्द्वन्द को दर्शाया गया है।

७. बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु– उर्मिला शिरीष की एक गहरी सम्वेदनशील यह कहानी है, जो पाठकों के अन्तःकरण में बसी प्रतीत होती है। यह कहानी एक बुजुर्ग पिता की मृत्यु के बाद बेटे के अतीत और भावनाओं की छाया में विकसित होती है। पिता अपने अतीत की कई परतें बेटे के सामने खोलते हैं, जिनमें उनकी एक प्रेम कहानी सम्मिलित है। रूपा नामक एक विधवा स्त्री के साथ उनका आत्मिक सम्बन्ध था, जो सामाजिक सीमाओं से परे था। कहानी में बेटा अपने पिता के जीवन-संघर्षों और उनके द्वारा बनाए गए साम्राज्य को याद करते हुए सम्वेदनशीलता से भरपूर स्वीकृति देता है। यह कहानी रिश्तों, समर्पण और जीवन की वास्तविकता को प्रभावी ढंग से उजागर करती है, जहाँ परिवार और समाज की परवाह किए बिना एक व्यक्ति अपने आदर्शों और भावनाओं के प्रति ईमानदार रहता है। उर्मिला शिरीष की कहानी 'बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु' एक भावनात्मक यात्रा है, जो जीवन और मृत्यु, पिता-पुत्र-सम्बन्ध और स्त्री-पुरुष के निस्वार्थ सम्बन्धों की गम्भीरता को उजागर करती है। यह कहानी वृद्धावस्था के अकेलेपन और यौवनावस्था के प्रेम को दर्शाती है, जो लेखक के दिल में गहरे तक बसी हुई है। जब बेटा अपने पिता के अन्तरंग पक्ष को समझता है, तो दोनों का रिश्ता एक नए आयाम तक पहुँचता है, जो इतना सशक्त है कि पाठक को अपने भीतर की भावनाओं को महसूस करने पर मजबूर कर देता है। इस रचना ने न सिर्फ लेखक को प्रभावित किया, बल्कि पाठकों से भी गहरे जुड़ाव का कारण बनी, जिनके पात्रों और भावनाओं ने इसे और भी सार्थक बना दिया।

समस्याएँ– यदि समग्र दृष्टि से वृद्धों की भावनाओं, सम्वेदनाओं और उनके जीवन से जुड़ी पीड़ाओं का अध्ययन करें, तो अतीत की सालों से बन्द पड़ी खिड़कियाँ, जो आँखों से बहते सैलाब के साथ वर्तमान में खुलती नजर आएँगी। आज वृद्धों के लिए घर की दीवारें छोटी हो गयी हैं। अपने ही पसीने की कमाई से बनाए घर में अपमान और तिरस्कार की जिन्दगी जी रहे हैं। वृद्धावस्था में जीवन से जुड़ी अनेक समस्याएँ हैं, जो उभरकर हमारे समक्ष आयी हैं।

(क) शारीरिक समस्या– व्यक्ति की जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, शरीर शिथिल होता जाता है। कार्य करने की क्षमता उत्तरोत्तर कम होती जाती है तथा याददाश्त भी कमजोर होती

जाती है। वृद्धावस्था में आमतौर पर उम्र के अनुसार सुनने की क्षमता में कमी आने लगती है। आँखों से कम दिखने लगता है। अधिकतर मोतियाबिन्द हो जाता है। गर्दन, पीठ, घुटनों का दर्द आदि समस्याएँ इस अवस्था में उभर कर सामने आती हैं। हड्डी टूटने पर वृद्धों का शरीर फिर से जुड़ नहीं पाता और वे शेष जीवन बिस्तर में ही पड़े-पड़े गुजारने को विवश हो जाते हैं।

(ख) आर्थिक समस्या– इस अवस्था में काम करने की क्षमता में कमी आने लगती है। अपने खर्च के लिए परिवार पर या दूसरों पर निर्भर रहना पडता है। अधिकतर माता-पिता अपनी सम्पत्ति बेटे के नाम कर देते हैं और वही बेटे पत्नी के आते ही बदल जाते हैं। यहाँ तक कि कुछ वृद्ध भिक्षावृत्ति भी करने को विवश हो जाते हैं।

(ग) पारिवारिक एवं सामाजिक समस्या– वृद्धावस्था में परिवार से वह स्नेह नहीं मिल पाता, जो उन्हें मिलना चाहिए। उन्हें उपेक्षा और तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है। घर की बहुएँ उनके खान-पान का ध्यान नहीं रखतीं और वे मनपसंद चीजें खाने को तरसते रहते हैं। इन बहुओं के दो रूप होते हैं– पति के सामने कुछ और तथा पति के पीठ पीछे कुछ और। पारिवारिक एवं सामाजिक रूप से जो सम्मान उन्हें मिलना चाहिए, वह उन्हें नहीं मिल पाता।

(घ) अकेलेपन की समस्या– उम्र के इस पड़ाव पर उन्हें भावनात्मक सहारे की आवश्यकता होती है। एक ओर अपने प्रिय मित्र या अपने परिवारजन को खो देने से वृद्ध अकेले रहने को विवश हो जाते हैं। वृद्ध किसी के साथ उठ-बैठ नहीं सकते, किसी से बातचीत नहीं कर सकते, फलस्वरूप; घुट-घुटकर जीवन जीने के लिए विवश हो जाते हैं।

(ङ) वृद्धाश्रम में रहने की विवशता– वृद्धावस्था में व्यक्ति घर से बेघर हो जाते हैं। उन्हें वृद्धाश्रम में छोड़ दिया जाता है। जीवन की ढलती साँझ में, वे पिंजरे में पंछी के समान रहने को विवश हो जाते हैं।

प्रेरणा एवं चयन– उर्मिला शिरीष के कहानी-संग्रहों में वृद्धों पर आधारित अलग-अलग धरातल पर लिखी गयी कहानियों का अध्ययन करके व विभिन्न प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों और अन्य सामग्रियों के माध्यम से शोध-विषय की प्रेरणा मिली और समाज में चहुँओर व्याप्त वृद्धों की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखकर शोध-विषय का चयन किया।

उद्देश्य : इस शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

१. शोध के माध्यम से यह पता लगाया है कि उर्मिला शिरीष की वृद्ध जीवन पर लिखी गयी कहानियाँ प्रासंगिक हैं और प्रत्येक कहानी अलग-अलग धरातल पर लिखी गयी है।
२. वृद्धों के त्रासदी भरे जीवन के सत्य को उजागर किया गया है कि वास्तव में; जो होता है, वह दिखता नहीं और जो दिखता है, वह होता नहीं।
३. परिवार, समाज और व्यक्ति के बीच वृद्धों का स्थान कहाँ है? इस विषय में जागरूकता पैदा करने का प्रयास करना।
४. वृद्ध जीवन पर आधारित यथार्थपरक कहानियों का मूल्यांकन करना।

अनुसन्धान की पद्धति– शोध हेतु समाजशास्त्रीय अध्ययन, मनोवैज्ञानिक, समस्यामूलक एवं अनुभवाश्रित पद्धतियों का उपयोग किया है।

निष्कर्ष एवं चर्चा– उर्मिला शिरीष ने वर्तमान युग के वृद्ध जीवन के यथार्थ को देखा, परखा और उनके वास्तविक जीवन से जुड़ी समस्याओं, सम्वेदनाओं और भावनाओं को प्रकट किया। वृद्धावस्था में लाचार व्यक्ति का मन अतीत की स्मृतियों और उनसे जुड़े स्थानों के बीच

दौड़ता रहता है। इस दौड़ में उनका अन्तर्मन न जाने कितनी बार घायल होता है, रोता है और पिघलता है। प्रकृति ने वृद्ध जीवन में जितने भी रंग घोले हैं, उन रंगों को उनकी कहानियों में देखा जा सकता है।

वृद्धों के प्रति सही दृष्टिकोण विकसित हो और उनकी जरूरतों को ध्यान में रखकर उनके प्रति चेतना जाग्रत करना शोध का विषय है। उर्मिला शिरीष वृद्धों के प्रति जागरूक एवं सम्वेदनशील हैं। आम तौर पर घर के हाशिए पर जो लोग रहते हैं, उनके अन्तर्मन की व्यथा, पीड़ाओं, भावनाओं, सम्वेदनाओं और अनछुए पहलुओं को आँकने और अभिव्यक्त करने में उनकी दृष्टि माहिर है।

योगदान

१. वृद्धावस्था पर लिखा गया शोध-शोधार्थियों के ज्ञान में वृद्धि करेगा।
२. वृद्ध जीवन पर आधारित शोध अन्य शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।
३. नयी पीढ़ी के शोधार्थियों को बुजुर्गों पर किए गए शोध से चिन्तन की नयी दिशा मिल सकेगी।
४. वृद्ध जीवन पर किया गया शोध पूर्वाग्रहों के निदान और निवारण में सहायक होगा।

लाभ एवं कमियाँ– इस शोध के लाभ एवं कमियाँ निम्नलिखित हैं–

(क) लाभ : १. वृद्ध जीवन पर शोध करने वाले शोधार्थियों के लिए लाभकारी सिद्ध होगा।
२. नई पीढ़ी के युवा शोधकर्ताओं के लिए प्रेरणादायक होगा।
३. कहानियों पर शोध करने वाले शोधार्थियों के लिए भी यह शोध अनुकरणीय एवं लाभकारी होगा।

(ख) कमियाँ : १. उर्मिला शिरीष ने वृद्ध जीवन पर जो कहानियाँ लिखी हैं, उनमें अत्यन्त व्यापक दृष्टिकोण का समावेश किया है, जिसका समग्र चित्रण शोध में सम्भव नहीं हो सका है।
२. उर्मिला शिरीष की कुछ ही कहानियों का शोध हेतु चयन किया गया है।

भविष्य– वृद्ध-विमर्श पर शोध करने वाले शोधार्थियों के लिए आवश्यक सामग्री का कार्य करेगा। साहित्य में वृद्धों के मनोविज्ञान पर भविष्य में किये जाने वाले अध्ययन हेतु आधारभूत सामग्री उपलब्ध कराएगा। 'उर्मिला शिरीष की कहानियों में वृद्ध-विमर्श' विषय पर शोध-ग्रन्थ की रचना हेतु प्रेरणा-स्रोत का कार्य करेगा।

सन्दर्भ-सूची

१. उर्मिला शिरीष– 'निर्वासन', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०१३
२. उर्मिला शिरीष– 'निर्वासन-धरोहर', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२००३
३. उर्मिला शिरीष– 'निर्वासन-हैसियत', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२००३
४. उर्मिला शिरीष– 'निर्वासन-प्रतीक्षा', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२००३
५. उर्मिला शिरीष– 'शहर में अकेली लड़की-वानप्रस्थ', पारुल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-१९९८
६. उर्मिला शिरीष– 'मुआवजा-मुआवजा', दिया प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-१९८५
७. उर्मिला शिरीष– 'बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०१३

●

शैलेश मटियानी के उपन्यासों में चित्रित पर्वतीय संस्कृति एवं जनजीवन

आनन्द सिंह कप्रवान*

शोध-सार– संस्कृति और समाज साहित्य के मूलभूत कारक हैं, जिनके माध्यम से साहित्यकार अपनी सम्वेदनाओं को भाषिक आकार प्रदान करता है। हिमालय के वन प्रान्तरों, पर्वत शिखरों, नदियों और गह्वरों ने सदैव ही साहित्यकारों को आकृष्ट किया है। इसी पृष्ठभूमि में जन्म लेने वाले रचनाकारों की लेखनी तो इन सम्मोहनों से पाठकों को सम्वेदना और शिल्प के स्तर पर हमेशा से बाँधती आयी है। इस परिदृश्य का एक जीवन्त नाम शैलेश मटियानी है, जिन्होंने अपनी रचनाओं में पर्वतीय अंचल की संस्कृति के विविध रंगों को इस रूप में वर्णित किया है कि उसके शब्द-चित्र आज विश्व साहित्य के विषय बन चुके हैं। साधारणीकरण की सीमाओं में प्रविष्ट करता उनका साहित्य सभ्यता, संस्कृति और जीवन का अनूठा संगम है। उन्होंने पर्वतीय जनजीवन और संस्कृति के उन पक्षों को उजागर किया है, जो अब तक साहित्य की परिधि से दूर थे। पर्वतीय जनजीवन के आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक तथा धार्मिक पक्षों को मटियानी जी ने विभिन्न विषय-वस्तुओं के माध्यम से चित्रित किया है। पर्वतीय संस्कृति में निहित पहाड़ी खान-पान, तीज-त्योहारों, धार्मिक मान्यताओं और परम्पराओं का भी उन्होंने अत्यन्त सजीवता से चित्रण किया है। इस शोध-पत्र में शैलेश मटियानी के उन चुनिन्दा उपन्यासों के माध्यम से पर्वतीय संस्कृति और समाज का अध्ययन किया गया है, जिनमें पहाड़ का जन-जीवन परिलक्षित होता है।

बीज शब्द– संस्कृति, समाज, पर्वतीय परिवेश, जनजीवन, भौगोलिक पक्ष, धार्मिक मान्यताएँ।

मूल शोध– संस्कृति और समाज किसी भी देश, राष्ट्र और परिवेश के मूल में स्थापित होता है तथा इसी आधार पर कोई राष्ट्र अपनी विशेष पहचान रखता है। समाज तथा संस्कृति के एक दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित होने के बावजूद; इनमें मूलभूत अन्तर है। समाज एक से अधिक लोगों के समुदाय से मिलकर बने एक वृहद् समूह को कहते हैं, जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रिया-कलाप करते हैं। मानवीय क्रिया-कलाप में आचरण, सामाजिक सुरक्षा और निर्वाह आदि क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। समाज लोगों का ऐसा समूह होता है, जो अपने अन्दर के लोगों के मुकाबले अन्य समूह से काफी कम मेल-जोल रखता है। किसी एक समाज से आने वाले व्यक्ति एक दूसरे के प्रति परस्पर स्नेह तथा सहृदयता का भाव रखते हैं। दुनिया के सभी समाज अपनी एक अलग पहचान बनाते हुए अलग-अलग रस्मों-रिवाजों का पालन करते हैं। वहीं दूसरी ओर; संस्कृति से अभिप्राय किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र स्वरूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने-विचारने, कार्य करने के स्वरूप में अन्तर्निहित होता है। संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है। मनुष्य केवल भौतिक परिस्थितियों में सुधार करके ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता। वह भोजन से ही नहीं जीता, शरीर के साथ मन और आत्मा भी है। भौतिक उन्नति से शरीर की भूख मिट सकती है, किन्तु इसके बावजूद; मन और आत्मा तो

* शोधार्थी (जे.आर.एफ.)– हिन्दी विभाग, गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर, उत्तराखण्ड

अतृप्त ही बने रहते हैं। इन्हें सन्तुष्ट करने के लिए मनुष्य अपना जो विकास और उन्नति करता है, उसे संस्कृति कहते हैं। संस्कृति में समय के अनुकूल सदैव परिवर्तन होते आए हैं, किन्तु कतिपय आधारभूत धारणाएँ ऐसी हैं, जो समाज में व्याप्त गुणधर्मों को निर्मित करती हैं। वे एक ओर भौतिक सम्पदा के उन्नयन से संस्कृति को सम्पुष्ट करती हैं, तो दूसरी ओर समाज की एक सबल आचार संहिता का निर्माण करती हैं। इस विषय की महत्ता को कविवर अज्ञेय ने व्याख्यायित किया है– ''कुछ साहित्य समाज को बदलने के काम आ सकता है, लेकिन श्रेष्ठ साहित्य समाज को बदलता नहीं, उसे मुक्त करता है, फिर भी; उस मुक्ति में समाज के लिए– और हाँ, संस्कृति के लिए, मानव मात्र के लिए बदलाव के सब रास्ते खुल जाते हैं।''[१]

भारत एक विविधतापूर्ण देश है। यहाँ पर कई संस्कृतियों का समावेश है, जिसमें पर्वतीय संस्कृति भी एक है। पर्वतीय जनजीवन व संस्कृति कई रूपों में मैदानी जनजीवन व संस्कृति से भिन्न है तथा उसकी यह भिन्नता ही उसकी विशिष्टता है। पर्वतीय संस्कृति को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं, जिनमें से एक है– यहाँ की विषम भौगोलिक परिस्थिति, जिसने पर्वतीय समाज व संस्कृति के हर पक्ष को प्रभावित किया है। हिन्दी साहित्य में भी पर्वतीय संस्कृति का चित्रण कई रूपों में हुआ है तथा प्रमुख हिन्दी साहित्यकारों ने पर्वतीय समाज और संस्कृति को भी अपनी लेखनी का आधार बनाया है। उन्होंने पहाड़ के ग्रामीण जीवन के निजी अनुभवों के आधार पर पर्वतीय परिवेश को अपनी रचनाओं में सूक्ष्मता से चित्रित किया है तथा पर्वतीय समाज के आर्थिक, भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक पक्षों को दर्शाया है।

पर्वतीय संस्कृति का अपना एक विशिष्ट स्थान है तथा अपने खान-पान, तीज-त्योहार, धार्मिक मान्यताओं के कारण यह साहित्यकारों के लिए भी आकर्षण का केन्द्र है। शैलेश मटियानी भी इनमें से एक हैं, जिन्होंने पर्वतीय संस्कृति व समाज का अत्यन्त बारीकी से चित्रण किया है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में अल्मोड़ा के बाड़ेछीना गाँव से लेकर, इलाहाबाद और मुम्बई जैसे महानगर की गलियों और फुटपाथों तक का चित्रण किया है। उन्होंने पर्वतीय ग्रामीण जीवन के दलित, शोषित सरल-सहज रूप के साथ-साथ रूढ़िग्रस्त बन्धनों में जकड़े हुए ग्राम्य जीवन का यथार्थ अंकन अपने कथा-साहित्य में किया है। ग्राम्य जीवन के इसी चित्रण के कारण उन्हें एक सफल आंचलिक कथाकार माना जाता है। उनके कथा साहित्य पर प्रेमचन्द की यथार्थवादी कथा-परम्परा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। उनकी रचनाओं में पर्वतीय ग्राम्य जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक, साहित्यिक और समसामयिक स्थितियों का सम्यक् उद्घाटन किया गया है।

शैलेश मटियानी ने कहानी तथा उपन्यास– दोनों विधाओं में महारत हासिल की है। उन्होंने पर्वतीय परिवेश को आधार बनाकर अनेक कहानियों व उपन्यासों की रचना की, परन्तु इस शोध-पत्र में हम केवल उनके उपन्यासों के आधार पर ही पर्वतीय परिवेश के समाज व संस्कृति का अध्ययन करेंगे। उन्होंने मुख्य रूप से पर्वतीय पृष्ठभूमि पर आधारित तेरह उपन्यासों की रचना की– 'हौलदार', 'चिट्ठीरसैन', 'चौथी मुट्ठी', 'बेला हुई अबेर', 'मुख सरोवर के हंस', 'मंजिल दर मंजिल', 'एक मूठ सरसों', 'दो बूँद जल', 'उगते सूरज की किरण', 'नागवल्लरी', 'उत्तरकाण्ड', 'डेरे वाले' तथा 'गोपुली गफूरन'।

किसी भी समाज के जनजीवन को उसके आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व भौगोलिक पक्षों के आधार पर व्याख्यायित किया जाता है। शैलेश मटियानी ने भी पर्वतीय जनजीवन के उपर्युक्त

पक्षों को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। अपने उपन्यासों के माध्यम से मात्र पर्वतीय परिवेश को आवाज ही नहीं दी है, अपितु उनकी पीड़ा के प्रति अपनी सम्वेदना भी प्रकट की है। अपने एक उपन्यास 'सर्पगन्धा' में वह लिखते हैं– ''आप लोग पर्वतीय समाज के प्राणों को बचाने का संघर्ष कर रहे हैं। इन जंगलों के सिर्फ आर्थिक और प्राकृतिक पहलू ही नहीं हैं, मानवीय और सामाजिक पहलू भी हैं। इन जंगलों में हमारे छोटे-छोटे बच्चों के ओठों की हरियाली छिपी है। हमारे नारी-समाज का संगीत छिपा है।''[२] उनका मानना था कि साहित्यकारों का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह अपने समाज में निहित समस्याओं को उजागर कर उसके उत्थान के लिए कार्य करें।

जातिवाद, पर्वतीय जनजीवन की एक प्रमुख समस्या है और पर्वतीय समाज का प्रत्येक गाँव इस समस्या से ग्रसित है। शैलेश मटियानी ने अपने उपन्यास 'गोपुली गफूरन' में पर्वतीय जनजीवन की इस समस्या को उजागर किया है, जहाँ उपन्यास की मुख्य पात्र गोपुली, मथुरा पण्डित को मिठाई देने में संकोच करती हुई कहती है– ''त, तुम मुझ शिल्पकारिन के हाथों की छुई मिठाई थोड़ी खाओगे काकाजी।''[३] इसी प्रकार, 'सर्पगन्धा' उपन्यास में उन्होंने समाज में अन्तर्जातीय विवाह में आने वाली कठिनाइयों का भी चित्रण किया है– ''विवाह में अन्तर्जाति या बहिर्जाति का उतना महत्त्व नहीं है, जितना अन्तरसूत्रों का महत्त्व है। स्त्री और पुरुष का भीतर से एक-दूसरे से बँधना ही विवाह है और हमारा सम्बन्ध तो खैर सिर्फ एक निजी घटना की तरह की चीज है, सामाजिक क्रान्ति अथवा प्रतिक्रान्ति जैसी चीज से इसका क्या वास्ता?''[४] इसी प्रकार, 'सर्पगन्धा' उपन्यास में उन्होंने भारतीय राजनीति और पर्वतीय ग्रामीण जीवन में जातिवाद की समस्या को इन पंक्तियों के माध्यम से दिखाया है– ''किसी भी घर का वातावरण जात-पाँत से नहीं, उस घर में रहने वाले लोगों के विचारों से बदतर या बेहतर होता है।''[५] उनके अनुसार, समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जातिगत बन्धन से मुक्त होने के लिए अपने भीतर की संकीर्ण मानसिकता को समाप्त कर उदारवादी मानसिकता को अपनाना होगा।

पर्वतीय समाज में बालविवाह का भी प्रचलन है, जिसके कारण समाज में स्त्रियों के शोषण को बढ़ावा मिलता है। छोटी उम्र में बालिकाओं का विवाह करवाकर उन्हें नरक की अग्नि में झोंक दिया जाता है, जहाँ उन्हें शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है तथा न चाहते हुए भी उन जिम्मेदारियों का वहन करना पड़ता है, जिनके लिए वह मानसिक तथा शारीरिक रूप से तैयार नहीं होतीं। शैलेश मटियानी ने बालविवाह को समाज के लिए अभिशाप माना है। उनके उपन्यास 'गोपुली गफूरन' में भी बालविवाह की कुप्रथा को दिखाया गया है, जहाँ गोपुली का विवाह भी कम उम्र में हो जाता है तथा इस कारण उसे जीवन में विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है– ''गोपुली को तब नवाँ लगा था और उसी साल वह रतन राम के घर यहाँ नैलागाँव में आई थी।''[६]

विधवा-विवाह भी स्त्री-शोषण का एक प्रमुख आधार है। इसके माध्यम से समाज में उन स्त्रियों का शोषण किया जाता है, जो छोटी आयु में ही विधवा हो जाती हैं तथा समाज में विधवा-विवाह-निषेध होने के कारण उन्हें अपने सम्पूर्ण जीवन में अकेलेपन की मानसिक यातना सहन करनी पड़ती है। मैदानी समाज में बढ़ती जागरूकता से इसमें कमी आयी है, परन्तु पर्वतीय ग्रामीण अंचल में अभी भी यह समस्या व्याप्त है। शैलेश मटियानी का उपन्यास 'चिट्ठीरसैन' विधवा-समस्या पर ही आधारित है, जिसमें पात्र 'रमौती' अपना वैधव्य व्यतीत करने के लिए

आश्रम की तलाश में रहती है। 'एक मूठ सरसों' में भी विधवा-विवाह की समस्या का चित्रण है तथा पर्वतीय समाज में स्त्री के विधवा हो जाने पर उसका पुनर्विवाह सम्भव न होना इस उपन्यास में दिखाया गया है– ''किसी की मृत्यु हो जाती है, तो पत्नी, पति की मृत्यु के बाद अपना मंगलसूत्र, सिन्दूर की शीशी और चूड़ियाँ किसी पेड़ के नीचे मिट्टी खोदकर गाड़ देती है और उस पर पानी छिड़ककर, उस पर हथेलियाँ उल्टी लौटाकर घर आ जाती है।''[७] उन्होंने पहाड़ी स्त्री कि मनोदशा को बहुत खूबसूरती से दर्शाया है। पहाड़ के दूरस्थ गाँव में रहने वाली स्त्री किस प्रकार अपने प्रिय की प्रतीक्षा में दिन भर पहाड़ के ऊँचे-नीचे रास्तों पर अपनी नजर गड़ाए रहती है। पहाड़ की स्त्री तमाम समस्याओं का सामना करते हुए भी अपने कर्तव्यों का निर्वहन करती है, जो उसे विशिष्ट बनाता है– ''मैं स्वयं ठेठ पहाड़ी हूँ, सो परदेश की नौकरी में गए बेटों–पतियों वाली पहाड़नों का हिया प्यार से हिलुरता है, टीस से कसमसाता है और वो ऊँचे टीलों पर खड़ी, सड़कों पर चलते मुसाफिरों को देख-देख कर अपनों की स्मृति से गद्-गदा उठती हैं, गाँव की ओर आते चिट्ठीरसैन को देखते ही उनकी सिर धरी गागरिया छल-छलाने लगती है, हाथ थमे मूसल-कूटल जल्दी-जल्दी चलने लगते हैं, तो मेरे सजातीय संस्कारों को उनके मन की संक्रामक कसक और विह्वलता व्याप जाती है।''[८]

मनुष्य-जीवन अर्थ पर टिका हुआ है तथा बिना आर्थिक गतिविधियों के समाज की कल्पना करना भी असम्भव है। अर्थ मानव की पूर्ति का आधार है। इसका और अधिक स्पष्ट अर्थ यह है कि मानव की जीविका का आधार अर्थ ही है। मटियानी जी ने समाज में अर्थ की इस महत्ता को रूपायित कर, अपने उपन्यासों में पर्वतीय जनजीवन के आर्थिक पक्ष का चित्रण किया है। 'हौलदार', 'चिट्ठीरसैन', 'गोपुली गफूरन' आदि उपन्यासों में उन्होंने पर्वतीय जनजीवन में व्याप्त आर्थिक समस्याओं का चित्रण किया है। इन उपन्यासों के पात्र आर्थिक समस्याओं से ग्रसित हैं, जिनके माध्यम से पर्वतीय समाज में विषम भौगोलिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न अर्थ सम्बन्धी समस्याओं का चित्रण है।

राजनीति भी समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। मटियानी जी ने अपने उपन्यासों में पर्वतीय ग्रामीण परिवेश में निहित राजनीतिक चेतना का भी अंकन किया है। उन्होंने पर्वतीय समाज में राजनीतिक चेतना को गोपुली के इस सम्वाद के माध्यम से दर्शाया है– ''सुना है गोरे लोगों की फौज समुद्र पर लौटने वाली है, काग्रेस राज आने वाला है। हमारे लिए तो सब का एक ही राज है।''[९] इस सम्वाद के माध्यम से मटियानी जी ने पर्वतीय परिवेश में आम ग्रामीण जन में राजनीतिक सूझ-बूझ को दर्शाया है। भारत की केन्द्रीय राजनीति का एक आम ग्रामीण के जीवन पर कितना प्रभाव है, उसको इस सम्वाद के माध्यम से समझा जा सकता है।

इस प्रकार, मटियानी जी ने अपने उपन्यासों में पर्वतीय जनजीवन की परिकल्पना को यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। उन्होंने पर्वतीय समाज के प्रत्येक पक्ष को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

किसी भी देश की सामाजिक, धार्मिक, मानसिक, आध्यात्मिक विभूति उस देश की संस्कृति कहलाती है। युगानुरूप उसके बाहरी रूप में परिवर्तन होता रहता है, किन्तु उसके अन्तरंग तत्त्व मूल रूप में ही रहते हैं। संस्कृति में समाज की रीति-नीति, कला, ज्ञान-विज्ञान, विश्वास और अर्जित योग्यताओं के साथ निजी प्रवृत्तियाँ रहती हैं। संस्कृति मनुष्य-जीवन का एक ऐसा समृद्ध विकास है, जिसमें व्यवहार और रचना के अनेक रूप समाहित हो गए हैं। शैलेश

मटियानी ने अपने उपन्यासों में पर्वतीय संस्कृति के उन्मुक्त रूप का चित्रण किया है। उन्होंने अपने लेखकीय व्यक्तित्व के निर्माण के पीछे पर्वतीय संस्कृति को उत्तरदायी माना है। उन्होंने इसे रेखांकित करते हुए लिखा है– ''आज अनुभव कर रहा हूँ कि मैं स्वप्नजीवी ही अधिक रहा हूँ। मेरी किशोरावस्था स्वप्नलोकों में ही बीती थी। इन स्वप्नलोकों के निर्माण की पृष्ठभूमि मेरे आस-पास की पहाड़ी धरती, लोक-संस्कृति और जनजीवन की परम्पराएँ ही थीं, इनमें सन्देह नहीं, मगर मेरे अति-भावुक मन ने इनसे इतर भी बहुत कुछ सँजोया-सिरजा था।''[१०]

उन्होंने पर्वतीय लोक-संस्कृति की जड़ों को अपने निजी अनुभवों के माध्यम से महसूस किया है तथा इन अनुभवों के आधार पर अपने उपन्यासों में पर्वतीय संस्कृति को चित्रित किया है। उनके उपन्यासों में पर्वतीय संस्कृति के मनोरम चित्र दिखाई पड़ते हैं, जहाँ पर्वतीय संस्कृति के मुख्य अवयव– खान-पान, तीज-त्योहार, मेले-उत्सवों तथा धार्मिक मान्यताओं-परम्पराओं का अत्यन्त सजीवतापूर्ण प्रस्तुतीकरण है। उन्होंने अपने उपन्यासों में कुमाऊँ अंचल की पर्वतीय संस्कृति का विस्तृत वर्णन किया है। उदाहरणस्वरूप; उनके उपन्यास 'चिट्ठीरसैन' में रमौती को उसका भाई चैत्र के महीने में भिटोली देने आता है, जो पर्वतीय संस्कृति के ही एक रूप का प्रतीक है– ''भिटोली में बहुधा ऐसा होता है कि टोकरी भर पूरियाँ बनाकर ले जाते हैं और जिस गाँव में बहन-बेटी ब्याही गयी हो, उस गाँव के प्रत्येक घर में पूरियाँ बाँटी जाती हैं, जिसे मिसेली की पूरी कहते हैं।''[११] उन्होंने यह माना है कि उनके जीवन पर पर्वतीय परिवेश में प्रचलित लोक-मान्यताओं तथा विश्वासों का विशेष योगदान है, जिसके विषय में वह लिखते हैं कि– ''लोक-देवताओं की अवतार-गाथाओं के औसाणों (जागरण-छन्दों) के प्रभाव से मैं आज तक मुक्त नहीं हो पाया हूँ और कुछ ही महीने पूर्व जब मैंने 'महाबली हरण देवता' की अवतार-गाथा को लिखना आरम्भ किया, तो फिर वही पुराना प्रचण्ड उल्लास जाग्रत हो उठा था और मैंने अपनी मेज पर, अपने दोनों हाथों से, फिर से पुराने नौबती-नादों को न्योता था।''[१२] उन्होंने यह स्वीकार किया कि– ''मेरे लेखक–जीवन की नींव में दादी के मुख से निकली लोक-कथाओं की ईटें पड़ी हुई हैं।''[१३]

मटियानी जी ने 'एक मूठ सरसों', 'मुख सरोवर के हंस', 'जयमाला' आदि उपन्यासों में पर्वतीय लोक-संस्कृति का चित्रण किया है। उन्होंने पर्वतीय परिवेश में व्याप्त धार्मिक मान्यताओं को भी अपने उपन्यासों का विषय बनाया है, जिसके विषय में वह लिखते हैं कि– ''जब मैं घर या बाहर कहीं लोक-देवताओं के जागरण देखता-सुनता था, तो लोक-गाथाओं के नायकों से भी अधिक महापराक्रमी और विधाभण्डारी जादूगर बनकर, सारे उत्तराखण्ड में अपनी पूजा-परम्परा स्थापित करने का सपना देखता था और अपनी अवतार-गाथा के औसाणों की स्वयं ही रचना किया करता था।''[१४]

'चौथी मुट्ठी' उपन्यास में मटियानी जी ने लोक-संस्कारों को उजागर करते हुए लोक-देवता गोल्ल देवता का चित्रण किया है। उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से पर्वतीय संस्कृति में निहित लोक-मान्यताओं तथा धार्मिक अनुष्ठानों को दिखाया है। पर्वतीय ग्रामीण जन का धार्मिक मान्यताओं में अटूट विश्वास इस उपन्यास का मूल बिन्दु है, जहाँ कौशिला नामक एक स्त्री पात्र गोल्ल देवता से न्याय कि गुहार लगाती है। उसे विश्वास है कि गोल्ल देवता उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण करेंगे और पापियों का नाश करेंगे– ''आँचल में हाथ डाल कर, एक मुट्ठी चावल को बाहर निकाल, मुट्ठी को असहाय आक्रोश के साथ भींचकर– एक दम प्रबल वेग से कौशिला

ने गोल्ल देवता के चरणों में चावल की मूठ मार दी– ना-आ-अ-श करना हे परमेश्वर!''[१५] पर्वतीय परिवेश में लोक-आस्था का विशेष स्थान है। यही कारण है कि पर्वतीय भूमि को देवभूमि के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ प्रचलित लोक-मान्यताओं के अनुसार, यहाँ हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में वर्णित देवी-देवताओं का निवास है तथा यहाँ पर स्थित प्रमुख तीर्थस्थलों के कारण यहाँ की संस्कृति में धर्म का विशेष प्रभाव है। मटियानी जी का मानना है कि अपनी संस्कृति और लोक जनजीवन से जुड़कर ही कोई लेखक महानता को प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक साहित्यकार के व्यक्तित्व की नींव में वहाँ की संस्कृति और समाज का प्रभाव होता है तथा इस प्रभाव से ही वह अपनी रचनाओं में यथार्थ और जीवन्तता का समावेश कर पाता है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि शैलेश मटियानी पर्वतीय जनजीवन और संस्कृति के एक सफल रचनाकार हैं। उन्होंने जिस प्रकार अपने आरम्भिक जीवन से प्राप्त पर्वतीय जीवन के अनुभवों के माध्यम से विभिन्न विषयों पर आधारित उपन्यासों की रचना की है, वह उल्लेखनीय है। उन्होंने पर्वतीय परिवेश को एक नए रूप में परिभाषित किया है। जहाँ पहले पर्वतीय परिवेश को मात्र प्राकृतिक सुन्दरता के रूप में देखा जाता था, मटियानी जी ने उसे आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहलुओं से जोड़ा है। उनके उपन्यासों में समाज और संस्कृति का जो समन्वय है, वह उनकी रचनाओं को विशिष्ट बनाता है तथा हिन्दी साहित्य के पाठकों को पहाड़ के जीवन से जोड़ता है।

सन्दर्भ-सूची

१. अज्ञेय– 'संस्कृति और समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया', सं. कन्हैयालाल नन्दन, www.hindisamay.com
२. शैलेश मटियानी– 'सर्पगन्धा', पृष्ठ संख्या १४६
३. शैलेश मटियानी– 'गोपुली गफूरन', पृष्ठ संख्या १०९
४. शैलेश मटियानी– 'सर्पगन्धा', पृष्ठ संख्या ४७
५. शैलेश मटियानी– 'सर्पगन्धा', पृष्ठ संख्या ६२
६. शैलेश मटियानी– 'गोपुली गफूरन', पृष्ठ संख्या १०
७. शैलेश मटियानी– 'एक मूठ सरसों', पृष्ठ संख्या ११०
८. शैलेश मटियानी– 'चिट्ठीरसैन', 'चिट्ठी के चार आखर', भूमिका से उद्धृत
९. शैलेश मटियानी– 'गोपुली गफूरन', पृष्ठ संख्या २४
१०. शैलेश मटियानी– 'जनकथाकर शैलेश मटियानी', 'मैं और मेरी रचना-प्रक्रिया', पृष्ठ संख्या १२३
११. शैलेश मटियानी– 'चिट्ठीरसैन', पृष्ठ संख्या ५४
१२. शैलेश मटियानी– 'जनकथाकार शैलेश मटियानी', 'मैं और मेरी रचना-प्रक्रिया', पृष्ठ संख्या १२३
१३. शैलेश मटियानी– 'जन कथाकार शैलेश मटियानी', 'मैं और मेरी रचना-प्रक्रिया', पृष्ठ संख्या १२१
१४. शैलेश मटियानी– 'जन कथाकार शैलेश मटियानी', 'मैं और मेरी रचना-प्रक्रिया', पृष्ठ संख्या १२३
१५. शैलेश मटियानी– 'चौथी मुट्ठी', पृष्ठ संख्या १६४

●

'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास में चित्रित लोकजीवन

चित्रा साह*, डॉ. मुन्नी चौधरी**

शोध-सार– 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा लिखा गया है, जो मूलत: पूर्वोत्तर भारत के एक राज्य असम पर केन्द्रित है। देवेन्द्र सत्यार्थी हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध आंचलिक कथाकार हैं। उनकी रचनाओं में विभिन्न अंचलों के लोकजीवन का सुन्दर चित्र अंकित हुआ है। देवेन्द्र जी भ्रमण के शौकीन थे। भ्रमण के दौरान किए गए अनुभव को ही उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज के सामने लाने का प्रयास किया है। 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास सन् १९५५ में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास हिन्दी साहित्य का पहला ऐसा उपन्यास है, जिसमें पूर्वोत्तर भारत की समस्याओं अथवा वहाँ की लोक-संस्कृति, लोकजीवन को कथात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। लोकजीवन से तात्पर्य है– किसी अंचल विशेष का जीवन-रस, लोकगीत, लोककथाएँ, लोक-मान्यताएँ, उनमें छिपी परम्पराएँ आदि।

मूल शब्द– लोकजीवन, नद, किनारे, आजादी, अंधविश्वास, धर्म, आस्था, संघर्ष, स्वतन्त्रता, ब्रह्मपुत्र, संस्कृति, मान्यताएँ, घुमक्कड़ी, रोजगार, जीविका।

प्रस्तावना– 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे बसे लोकजीवन को व्यक्त करता है। इसके साथ ही; वहाँ की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्थितियों तथा जीवन सम्बधी मान्यताओं का भी सजीव चित्र अंकित करता है। 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास के लेखक देवेन्द्र सत्यार्थी घुमक्कड़ी स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्होंने अपने जीवन-काल में कई राज्यों, जैसे– पंजाब, छत्तीसगढ़, असम, उड़ीसा, बंगाल आदि राज्यों के विभिन्न अंचलों की यात्राएँ की थीं। इसी सन्दर्भ में, गोपाल राय ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' में लिखा है–''इसी घुमक्कड़ी में उनका विभिन्न प्रदेशों, अंचलों के लोकजीवन और वहाँ की जनजातियों की जीवन-शैली से निकट का परिचय हुआ और उनके जो अनुभव रहे, उसे उन्होंने अपने उपन्यासों का विषय बनाया।'' 'देवेन्द्र सत्यार्थी का रचना-संसार काफी सम्पन्न है। उन्हें हिन्दी के अलावा उर्दू और पंजाबी भाषा का भी ज्ञान था। उन्होंने साहित्य की कई विधाओं में लिखा भी है। अगर हम उनकी रचनाओं की बात करें, तो 'चट्टान से पूछ लो' (१९४९), 'चाय का रंग' (१९४९), 'नए धान से पहले' (१९५०), 'सड़क नहीं बंदूक' (१९५०), 'रथ के पहिए' (१९५०), 'कठपुतली, (१९५१), 'दूध गाछ' (१९५४), 'बह्मपुत्र' (१९५५), 'कथा कहो उर्वशी' (१९५६) और 'तेरी कसम सतलुज' (१९८९) प्रमुख रूप से हमारे सामने आते हैं।

'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास की कथा आजादी से दस साल पहले अर्थात् लगभग १९४० के आस-पास की है। उपन्यास में दिशांगमुख नामक गाँव, जो असम की ब्रह्मपुत्र नदी के आस-पास बसा हुआ है, वहाँ के परिवेश का जिक्र है। उपन्यास की भूमिका में ही काका कालेलकर लिखते हैं– ''ब्रह्मपुत्र के किनारे, असम प्रदेश में जो लोकजीवन पाया जाता है, उसे व्यक्त करने वाली यह सुन्दर नवल कथा श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने हमें दी है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी भारत के लोकगीतों के अनन्य उपासक हैं।'' लेखक ने दिशांगमुख गाँव के लोगों में विद्यमान आजादी की चेतना और संघर्ष को देवकांत नामक चरित्र के माध्यम से दिखाया है। देवकांत एक क्रान्तिकारी नायक है,

* शोधार्थी– हिन्दी विभाग, नागालैण्ड विश्वविद्यालय, कोहिमा

** शोध निर्देशक– हिन्दी विभाग, नागालैण्ड विश्वविद्यालय, कोहिमा परिसर, मेरिएमा-०४

जो ब्रिटिश शासन का विरोध करता है। फलस्वरूप; देवकांत के बलिदान के कारण आजादी तो मिल जाती है, परन्तु आजादी के लगभग तीन साल बाद भी ब्रह्मपुत्र के किनारे बसे लोगों की समस्याएँ खत्म नहीं होतीं, क्योंकि ब्रह्मपुत्र नदी में आने वाली बाढ़ के कारण अभी भी वहाँ बर्बादी का ही दृश्य रहता है। उपन्यासकार ने इन सभी समस्याओं को अपने उपन्यास में दिखाने का प्रयास किया है कि आजादी के बाद भी ब्रह्मपुत्र के किनारे बसे गाँव बाढ़ की समस्या से पीड़ित हैं। इन सब के बीच, देवेन्द्र सत्यार्थी हमें असमिया समाज के लोकजीवन की झलक भी दिखाते हैं–''धनश्री नागा पर्वत से चलती है और सौ मील की यात्रा के पश्चात् ब्रह्मपुत्र से मिलती है, मानो लोक-संस्कृति असमिया संस्कृति से गले मिल रही हो।'' ब्रह्मपुत्र नदी के निर्माण के माध्यम से लेखक बड़ी ही सुन्दरता से असमिया और नागा– दो लोक-संस्कृतियों के मिलन की बात करते हैं। लेखक का मानना है कि ब्रह्मपुत्र नदी अपने अन्दर पूर्वोत्तर की विभिन्न लोक-संस्कृतियों को समाहित किए हुए है। इतना ही नहीं; ब्रह्मपुत्र नदी पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न राज्यों को एक साथ जोड़े रखने का काम भी करती है– ''गारो पर्वत से चलती हैं चार बहनें– जिजिराम, जिनारी, दूध नदी और कृष्णा। यह भी बारी-बारी ब्रह्मपुत्र की आरती उतारती हैं, मानो संस्कृति का मंगलगान गूँज उठा हो।'' इसके साथ ही; पूर्वोत्तर की लोक-संस्कृति के निर्माण में ब्रह्मपुत्र का विशेष योगदान है। वह एक सेतु रूप में भी विद्यमान है। यथा– ''असम के पर्वतों की बातें, उनके नाम उन आदिवासी जातियों पर पड़े हैं, जो वहाँ बसी हुई हैं। अपने-अपने जन्म-स्थान से होती हुई प्रत्येक छोटी-बड़ी नदी मानो अपने प्रदेश की बोली ब्रह्मपुत्र तक पहुँचाती है। यह बोलियाँ मिलकर ब्रह्मपुत्र की भाषा का निर्माण करती हैं।''

वस्तुत: यह तो स्पष्ट है कि ब्रह्मपुत्र पूर्वोत्तर के लोकजीवन में एक बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती आ रही है। वहाँ की आस्था, संघर्ष, राजनीति, अंधविश्वास आदि सभी प्रक्रियाओं में ब्रह्मपुत्र नदी मानो एक प्रतीक के रूप में खड़ी रही है। ब्रह्मपुत्र में आने वाली बाढ़ के कारण होने वाली बर्बादी पर भी वहाँ के लोग ब्रह्मपुत्र पर अपनी नाराजगी को व्यक्त नहीं करते, बल्कि उतना ही ब्रह्मपुत्र के प्रति श्रद्धा और प्रेम रखते हैं– ''ब्रह्मपुत्र माटी काटता है अवश्य, पर इसका भी तो कुछ हिसाब रखता है। थोड़ी-थोड़ी करके ही माटी काटता है ब्रह्मपुत्र, जैसे आदमी की आयु भी पल-पल घटती है। यही सोचकर हमें ब्रह्मपुत्र पर कभी गुस्सा नहीं आता।''

पूर्वोत्तर के जनजीवन में ब्रह्मपुत्र नदी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ के जनजीवन में सदियों से ब्रह्मपुत्र विराजमान है। लेखक ने इस पर अधिक जोर देकर कहा– ''जिस प्रकार ब्रह्मपुत्र में सब नदियाँ जाकर गिरती हैं और ब्रह्मपुत्र की शक्ति बढ़ाती हैं, उसी प्रकार असम के आहोम राजाओं ने भी विभिन्न विचारधाराओं को एक बड़ी विचारधारा में मिलने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी थी। शाक्त लोग, जो शिव के भक्त थे, विष्णु की शक्ति में भी थोड़ा-बहुत विश्वास अवश्य रखते थे। इसी प्रकार, विभिन्न विचारधाराओं को लोग अपनाते चले गए और इसी भाव-भूमि पर असम की कला विकसित हुई और असमिया साहित्य जीवंत हुआ।''

संक्षेप में; अगर हम देखें, तो लोकजीवन का निर्माण कई ऐसे तत्त्वों को मिलाकर होता है, जिसके केन्द्र में मनुष्य होता है। किसी भी समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं का अध्ययन ही सामान्यत: लोकजीवन के अन्तर्गत समाहित होता है। देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र' में ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे बसे असम के समृद्ध सांस्कृतिक और सामाजिक ताने-बाने को बड़ी खूबसूरती से चित्रित किया है। इस उपन्यास के माध्यम से

लेखक ने असम के ग्रामीण जीवन, नदी के साथ गहरा नाता, लोगों की भावनाओं, रीति-रिवाजों और संघर्षों को जीवंत कर दिया है, जिसे हम निम्नलिखित संक्षिप्त बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकेंगे–

१. ब्रह्मपुत्र नदी का महत्त्व– ब्रह्मपुत्र नदी उपन्यास का केन्द्रीय बिन्दु है। यह ब्रह्मपुत्र के किनारे बसे लोगों के जीवन का अभिन्न अंग है। नदी उनके लिए जीवनदायिनी है, उनका रोजगार है, उनकी संस्कृति का हिस्सा है और उनके दु:ख-सुख का साथी है। ब्रह्मपुत्र उपन्यास में दिशांगमुख गाँव के लोग जीविका के लिए पूरी तरह ब्रह्मपुत्र नदी पर निर्भर हैं। उपन्यास का एक पात्र धर्मानंदी अपना पालन-पोषण मछली पकड़ कर ही करता है और इस बात को भी स्पष्ट करता है कि मछली पालन के अलावा उसके पास जीविका चलाने का कोई साधन नहीं– ''मछलियाँ पकड़ना ही हमारा धंधा है। हम मछलियाँ न पकड़ें, तो खाएँ कहाँ से?... हमारी खेती तो पानी पर होती है। मछलियाँ ही हमारी खेती हैं।'' इसी उपन्यास का एक और पात्र है– बादल, जो नाव चलाकर लोगों को ब्रह्मपुत्र नदी पार कराने का काम करता है। लेकिन इंजन वाली नाव के आने से उसकी आमदनी में काफी गिरावट आयी है। अपने दर्द को व्यक्त करता बादल नवारिया कहता है– ''जिस दिन से हडसन साहब ने इंजिन वाली नाव का ठेका लेकर चेतन को खड़ा कर दिया है मेरे सम्मुख, उस दिन से तो पेट-पालन भी कठिन हो गया है। वह लेता है चवन्नी, मैं लेता हूँ अठन्नी। अब कठिनाई तो यह है कि मैं तो अपनी नाव के लिए यात्रियों को उसी समय पुकार सकता हूँ, जब चेतन नवारिया इंजिन वाली नाव को भरकर जा चुका होता है। चेतन के साथ तो बस एक ही आदमी होता है, जो इंजन चलाना और बंद करना जानता है और मेरे साथ तो दो-दो, तीन-तीन आदमी रहते हैं। अब मैं क्या खा लूँ और क्या उन्हें दूँ खाने के लिए?''

२. ग्रामीण जीवन– विवेच्य उपन्यास असम के ग्रामीण जीवन को बड़ी बारीकी से दर्शाता है। खेतों में काम करने वाले किसान, मछली पकड़ने वाले मछुआरे, हस्तशिल्प बनाने वाले कारीगर– सभी का जीवन यहाँ बड़ी स्पष्टता से दिखाई देता है। उपन्यास में असम के ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। गाँवों में किसानों का जीवन, उनकी मेहनत, उनकी समस्याएँ, उनकी खुशियाँ आदि को बड़ी ही सम्वेदनशीलता से दिखाया गया है। पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में धान और चाय के अलावा मक्का, मरवा, सब्जी आदि की भी खेती की जाती है, लेकिन पूर्वोत्तर भारत में मुख्य रूप से धान और चाय की खेती की जाती है। ब्रह्मपुत्र उपन्यास में भी चाय की खेती का उल्लेख हुआ है, साथ-ही-साथ; धान की खेती के कई प्रकारों का विस्तार से विवरण दिया गया है– ''दोनों ओर दूर-दूर तक खेत चले गए थे। खुले पठार में धान की खेती होती थी।'' उपन्यास में धान की खेती पर और भी विस्तार से चर्चा की गयी है कि असम के ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे धान की खेती किस तरह की जाती है– ''काका जानते थे कि आहू और बाहू धान में यह अंतर है कि जहाँ आहू ज्येष्ठ-आषाढ़ में कटता है, वहाँ बाहू बहुत देर से पकता है। आहू के लिए केवल चार-पाँच महीने चाहिए– माघ में बोया और ज्येष्ठ-आषाढ़ में काट लिया, पर बाहू तो बहुत ढीलम-ढालम था। माघ में बोते थे आहू के साथ-साथ और अगहन-पूस में काटते थे– पूरे आठ-नौ महीने के बाद। अगहन-पूस में तो शाली की फसल ही कटती थी। शाली तो वैसे वैशाख से ही शुरू हो जाती थी, जब इसकी पनीरी खेतों में लगाई जाती थी। सावन में शाली की पनीरी खेतों में रोपी जाती थी और अगहन में शाली काट ली

जाती थी।''

३. सांस्कृतिक विविधता– असम की सांस्कृतिक विविधता भी इस उपन्यास में झलकती है। असम में विभिन्न जातियों, धर्मों और भाषाओं के लोग एक साथ रहते हैं और अपनी-अपनी परम्पराओं को निभाते हैं। 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास में भी लेखक असमिया साहित्य में सभी विचारधाराओं के मिले होने की बात कहते हैं– ''जिस प्रकार ब्रह्मपुत्र में सब नदियाँ जाकर गिरती हैं और ब्रह्मपुत्र की शक्ति बढ़ाती हैं, उसी प्रकार असम के आहोम राजाओं ने भी विभिन्न विचारधाराओं को एक बड़ी विचारधारा में मिलने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी थी। शाक्त लोग, जो शिव के भक्त थे, विष्णु की शक्ति में भी थोड़ा-बहुत विश्वास अवश्य रखते थे। इसी प्रकार, विभिन्न विचारधाराओं को लोग अपनाते चले गए और इसी भाव-भूमि पर असम की कला विकसित हुई और असमिया साहित्य जीवंत हुआ।'' पूरे उपन्यास में लेखक ने असम की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को भी दिखाया है। असम के लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएँ आदि उपन्यास में जगह-जगह मिलते हैं।

४. आजादी की चेतना– ब्रह्मपुत्र उपन्यास में असम के स्वतन्त्रता-संग्राम का भी वर्णन है। उपन्यास का पात्र देवकांत स्वतन्त्रता-संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाता है। इतना ही नहीं; उपन्यास के लगभग सभी पात्र आजादी की चेतना से ओत-प्रोत हैं। देवकांत कोलकाता के किसी क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित होकर, पाँच अत्याचारी अंग्रेजों को मार कर, दिशांगमुख भाग आता है और कहता है– ''सोचा, कुछ दिन माझुली में बिता सकूँ, क्रान्ति की आग वहाँ भी भड़का सकूँ, तो अच्छा होगा।'' दिशांगमुख को ही अपनी मातृ मानते हैं। ब्रह्मपुत्र के किनारे बसे जन-जन में देश-प्रेम की भावना भरी हुई है। ब्रह्मपुत्र उपन्यास के एक पात्र नीरद के शब्दों में– ''भारत माता की जय! यहाँ यह प्रश्न उठता है कि भारत माता को तो आप लोग नहीं जानते, और आप तो अपनी-अपनी माता को ही जानते हैं। हमारे देश में तो कई प्रांत हैं। बंगाल, असम और उड़ीसा, मद्रास, यू. पी. और बिहार, पंजाब, फ्रंटियर और बंबई। हमारा देश तो विशाल है। यहाँ सात लाख गाँव हैं। सात लाख गाँव माताएँ मिल कर एक ही नाम से पहचानी जाती हैं; वह नाम है– भारत माता।''

निष्कर्ष– पूर्वोत्तर भारत का प्रकृति के साथ गहरा रिश्ता है। पूर्वोत्तर भारत आदिवासी बहुल इलाका है और आदिवासी प्रकृति को पूजते हैं तथा उसका सम्मान करते हैं। असम की प्राकृतिक सुन्दरता उपन्यास में बड़ी ही खूबसूरती से चित्रित हुई है। असम के जंगल, पहाड़, नदियाँ आदि का वर्णन उपन्यास को और भी मनोरंजक बनाता है। ब्रह्मपुत्र उपन्यास के माध्यम से देवेन्द्र सत्यार्थी ने असम के लोकजीवन को एक समृद्ध और जीवंत चित्र प्रदान किया है। यह उपन्यास न केवल साहित्यिक कृति है, बल्कि असम की संस्कृति और लोगों के जीवन को समझने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम भी है। उपन्यास के माध्यम से पाठक असम के लोगों के जीवन और उनकी समस्याओं से रू-ब-रू हो सकते हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. देवेन्द्र सत्यर्थी– ब्रह्मपुत्र, ज्ञान गंगा, दिल्ली।
२. गोपाल राय– हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
३. शिवदत्ता वावलकर– हिन्दी उपन्यास और जनजातीय जीवन, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।

स्त्री-विमर्श की भाषा

डॉ. अनीता तिवारी*

यह सर्वविदित है कि भाषा और मनुष्य का सम्बन्ध अटूट है। राजेन्द्र यादव कहते हैं– ''हमारा अपना होना या सृष्टि का होना ही शब्द का होना है। शब्द समय है, समाज है और सोच है। सारे बड़े धर्म इसी 'सबद कीर्तन' के आस-पास बुने गए हैं। शब्द ही वह नाव है, जो हमें 'न कुछ' के आदिम अँधेरों से आज यहाँ तक लेकर आई है।''[१] प्रश्न यह है कि क्या स्त्रियों के पास अपनी भाषा है? दूसरी बात; भाषा यदि सामाजिक सम्पत्ति है और उसका उत्पादन समाज में होता है, तब दूसरा प्रश्न यह है कि 'भाषा'– इस सामाजिक सम्पत्ति पर क्या स्त्री का अधिकार है? और भाषा के उत्पादन में उसका कितना योगदान है? इन प्रश्नों पर विचार करना अनिवार्य है।

वास्तव में; स्त्री की भाषा और पुरुष की भाषा अलग-अलग होती है क्या? भाषाई निर्माण की प्रक्रिया में स्त्री और पुरुष समान प्रतिभागी होते हैं। भाषा न तो स्त्री की अनुपस्थिति में साकार हो सकती है और न तो पुरुष की अनुपस्थिति में, वह तो मनुष्य (स्त्री और पुरुष) की उपस्थिति में ही साकार हो सकती है। अगर समाज-निर्माण में स्त्री एवं पुरुष की उपस्थिति बुनियादी शर्त है, तो भाषा-निर्माण की प्रक्रिया में भी स्त्री एवं पुरुष की उपस्थिति अनिवार्य शर्त है। फिर प्रश्न उपस्थित होता है कि स्त्री की भाषा पर चिन्तन की अलग से आवश्यकता है क्या?

स्थूल रूप से भाषा-निर्माण की यह प्रक्रिया सैद्धान्तिक स्तर पर बहुत सहज और सरल दिखाई देती है, पर व्यावहारिक रूप में सहज-सरल नहीं होती। शब्द का भविष्य कोशों में नहीं, कर्म की दुनिया में होता है। ''शब्द केवल चीजों के पर्याय या प्रतीक होते हैं और बार-बार के प्रयोग से हम उन्हें एक ओर सुनिश्चित कर लेते हैं, तो दूसरी ओर; अपने आशय और व्यक्तित्व मिला-मिलाकर सुनिश्चित अर्थों को तोड़ते-फैलाते जाते हैं।''[२] यह आशय और व्यक्तित्व जैसा होगा, जिनका होगा, जितना वर्चस्वी होगा, उतनी अर्थ की तोड़-फोड़ अधिक होती रहती है। कई बार मनुष्य की बुद्धि के साथ उसका स्वार्थ एवं अहं अधिक सक्रिय रहता है। जब इसकी पूर्ति के लिए सत्ता का साथ मिलता है, तो नियत बदल जाती है। अक्सर अपने ज्ञान का प्रतिपादन करने के अवसर ऐसे ही लोगों को प्राप्त होते हैं। तब उनके द्वारा प्रतिपादित ज्ञान की प्रक्रिया भी सदैव सार्वजानिक और निरपेक्ष नहीं दिखाई देती, कई बार अपनी स्वार्थ-पूर्ति का औजार बन जाती है। यह प्रक्रिया और अधिक घातक तब बनती है, जब यह विशिष्ट समूह की बनकर एक तबका दूसरे तबके पर अपना ज्ञान थोपने वाला समाज का वर्चस्वशाली तबका बन जाता है। तब उसी के नीति-नियम, उसी के कानून, उसी का धर्म, उसी का सबकुछ चलता रहता है, वही समाज में प्रभावी होता जाता है। यह बात भाषा पर भी लागू होगी। भाषा भी उसी की होगी, जिसका समाज में वर्चस्व होगा। इतिहास यह बताता है कि सामाजिक संरचना में पितृसत्ता प्रभावी रही है। पितृसत्ता में समूची व्यवस्था पर वर्चस्व पुरुष का रहा है, तो भाषा पर वर्चस्व भी उसी का होगा। सुधा सिंह लिखती हैं कि– ''भाषा अगर सामाजिक व्युत्पत्ति है, भाषा का प्रश्न यदि सामाजिक प्रश्न है और इसका सामाजिक उत्पादन के सम्बन्धों के साथ रिश्ता है, तो मानना चाहिए कि व्यवहार के लिए उपलब्ध भाषा पर वर्चस्वशाली वर्ग का प्रभाव है। यह वर्चस्व लिंग के स्तर पर भी है।''[३]

* एफ-३०४, बी. ब्लॉक, हरिकुंज अपार्टमेण्ट, समीप पन्ना लाल रोड, दरभंगा कॉलोनी, प्रयागराज

भाषा-निर्माण की प्रक्रिया में दोनों की अहम भूमिका होने के बावजूद; उस पर वर्चस्व पुरुष का होता है और स्त्रियों की भाषा इस वर्चस्व के प्रभाव के तले दबी होती है। जब सामाजिक उत्पादन में स्त्रियों के योगदान को ही नकारे जाने की परम्परा है, वहाँ भाषा की व्युत्पत्ति में भी उसके योगदान को नकारा ही गया होगा, क्योंकि वर्चस्वशाली वर्ग कमजोर वर्ग के हर तथ्य को दबाता रहता है। दबने वाला वर्ग दमन, असुरक्षा और भय के बीच जीता रहता है। इस आतंक के रहते अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। स्त्रियों के लिए खुली अभिव्यक्ति का 'माहौल' अभी भी नहीं है। बड़ी-बड़ी महिला राजनैतिक हस्तियाँ भी पुरुष वर्चस्व के दमन का जब शिकार हो जाती हैं, तब सामान्य स्त्रियों की स्थिति किस प्रकार की हो सकती है? इसका अनुमान वही लगा सकता है, जो इस आतंक का अनुभव करता है। विकास नारायण राय ने 'जनसत्ता' में 'स्त्री-पुरुष समता की भाषा' शीर्षक से एक लेख लिखकर सोनिया गाँधी, स्मृति ईरानी, प्रियंका गाँधी, हिलेरी क्लिंटन, मार्गरिट थैचर, इंदिरा गाँधी जैसी 'विश्व राजनीति की सफलतम लौह महिलाओं' के उदाहरण देकर यह विषद विवेचन किया था कि ये महिलाएँ किस तरह लैंगिक आधार पर भाषिक भेद-भाव की शिकार हुई थीं। इन महिलाओं को भी एक स्त्री होने के कारण 'मर्दानी ठहाकों', 'मर्दानी दुनिया की छिछोरी भंगिमाओं' का सामना करना पड़ा था। उन्होंने बड़े दु:ख के साथ कहा था कि– ''संस्कृति में प्रचलित स्त्री की खिल्ली उड़ाने का मिजाज़ दुरुस्त करना पड़ेगा।'' 'स्वयं को लादो मत, सुनने वाली को विकल्प दो और सुनने वाली को अच्छा महसूस करने दो' की गुहार लगानी पड़ी थी। इन स्थितियों को देखकर उन्होंने लैंगिक समानता की भाषा को कानूनी जामा पहनाने की अपील भी की थी।''[४]

'स्त्री-भाषा'– यह विषय विमर्श के केन्द्र में आने की शुरूआत पश्चिम से होती है। पश्चिम के रचनाकारों एवं पाठकों के लिए भाषा को स्त्रीवादी मसला माना जाना आश्चर्य का विषय नहीं रहा है, लेकिन भारत में हिन्दी साहित्य के पाठकों, लेखकों, आलोचकों और रचनाकारों के लिए यह मसला आज भी आश्चर्य का विषय है। मराठी और हिन्दी में छिटपुट मात्रा में इस विषय पर बहस शुरू हो गयी है; पर इस क्षेत्र में बुनियादी काम बहुत कम हुआ है, करीब-करीब न के बराबर। स्त्रियों को अलग भाषा की जरूरत होती है– इस आवश्यकता की ओर सबसे पहले, १९२६ में, वर्जिनिया वूल्फ ने अपने लेख 'वूमेन एण्ड फिक्शन' के माध्यम से ध्यान आकर्षित किया। उसके बाद; साधारणतया ७०-९० के दशक में स्त्रियों की भाषा पर, भाषा और लिंग पर पश्चिम में कई किताबें लिखी गयीं। इन स्त्रीवादी लेखिकाओं ने भाषा का भाषावैज्ञानिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन कर यह कहा कि स्त्री की भाषा पुरुष भाषा से अलग होती है। स्त्री की भाषा, उसकी संरचना, वाक्य-गठन, पठन-शैली और सन्देश के सम्प्रेषण की प्रक्रिया पर विचार करते हुए उन्होंने उसे पुरुषों से भिन्न माना। भाषा का व्याकरण भी कैसे लिंगवादी है, इसे विषद किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि भाषा के नाम पर हम जिस भाषा से परिचित हैं, वह मूलत: पुरुष भाषा है और विश्व की भाषाओं में लैंगिक भेद-भाव दिखाई देता है। किसी भी भाषा का समग्र विश्लेषण लिंग-विश्लेषण के बिना सम्भव नहीं है। भारतीय नारीवादी कमला भसीन एक साक्षात्कार में कहती हैं– ''यद्यपि भाषा का प्रश्न कोई महत्त्वपूर्ण मुद्दा नहीं रहा है, अर्थात् इसको लेकर कोई बहुत बड़ा अभियान नहीं चलाया गया है, तथापि हम इसे चुनौती देने और इसके प्रयोग में परिवर्तन लाने को महत्त्वपूर्ण समझती हैं। हमें यह जानना होगा कि हमारा भाषा-प्रयोग लिंगवादी है। वह पुरुष की उत्तमता प्रचारित करता है तथा

स्त्रियों को छोटा करके दर्शाता है या फिर पूर्णतया नकार देता है। चूँकि धर्म और धारणाओं की भाँति भाषा भी पुरुष पूर्वाग्रहों और पुरुष दृष्टिकोण को आगे बढ़ाती है, तो भला हम क्यों किसी ऐसी चीज को स्वीकारें, जो हमारे साथ भेद-भाव करती-बरतती हो, अपमानित करती हो, हमारे अस्तित्व को नकारती हो तथा समाज में हमारी वास्तविक भूमिका को मानने-पहचानने से इन्कार करती हो।''[५]

स्त्रीवादी आन्दोलनों की शुरूआत स्त्री की सार्वजनिक भागीदारी और मताधिकार की माँग से हुई थी। धीरे-धीरे स्त्रियों को अपनी अस्मिता के प्रति सजग होने के कारण उन्हें अपनी स्वायत्तता पर लगी पाबन्दियों का एहसास होने लगा। पुरुष वर्चस्व के तले अपने अस्तित्व के कुचले जाने के एहसास ने उसे पितृसत्ता से परिचित कराया। उसे इस बात का भी एहसास होने लगा कि वह भी पुरुष की तरह एक सामान्य मनुष्य होने के बावजूद, समाज में दोयम है। उसका अस्तित्व न केवल पुरुष के अस्तित्व से जुड़ा है, बल्कि पुरुष के अस्तित्व पर ही उसका अस्तित्व निर्भर है। विरासत में मिली संस्कृति उसे गुलाम बनाती है, पंगु बनाकर रख देती है। उसे आत्मनिर्भर बनाने के बजाए परावलम्बी बनाती है। सामाजिक स्थितियाँ नीति-नियमों, परम्पराओं, रूढ़ियों, रीति-रिवाजों का हवाला देकर पग-पग पर रोड़े लगाता है। परन्तु हुआ यह कि इस विकास-क्रम में स्त्रियों ने खुद को संस्कृति और समाज में खोजने के बजाए अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों, स्वप्नों, कामनाओं और अवचेतन के अँधेरे में खोजने की कोशिश की। २१वीं शती तक पहुँचते-पहुँचते अब वह अपने आपको खोजते-खोजते खुद को संस्कृति और सामाजिक स्थितियों में भी खोजने लगी है। तब उसे एहसास होने लगा है कि उसे तो जुबान ही नहीं है। भाषाविज्ञान भी केवल भाषिक और व्याकरणिक स्तर पर सोचता है, सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भों से वह कटा होता है। भाषा, वर्ग, जाति, लिंग (जेण्डर) या क्षेत्रगत सामाजिकता की ओर उसका ध्यान नहीं होता। पर यह बात भी पूर्ण सत्य नहीं है। समाज भाषाविज्ञान ने यह कहा कि भाषा सबसे बराबरी का बर्ताव नहीं करती, वह सामाजिक रूप से अलग-अलग स्तरों को जिन्दा रखती है। अगर ऐसा न होता, तो सभ्य, शिक्षित एवं सुसंस्कृत कहे जाने वाले लोगों की भाषा शिष्ट और शिष्टाचार से युक्त और जातिगत, दलित एवं स्त्रियों की भाषा हीन, जनानी और उनके लिए इतनी बड़ी मात्रा में गालियों का प्रयोग करने वाली न होती। अपने स्वरूप में भाषा खुद ही स्तरीकृत होती है। दूसरी बात; भाषा मूलत: सामाजिक वस्तु होने के कारण उसका सम्बन्ध बाह्य रूप से सामाजिक एवं सूक्ष्म रूप से मानसिक प्रक्रिया के साथ होता है। वह भाषिक समुदाय की बाहरी आधारभूत संरचना और उसकी मनोरचना की मिली-जुली परिणति होती है। उसके बाद; स्त्रियों की भाषा का अध्ययन दो दिशाओं से शुरू हो जाता है– एक, भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से और दूसरा, सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से। भाषा वैज्ञानिक या व्याकरणिक दृष्टिकोण का सम्बन्ध लहजे एवं बाहरी संरचना के साथ अधिक है, तो सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण का सम्बन्ध शब्दावली, मुहावरेदारी, अभिव्यंजना की शक्ति, अर्थविज्ञान और मनोविज्ञान आदि से सम्बन्धित विलक्षणताओं में एवं उसके अलगाव में दिखाई देता है।

प्रचलित भाषा और उसका व्याकरण एवं शब्दकोश पुरुष-वृत्ति से ग्रस्त है। भाषा में कर्त्ता की जगह पर पुरुष बैठा है और स्त्री कर्म या कारक है। राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने १ सितम्बर, २०१५ के 'स्त्री-काल' में 'हिन्दी भाषा में स्त्री-विमर्श' नामक लेख लिखा। इस लेख के माध्यम से उन्होंने कई प्रमाण देकर व्याकरणिक दृष्टि से हिन्दी भाषा में निहित लिंग-वैषम्य को विषद

करते हुए इस वृत्ति को उजागर किया है। वे कहते हैं कि हिन्दी व्याकरण में पुल्लिंग शब्दों को मूल और स्त्रीलिंग शब्दों को व्युत्पन्न या दोयम दर्जे का समझा जाता है। हिन्दी में पुरुषवाची शब्दों में प्रत्यय जोड़ देने से स्त्रीवाची शब्द बन जाते हैं। जैसे– लड़का-लड़की, बालक-बालिका, माली-मालिन, देवर-देवरानी आदि। स्त्रीलिंगी शब्दों को व्युत्पन्न मानने की बात, स्त्री-पुरुष भेद-भाव की वृत्ति (पुरुष को श्रेष्ठ और स्त्रियों को कनिष्ठ मानने की वृत्ति) को स्पष्ट रूप से दर्शाती है। इसी तरह, उन्होंने कहा कि हिन्दी के विशेषण भी लिंग के आधार पर अपना रूप बदल देते हैं। हिन्दी में पदवीसूचक शब्दों को लिंग-निरपेक्ष अथवा उभयलिंगी कहकर हिन्दी के वैयाकरणों ने राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्री, सांसद, सचिव, निदेशक, उपायुक्त, जिलाधीश, अधीक्षक जैसे शब्दों को स्त्रीलिंग-पुल्लिंग के दायरे से बाहर रखा है। यह ठीक है, उन्हें भाषा की रग-रग में लिंग-भेद दिखाई देता है। हिन्दी के पदवीसूचक शब्दों में केवल 'पति' लगाना, जैसे- 'राष्ट्रपति', 'कुलाधिपति', 'कुलपति'– उन्हें नागवार गुजरता है। उन्हें इस बात का खेद है कि 'पत्नी' के मेल से बना हुआ एक भी पदवीसूचक शब्द उन्हें दिखाई नहीं देता। शब्दकोश में 'हमलोग' का अर्थ मनुष्यों का समूह है। 'लोग' का स्त्रीलिंग रूप 'लुगाई' है। 'हम लोग' में सभी शामिल हैं– 'पुरुष' भी, 'स्त्री' भी। 'हम लुगाई' जैसे शब्द वचन प्रकरण में नहीं मिलते। इसे देखकर वे कहते हैं कि हिन्दी में 'श्रोता लोग' ही चलेगा। श्रोता के संग 'लुगाई' नहीं चलेगा। कारण कि हिन्दी व्याकरण पुरुषों की जययात्रा है।

'स्त्री' का सम्बन्ध 'सत्ता' के साथ न होकर 'सशक्तीकरण' के साथ है। इस स्थिति को हम भाषा में लड़के और लड़कियों के नाम रखने की प्रवृत्ति के आधार पर जान सकते हैं। अक्सर लड़कों के नाम पौरुषयुक्त रखे जाते हैं, तो लड़कियों के नाम कोमल भावों की अभिव्यक्ति करने वाले, जैसे– 'विक्रान्त', 'विक्रम', 'अमिताभ', 'अजय', 'अभय' (लड़कों के लिए) और 'कोमल', 'स्निग्धा', 'ऐश्वर्या', 'स्नेहा', 'वन्दना' आदि (लड़कियों के लिए)।

समाज भाषाविज्ञान अपने अध्ययन में बोलने के लहजे, आवाज़, शब्द और भाषा को महत्त्व देता है। कौन, किसके साथ, किन स्थितियों में और कहाँ पर बोल रहा है– इसके आधार पर लहजे में परिवर्तन होता रहता है और अर्थ की छटाएँ भी बदलती रहती हैं। इसलिए नृविज्ञानी शर्ले आर्डनर भाषा-अध्ययन में स्त्री की खामोशी और उसके मौन की चर्चा करती हैं। इतिहासकार कैरोल स्मिथ स्त्री की आवाज को महत्त्व देती हैं और स्त्री के शब्दों को सुनना चाहती हैं। एलेन शो वॉल्टर स्त्रियों की भाषा और उनकी शाब्दिक योजना का अन्वेषण करना चाहती हैं। स्त्री-भाषा का अध्ययन करते समय मौन और सांकेतिक भाषा कारगर सिद्ध होती है। प्रभुत्वशाली और सत्ताधारी बड़े विश्वास के साथ दबंग आवाज में बोलते हैं। उनके बात करने का ढंग एवं शैली रूखी होती है। वे अपने लिए बहुवचन का प्रयोग करते हैं। अक्सर इस प्रकार की भाषा पुरुषों की और इनकी तुलना में स्त्रियों की भाषा कमजोर और दबी-दबी सी होगी। आर्थिक स्थितियों से भी बोलने के लहजे में परिवर्तन होगा। आर्थिक दृष्टि से कमजोर स्त्री की आवाज और सम्पन्न स्त्री की आवाज़ में परिवर्तन दिखाई देगा। संख्या के आधार पर भी भाषा के प्रभाव को समझा जा सकता है। बाहरी दुनिया में पुरुष बहुसंख्यक होता है, तो स्त्रियाँ अल्पसंख्यक। अल्पसंख्यक की आवाज बुलन्द नहीं हो सकती, चाहे कितनी भी प्रतिभाशाली हो, बौद्धिक हो। संख्या के बलबूते आतंक जमाने की मर्दों की वृत्ति पर प्रकाश डालते हुए विकास नारायण राय ने इशारा किया है। दुनिया के विकसित लोकतन्त्र अमेरिका में हिलेरी क्लिंटन जब सीनेटर बनीं, तब एक नेता ने

तिरस्कार से कहा– ''आने दो उसे, हम रोज याद दिलाएँगे कि वह सौ में से महज एक है, न कि कोई ख़ास।''[६]

प्रचलित भाषा स्त्री के देह की भाषा है। इसके शब्द एक ओर स्त्री की देह को अपने आशय में घेरते रहते हैं और दूसरी ओर; स्त्री को देह में ही कैद करना चाहते हैं। इंदिरा गाँधी के प्रधानमंत्री बनने पर एक भारतीय सांसद ने कहा था– ''अब अखबारों में एक आकर्षक तस्वीर देखने को मिला करेगी।''[७] अर्थात् इंदिरा गाँधी के प्रधानमंत्री बनने के बाद भी उनकी देह ही आकर्षित कर रही है, उसकी बुद्धि, चतुराई, साहस, नेतृत्व-क्षमता, तेज या उनका समूचा सामर्थ्य नहीं। स्त्री 'देह' के परे भी कुछ हो सकती है, इसकी कल्पना करना भी इस 'पुरुष वर्चस्व' की भाषा को नहीं आता। वर्तमान समय में सत्ता और पद का उपभोग करने वाली महिलाओं की भाषा में परिवर्तन दिखाई दे रहा है।

'भाषा, लिंग और सत्ता' इस विस्तृत शोधालेख में सूजन गेल (अनुवाद– अभिषेक अवतंस, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा) ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुद्दे की ओर ध्यान आकर्षित किया है। वह मुद्दा है– 'प्रतीकात्मक वर्चस्व'। प्रतीकात्मक वर्चस्व का सम्बन्ध सत्ता एवं मनुष्य के मनोविज्ञान के साथ होता है। सत्ता का सबसे प्रभावकारी रूप वह होता है, जब सत्ताधारी या वर्चस्वशाली व्यक्ति दूसरों को अपने नजरिये से दुनिया या सामाजिक सत्य को देखने के लिए विवश करता है। एक ओर सत्ताधारी की यह मानसिकता और दूसरी ओर; यह वर्चस्व स्थापित होने के लिए समाज मनोविज्ञान भी इसके लिए सहायभूत होता है। यह आम तौर पर देखा जाता है कि समाज के कमजोर तबके अपने निजी अनुभवों के बजाए दूसरे शक्तिशाली लोगों द्वारा तय किये गए व्यवहारों को प्रतिनिधित्व देने का प्रयास करते हैं। भाषा के क्षेत्र में अल्पसंख्यक या बोली-भाषा में बोलने वाले लोग मानक भाषा को प्रतिनिधित्व देते हैं। शिक्षित एवं प्रभावी व्यक्ति, महाविद्यालयों, सेमिनारों, चर्चा-सत्रों में मानक भाषा में वार्तालाप करते-करते उस भाषा को प्रतिष्ठित करते रहते हैं और अशिक्षित एवं अज्ञानी अपनी भाषा को दोयम दर्जे की मानते हुए उसी भाषा को प्रतिनिधित्व देने का प्रयास करते रहते हैं। लैंगिक सन्दर्भ में जब हम इस प्रवृत्ति की ओर देखते हैं, तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण समाज में वर्चस्वी पुरुष अपने ही नजरिये को स्त्रियों के सामने स्थापित करता रहता है और स्त्रियों को वही सामाजिक सत्य देखने के लिए विवश करता है, जो वह खुद देख रहा है। इसका परिणाम यह होता है कि स्त्रियाँ भी उसी भाषा को प्रतिनिधित्व देती हैं, जो पुरुष की भाषा होती है। यह प्रश्न उपस्थित होता है। सत्ता (पुरुष वर्चस्व) के कारण लिंग में अन्तर कैसे निर्माण होता है, इस बात के भी कई उदहारण रोजमर्रा की भाषा में मिलते हैं। स्त्रियाँ अपने रोते हुए लड़के को देखकर बहुत सहजता से कहती हैं– ''क्या लड़कियों की तरह रो रहे हो? या किसी कमजोर और दब्बू लड़के को यह कहना कि 'क्या चूड़ियाँ पहन रखी हैं?''– ये वाक्य कहते समय वह यह नहीं समझती कि वह पुरुष की ही भाषा बोल रही हैं और खुद का ही अपमान कर रही हैं। वह इस विचार को मान बैठी हैं कि रोना (कमजोरी) या चूड़ियाँ पहनना (दब्बूपन) लड़कियों का धर्म है, पुरुषों का नहीं। कठोरपन पुरुषत्व से जुड़ा होता है और प्रतिष्ठा, भद्रता, कोमलता, नज़ाकत आदि स्त्रीत्व से। यह भेद हमें भाषा ही बताती है। स्त्रियों के साथ जुड़े ये शब्द उच्च संस्कृति से संलग्न होते हैं। स्त्रियों की कठोरता, अभद्रता, निर्भयता श्रमिक संस्कृति से जुड़े शब्द होते हैं– ये भाषाई तौर-तरीके प्रतीकात्मक वर्चस्व के ही परिणाम हैं।

भाषा में सायास परिवर्तन करना दुष्कर होता है। सुधा सिंह लिखती हैं कि– ''स्त्री को अपनी भाषा गढ़ने के लिए पुरुष सत्ताकेन्द्रित भाषा से लगातार टकराना होगा। शीर्ष केन्द्रित शब्द और वाक्य, जो सार्वजनिक और व्यक्तिगत स्तर पर स्त्री को निर्वाक बनाते हैं, के मकड़जाल को काटना होगा। कुछ लोगों की धारणा है कि इस तरह से भाषा से शब्दों को सायास नहीं निकाला जा सकता। भाषा का निर्माण एक लम्बी सामाजिक प्रक्रिया का अंग है, एक दिन की निर्मिती नहीं। भाषा को सायास निर्मित करने की चेष्टा व्यर्थ है। अगर स्त्रीवादी विमर्श के मुद्दे जिन्दा रहे, तो भाषा स्वयं विकास के क्रम में पुराने और रूढ़ पितृसत्तात्मकता को व्यंजित करने वाले शब्दों को छोड़ देगी।''[८] कई मोर्चों पर उसके हितों की लड़ाई के साथ-साथ उसकी भाषा की निर्मिती की प्रक्रिया भी चलती रहेगी। जैसे स्त्री-संघर्ष के बगैर स्त्री-भाषा का विकास सम्भव नहीं, वैसे ही; स्त्री-भाषा के बगैर संघर्ष की अभिव्यक्ति भी सम्भव नहीं। स्त्री-भाषा का प्रश्न स्त्री-मुक्ति से जुड़ा हुआ है। सामाजिक-सांस्कृतिक पुरुष प्रधान मूल्यों से मुक्ति की राहों का खुलना स्त्री-भाषा के निर्माण की सीढ़ियों पर एक-एक पायदान ऊपर चढ़ना है। आवश्यकता है, स्त्रियों को अपनी भाषा में अभिव्यक्त होने की, अपनी अनुभूतियों में अपने आपको खोजने की।

सन्दर्भ-सूची

१. हंस - पूर्णांक ४२९, वर्ष : ३६, अंक : १२, जुलाई २०२२

२. डॉ. रमा नवले– मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी, विकास प्रकाशन, ३११ सी., विश्व बैंक, बर्रा-कानपुर-२०८०२७, प्रथम संस्करण २००७, पृष्ठ ३१८

३. सं. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह– स्त्री-अस्मिता : साहित्य और विचारधारा, आनन्द प्रकाशन, १७६१७८, रवीन्द्र सरणी, कोलकाता-७००००७, प्रथम संस्करण २००४, पृष्ठ २२८

४. विकास नारायण राय– स्त्री-पुरुष समता की भाषा https://www.jansatta.com/politics/stri-purush-samata-ki-bhasha/23694

५. कमला भसीन– नारीवाद के मुद्दे, मूल प्रश्न, महिला विमर्श : बदलते आयाम, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करने वाली पत्रिका- जनवरी-अप्रैल २०१८, पृष्ठ २३

६. विकास नारायण राय– स्त्री-पुरुष समता की भाषा- https://www.jansatta.com/politics/stri-purush-samata-ki-bhasha/23694

७. वही

८. सं. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह– स्त्री-अस्मिता : साहित्य और विचारधारा, पृष्ठ २३०

●

भारतीय संचार : संस्कृति, संस्कार और भाषा

डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह*

हम पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के इतिहास को पढ़ते और सुनते रहे हैं। जहाँ इस ग्रह पर करोड़ों वर्षों से जीवन के चिरस्थायी बने रहने की आधारशिला सृजित है, तो उसे अनवरत जारी रखने का स्तम्भ उनकी 'संस्कृति' है। जीवों के जीवन जीने की कला और कौशल ही उनकी संस्कृति के नाम पर प्रचलित होती चली गयी, जो जीवन के प्रति उनकी समझ और संचित ज्ञान का कोष है। संस्कृति को परिभाषित करना अथवा संस्कृति के विषय में कुछ कहना स्वयं में एक जटिल कार्य है और जब बात भारतीय संस्कृति के विषय में हो, तो वह अपनी विषमताओं को समेटे हुए नि:संदेह अद्‌भुत है। भारत को महान एवं विश्वगुरु बताते हुए पूर्व प्रधानमन्त्री स्व. अटल बिहारी वाजपेयी अपनी कविता 'मैं अखिल विश्व का गुरु महान' में लिखते हैं–

'मैं अखिल विश्व का गुरु महान, / देता विद्या का अमरदान,
मैंने दिखलाया मुक्ति मार्ग, / मैंने सिखलाया वृहत ज्ञान।'

क्या विश्व में कोई और संस्कृति है, जिसकी मूल भाषा के शब्द ही उसकी श्रेष्ठता का प्रमाण बन जाएँ? भारत भूमि पर विकसित हुई सनातन संस्कृति के अतिरिक्त कोई और संस्कृति नज़र नहीं आती। ऐसी संस्कृति, जिसके अनगिनत शब्द और उनके शब्दार्थ न केवल उसकी श्रेष्ठता के प्रमाण हैं, बल्कि उसकी व्याख्या भी करते हैं और उस संस्कृति का नाम है– सनातन अर्थात् सदा बना रहने वाला, जो आदि काल से अनंत काल तक शाश्वत है। उसी सनातन के ये शब्द– संस्कृति, संस्कार, भाषा (संस्कृत) और संचार– इनके गहरे शब्दार्थ बहुत कुछ कहते हुए दिखते हैं। ये चारों शब्द आपस में जुड़े-गुँथे भी हुए हैं।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीन और श्रेष्ठ संस्कृति है, जिसका मूल लक्ष्य शान्ति, सहिष्णुता, एकता, सत्य, अहिंसा और सदाचरण जैसे मूलतत्व हैं। भारतीय संस्कृति परिवर्तनशील रही है, लेकिन कभी विलुप्त नहीं हुई। संस्कृति में कई उतार-चढ़ाव आए, कितनी ही संस्कृतियों का समागम हुआ, लेकिन भारतीय संस्कृति इन सबका समन्वय कर चलती रही। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता इसकी निरन्तरता, ग्रहणशीलता, समन्वयवाद, धार्मिक सहिष्णुता, सार्वभौमिकता वसुधैव कुटुम्बकम जैसे तत्त्व उसकी उत्कृष्ट विशेषताओं को परिलक्षित करते हैं। भारतीय संस्कृति के संचित ज्ञान कोष ने विश्व को अनेक सांस्कृतिक, साहित्यिक और वैज्ञानिक रचनाएँ प्रदान की हैं। इन रचनाओं में आर्यभट्ट द्वारा शून्य का आविष्कार, चरक द्वारा आयुर्वेद की खोज, प्राचीनतम भाषा संस्कृत, योग, अध्यात्म आदि अनेक सृजन हैं। भारतीय संस्कृति की इन रचनाओं ने विश्वपटल में न सिर्फ अपनी अमिट छाप अंकित की है, बल्कि विश्व इन रचनाओं का पथ-प्रदर्शक स्वरूप अनुकरण कर इन्हें अपने जीवन में अपना रहा है। भारतवर्ष का इतिहास उसके वर्तमान से अपृथक् रूप से जुड़ा हुआ है। इसकी संस्कृति की जड़ें इतनी मजबूत और स्थायी हैं कि समय का प्रवाह और आधुनिकता का प्रहार उसे समाप्त नहीं कर सका। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता इसकी निरन्तरता और चिरस्थायित्व है। हमारी गौरवशाली संस्कृति के

* निदेशक– म. मो. मा. हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी एवं संस्थापक विभागाध्यक्ष– पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, इ. गां. रा. जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकटण्क, मध्य प्रदेश-४८४८८७

चिरस्थायित्व को समझते हुए, १८३५ में, लॉर्ड मैकाले ने अपने भाषण में कहा था कि– ''भारतीयों को कभी जीता नहीं जा सकता, जब तक कि हम इस राष्ट्र की रीढ़ न तोड़ दें, और भारत की रीढ़ है– उसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत.....हमें उनकी शिक्षा-पद्धति को बदलना होगा, उनकी संस्कृति पर प्रहार करना होगा, जिससे वे अंग्रेजी भाषा को अन्य देशी भाषाओं से महान समझने लगेंगे, वे अपनी देशज जातीय परम्पराओं को भूलने लगेंगे, लोग वैसे ही हो जाएँगे, जैसा हम चाहते हैं, एक आक्रांत एवं पराजित राष्ट्र।''

संस्कृति की निरन्तरता और चिरस्थायित्व को वर्तमान सन्दर्भ में देखें, तो आज भी यह उतना ही विभूषित है, जितना सनातन काल में। भारतीय संस्कृति से उत्सर्जित 'वसुधैव कुटुम्बकम' से हमने समस्त विश्व को जहाँ नजदीक लाकर एक बना दिया, वहीं 'अतिथि देवो भव:' की भावना से परायों को भी अपना बना लिया। सम्पूर्ण विश्व की विभिन्न सभ्यताओं में प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति को बहुत आदरपूर्ण स्थान दिया गया है। हमारे वेदों में भी इसका वर्णन किया गया है कि– 'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा', जिसका अर्थ यह है कि– ''संस्कृति सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिए है, इस उत्कृष्ट भावना का ही प्रतिफल है कि जहाँ एक ओर अन्य समकालीन संस्कृतियाँ काल के गर्त में समा गयीं, वहीं भारतीय संस्कृति वर्तमान में भी जीवन्त है। हमारी संस्कृति आज भी विश्व के समक्ष आदर्श प्रस्तुत कर सम्पूर्ण भारतीय जनमानस को गौरवान्वित कर रही है।

राष्ट्र की संस्कृति महज एक संकल्पना नहीं होती है, बल्कि यह एक अभियान और गर्व की बात होती है, जो हम सभी में एक भारतीय होने के नाते होनी चाहिए। भारतीय संस्कृति और परम्पराओं की जो विरासत हमारे हिस्से में आयी है, वह अन्य किसी भी देश को प्राप्त नहीं हुई है। इस विरासत को सँभालना, जतन करना और इस पर गर्व करना, हमारा फर्ज है। यह हमारा गौरव है कि हम एक ऐसे देश के नागरिक हैं, जहाँ की संस्कृति एवं परम्परा इतनी प्राचीन और विकसित होने के साथ-साथ विभिन्नताओं से परिपूर्ण है। हमारी विभिन्नताओं तथा विविधताओं के कारण हम एक साथ विभिन्न संस्कृतियों को अपने देश में ही देख सकते हैं। भारत के पूर्व में असम से लेकर पश्चिम में राजस्थान एवं उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण के तमिलनाडु तक सबकी अपनी संस्कृति और विशिष्ट परम्पराएँ हैं। ये संस्कृतियाँ जितनी प्राचीन हैं, उतनी ही समृद्ध हैं और संस्कृति के नाम पर हमारी थाती भी हैं। संस्कृति नामक संचित ज्ञान रूपी कोष में स्थानानुसार भिन्नता तो पायी जाती है, लेकिन यह भिन्नता भी अनूठी है और एक पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी को प्रदान करती है। विचारक उडवर्थ एवं सदरलैण्ड के अनुसार– ''किसी भी राष्ट्र की संस्कृति उसकी सामुदायिक विरासत है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित की जाती है।'' लेकिन आधुनिक भारतीय संस्कृति को देखा जाए, तो उसमें जो बदलाव आया है, उसमें त्रुटि केवल संस्कृति हस्तांतरित करने वाले वरिष्ठों से ही नहीं हुई, बल्कि संस्कृति सीखने वाले कनिष्ठों से भी हुई है। प्रस्तुत विषय पर आत्ममंथन जरूरी है, जिसमें भाषा, संस्कृति और संचार में होने वाले अन्त:सम्बन्धों की समस्याओं का समाधान भी छिपा हुआ है।

भारतीय संस्कृति की सर्वोच्च विशेषता सामंजस्य की भावना है। यहाँ भिन्न-भिन्न जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों, भाषाओं और परम्पराओं का समागम है। भारतीय संस्कृति एक अनन्त सागर है, जिसमें अनेक विचारधाराएँ सरिता की भाँति समाविष्ट हो जाती हैं। इसमें राष्ट्रभक्ति की प्रचुरता है। भारतीय चिन्तन इस पृथ्वी को जननी के समान पावन एवं सुखदायिनी मानता है और हृदय से उसकी ऋणता को स्वीकार करता है–**'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'**

इतनी विभिन्नताओं के बावजूद; भारत 'अनेकता में एकता' के सूत्रपात से बँधा ऐसा देश है, जो अपने हर राज्य और हर प्रांत के निवासियों को सदियों से एक सूत्र में पिरोता आया है। संस्कृति, मानव-जीवन की विधि या विधान का दूसरा नाम है। संस्कृति को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है, परन्तु कोई भी सर्वमान्य परिभाषा नहीं मिल पायी। बावजूद इसके; एक बात जो मूल में है, वह यह कि मानव-समूह के आन्तरिक-बाह्य जीवन को एवं मानव के शारीरिक- मानसिक शक्तियों को संस्कारवान, विकसित और सुदृढ़ बनाने की प्रक्रिया को संस्कृति कहा जाता है, जिसमें वह जीवन-यापन की परम्परा प्राप्त कर संस्कारित, सुदृढ़, प्रौढ़ और विकसित बनता है। भारतीय संस्कृति में अद्‌भुत शक्ति है। यह प्रतिकूल परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लेती है। जब विश्व कोरोना महामारी से प्रभावित हुआ, तो भारत भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रहा। संसाधनों के अभाव में भारत के समक्ष इस महामारी से निपटने के लिए चुनौतियाँ बहुत आयीं। नागरिकों ने संकट की इस घड़ी में जो संकल्प-शक्ति प्रदर्शित की, उससे भारत में एक सकारात्मक बदलाव की शुरूआत हुई। देश के नागरिकों ने बिना भेदभाव के न केवल लोगों की मदद की, बल्कि सेवा-कार्य में लगे पुलिसकर्मी, स्वास्थ्यकर्मी और सफाई कर्मचारी की हर सम्भव सहायता की। लोगों द्वारा महामारी के दौरान गरीबों से जरूरतमंदों तक को भोजन सुनिश्चित किया गया। समाज का मानवीय एवं सम्वेदनशील पक्ष विश्व के सामने आया। इसी सन्दर्भ में; भारतीय संस्कृति का उल्लेख करते हुए प्रधानमन्त्री मोदी ने अपने सम्बोधन में कहा कि– ''भारत ने अपने संस्कारों के अनुरूप, हमारी मानसिकता के अनुरूप, हमारी संस्कृति का निर्वहन करते हुए कुछ निर्णय लिया है।''

भारत ने इस संकट के समय में विश्व के अन्य देशों को मदद पहुँचाकर यह साबित कर दिया कि सम्पूर्ण मानवता के लिए इस वैश्विक महामारी के खिलाफ युद्ध में भारत अपना योगदान देने के लिए प्रतिबद्ध है। भारतीय संस्कृति की विशेषता है, इसमें सदैव 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना रखते हैं। यह हमारी संस्कृति की अपनी थाती है, जो विश्व की अन्य संस्कृतियों से हमें भिन्न बनाती है। भारतीय संस्कृति ने न केवल भौतिकता को समझा है, बल्कि प्राचीन परम्पराओं के माध्यम से समाज के सर्वांगीण विकास पर जोर भी देता रहा है। स्वस्थ व्यक्ति से स्वस्थ्य समाज के निर्माण की भावना के साथ सम्पूर्ण विश्व न केवल योग को अपना रहा है, बल्कि अब प्राचीन भारतीय चिकित्सकीय प्रणाली 'आयुर्वेद' के सिद्धान्तों को भी अपनाया जा रहा है। सैकड़ों वर्षों की हमारी गुलामी के कालखण्डों के परिणामस्वरूप; हम कई बार अपनी संस्कृति तथा परम्परा को अस्वीकार करते रहे हैं। यदि विश्व के अन्य देश तथ्यात्मक शोध के आधार पर हमारी परम्परा, संस्कृति को सही ठहराते हैं, तब हम अतिशीघ्र उसको सही मान लेते हैं। आज हमारी युवा पीढ़ी को संकल्पित होने, भारतवर्ष के प्राचीन पारम्परिक ज्ञान-परम्पराओं को सम्पूर्ण विश्व को समझाने पर जोर देना होगा। हमें अपनी संस्कृति और परम्परा की शक्ति पर विश्वास करना होगा। हमारी संस्कृति विश्व में अपनी महत्ता को बनाये हुए है। इसकी जीवन्तता आज भी चरितार्थ है और यही गौरवमयी संस्कृति हम भारतीयों को सनातन काल से गौरवान्वित कर रही है। सनातन संस्कृति वह मानवीय जीवन-शैली है, जो आदिकाल से मनुष्य के जीवन को निरन्तर उन्नत और विकसित कर रही है। परिवर्तनशीलता उसका विशेष गुण है। जो परिवर्तनशील नहीं, वो विकसित नहीं हो सकता, निरन्तर नहीं बना रह सकता। संस्कृति समाज में क्रियान्वित करने के लिए बनायी गयी है।

मानव-संस्कृति का सम्बन्ध ज्ञान, कर्म तथा रचना से है। इसका सम्वर्धन निरन्तर बना रहे,

इसलिए किसी भी संस्कृति का संस्कार-सम्पन्न होना अति आवश्यक होता है। भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृतियों का मूलाधार है। संस्कृति से तात्पर्य प्राचीन काल से चले आ रहे संस्कारों से है। मनुष्य द्वारा लौकिक-पारलौकिक विकास के लिए किया गया आचार-विचार ही संस्कृति है। संस्कृति अनुभवजन्य ज्ञान पर और सभ्यता बुद्धिजन्य ज्ञान पर आधारित है। भारतीय संस्कृति प्रत्येक जाति और प्रत्येक व्यक्ति में सुसंस्कार उत्पन्न करती है। भारतवर्ष एक आदर्श देश है। सारे विश्व में भारत का अपना एक विशिष्ट स्थान है। सबसे हटकर इस देश का अस्तित्व है। क्यों? क्योंकि यहाँ संस्कार और त्याग को महत्त्व दिया जाता है। संस्कार और संस्कृति का बड़ा बेजोड़ सम्बन्ध है। जो संस्कार के बिना ही संस्कृति को जीवित रखना चाहता है, वह तो ऐसा है, जैसे पानी के बिना पौधे को सलामत रखना। पानी से ही बाग हरा-भरा रहता है और फला-फूला रहता है। जीवन में संस्कार की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। संस्कारों के द्वारा मनुष्य अपनी सहज प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास करके अपना और समाज– दोनों का कल्याण करता है। प्राचीन काल से ही हमारा प्रत्येक कार्य संस्कारों से ही आरम्भ होता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जीवन ही संस्कारों पर आधारित है। हमारे मनीषियों ने हमें सुसंस्कृत तथा सामाजिक बनाने के लिए अपने अथक प्रयासों और शोधों के बल पर ये संस्कार स्थापित किये थे। इसके पीछे ऐसी मान्यता है कि ये संस्कार इस जीवन में ही मनुष्य को पवित्र नहीं करते, बल्कि उसके पारलौकिक जीवन को भी पवित्र बनाते हैं। भारतीय संस्कृति और संस्कारों के प्रति आस्था, समर्पण और श्रद्धा का भाव जितना प्रगाढ़ होगा, उतना ही वह मानव आत्मसंतोष और परमानन्द को प्राप्त करेगा। इस मूलाधार को अपनाकर अनेक आत्माओं ने चेतना का विकास कर आत्मसाक्षात्कार पाया और दुनिया को अनुपम ज्ञान प्रदान किया है।

मानव-जीवन में संस्कार और संस्कृति से ज्ञान का क्षयोपशम बढ़ता है, विवेक जाग्रत होता है और सही-गलत की पहचान होती है। वास्तविक, विवेकी और सम्पूर्ण ज्ञान व्यक्ति, समाज, परिवार और देश का विकास ही करता है। व्यक्ति जिस देश, समाज और परिवार में जन्म लेता है, उसी के अनुरूप व्यक्ति के जीवन में संस्कारों का बीजारोपण होना चाहिए। संस्कार अपने आप में अमूर्त्त होते हैं। ये व्यक्ति के आचरण से झलकते हैं। चरित्र-निर्माण में धर्म और संस्कार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सहिष्णुता, समन्वय की भावना, गौरवशाली इतिहास, संस्कार, रीति-रिवाज और उच्च आदर्शों के कारण भारतीय संस्कृति और संस्कार सर्वश्रेष्ठ हैं। विवेक और ज्ञान– भारतीय संस्कृति की आत्म-भावना है। आज विश्व के लोग जब वायरस से बचने के लिए अपने आपको 'क्वारेण्टाइन' कर रहे हैं, अध्ययन के पश्चात् हम यह पाएँगे कि भारतीय संस्कृति में क्वारेण्टाइन की परम्परा आदिकाल से रही है। स्वागत हेतु नमस्कार करना विश्व के स्वास्थ्य के लिए हितकर है। सनातन-संस्कार एवं हिन्दुत्व के इस चिन्तन का समाज में जितना व्यावहारिक महत्त्व रहा है, उतना ही वैज्ञानिक महत्त्व भी रहा है। भारत की इस चिरकालीन चिन्तन की व्यापकता के कारण ही विश्व का भारत को देखने का दृष्टिकोण भी भिन्न रहा है। बन्धुत्व-भाव के कारण वैश्विक जगत भारत की ओर आकर्षित रहा है। वर्तमान में व्यक्ति के जीवन की बढ़ती जटिलताओं, मानसिक अशान्ति आदि का समाधान भारत की इस सत्य सनातन संस्कृति और संस्कारों में निहित है।

भारत का विचार कभी भी एक पक्षीय या एकांगी नहीं रहा है। यह वैचारिक चिन्तन कभी व्यक्ति में नहीं हुआ, बल्कि समष्टि में हुआ है। यही विचार हिन्दुत्व का विचार है। भारतीय मेधा ने सदा ही सैद्धान्तिक रूप में विश्व की मंगलकामना की है और व्यावहारिक तौर पर 'अहर्निशं

सेवामहे' का संकल्प लेकर कार्य किया है। भारत के यह संस्कार कालातीत या काल-निरपेक्ष और युगानुकूल हैं, जो प्राचीन काल में जितनी प्रासंगिक थी, वर्तमान में भी उतनी ही प्रासंगिक है और भविष्य में भी उतनी ही प्रासंगिक एवं सार्थक रहेगी। हमें गर्व होना चाहिए कि सम्पूर्ण विश्व हमारी संस्कृति और संस्कारों को न सिर्फ सम्मान से देख रहा है, बल्कि अनुसरण भी कर रहा है।

संस्कृति और संस्कारों की रचना लगातार होती है और इस रचना में अनेक शक्तियाँ; चाहे यह आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि हों, अपना निर्णायक असर डालती हैं। आजादी की लड़ाई और राष्ट्रीयता के आन्दोलनों में हमने जिस श्रेष्ठ भारतीय संस्कृति को विश्व की भावी संस्कृति के रूप में पेश किया, वह आज पश्चिमी दुनिया की जीवन-शैली से प्रभावित हो रही है। जो प्रभाव से मुक्त मूल रूप से बची है, वह किसी-न-किसी रूप में बिक रही है।

संस्कृति को उन्नत बनाने में भाषा श्रेष्ठ माध्यम है। मातृभाषा में अध्ययन करने से मौलिक विचार उत्पन्न होते हैं। इससे भाषा का शब्द-भाण्डार समृद्ध होता है। बदली हुई परिस्थितियों में मातृभाषा का महत्त्व और अधिक बढ़ गया है। भाषा में आत्मनिर्भरता से तेज गति से विकास होगा। भाषा के विकास का अध्ययन संस्कृति के विकास के आलोक में होना चाहिए। संस्कृति का अर्थ है– परिमार्जित संस्कारों से युक्त मनुष्यों की सभ्यता। हमारी आत्मा, हमारी अस्मिता, भारत की भारतीयता उसकी संस्कृति में है, जिसका प्राण संस्कृत भाषा है। भारतीय संस्कृति के सभी पक्षों, जैसे– ऐतिहासिक, आर्थिक, धार्मिक, प्राकृतिक, राजनैतिक तथा कला, ज्ञान-विज्ञान आदि का सूक्ष्म तथा वास्तविक ज्ञान संस्कृत भाषा के माध्यम से ही हो सकता है। संस्कृत भाषा की प्रमुख विशेषता है कि वह व्यष्टि से समष्टि को तथा परमेष्टि को जोड़ती है। उसकी प्रत्येक प्रार्थना में विश्व-बंधुत्व की भावना व्याप्त है। जो विपुल ज्ञान-भण्डार संस्कृत में है, उसे देश की प्रगति और मानवता के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। पण्डित नेहरू ने 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में लिखा है– ''यदि कोई मुझसे पूछता है कि भारत के पास बहुमूल्य खजाना क्या है और इसके पास सबसे बड़ी धरोहर क्या है, तो मैं बेहिचक कह सकता हूँ कि वह खजाना 'संस्कृत' भाषा और उसमें निहित समस्त वाङ्मय है। यह जब तक सक्रिय रहेगी और हमारे सामाजिक जीवन को प्रभावित करेगी, तब तक भारत की आधारभूत बुद्धिमत्ता बनी रहेगी।''

सन् १८३५ में मैकाले ने संस्कृत को कालबाह्य और अनुपयोगी भाषा बताते हुए उसकी शिक्षा को समाप्त कर दिए जाने का फतवा सुनाया था और उसकी नीतियों पर चलते हुए स्वाधीनता के बाद, संस्कृत की भारतीय सरकारों द्वारा भी उपेक्षा ही की गयी। पिछले डेढ़ सौ वर्षों की लगातार उपेक्षा और समाप्त किए जाने के तमाम प्रयासों के बावजूद संस्कृत एक जीवन्त भाषा बनी हुई है। संस्कृत भाषा के महत्त्व पर शंका करना अपने अस्तित्व पर शंका करने के बराबर है, क्योंकि जब तक मानव है, संस्कृत का महत्त्व तब तक असीम है। यह केवल वर्तमान भारत भूभाग की ही आधारशिला नहीं, अपितु मानवता की आधारशिला है। संस्कृत भाषा अन्य भाषाओं की तरह केवल अभिव्यक्ति का साधन मात्र ही नहीं है, अपितु वह मनुष्य के सर्वाधिक सम्पूर्ण विकास की कुञ्जी है। इस रहस्य को जानने वाले मनीषियों ने प्राचीन काल से ही संस्कृत को 'देव भाषा' और 'अमृतवाणी' के नाम से परिभाषित किया है। संस्कृत केवल स्व-विकसित भाषा नहीं, बल्कि संस्कारित भाषा है, इसलिए इसको 'संस्कृत' कहा जाता है। मानव जाति के आदि स्रोतग्रन्थ को जानने के लिए संस्कृत का महत्त्व अनन्त है। विश्व का सबसे प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ 'ऋग्वेद' है। 'ऋग्वेद' की भाषा विश्व के भाषाई अध्ययन में प्राचीनतम एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

मैक्समूलर ने इस सम्बन्ध में कहा है– ''जब तक मानव अपने इतिहास में रुचि लेता रहेगा और जब तक हम अपने पुस्तकालयों तथा संग्रहालयों में प्राचीन युग की स्मृतियों के चिह्न सँजोए रहेंगे, तब तक मानव जाति के अभिलेखों से भरी-पूरी पुस्तकों की पंक्तियों के बीच पहली पुस्तक ऋग्वेद ही रहेगी।'' ऋग्वेद में भाषा-तत्त्व के गम्भीर सिद्धान्त, दार्शनिक चिन्तन, भाषा की परिशुद्धता, वैज्ञानिकता तथा सूक्ष्मता को जानना आवश्यक बताया गया है।

संस्कृति, संस्कार और मानव-मूल्यों की जननी संस्कृत भाषा है, जिसमें सम्पूर्ण विश्व की अलौकिक ज्ञान-सम्पदा समायी हुई है। संस्कृत देश की आत्मा है। संस्कृत व्यक्ति को काबिलियत देती है, उसे अपनी राह खुद तय करने की क्षमता देती है। संस्कृत के अध्ययन से असीमित रोजगार की सम्भावनाएँ बनती हैं। संस्कृत जीविका-उपार्जन के साथ समाज में सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने में सक्षम भाषा है। नयी शिक्षा नीति के तहत अब छात्रों को पहले से तय विषय चुनने की बाध्यता समाप्त कर दी गयी है। इस नवाचारी पहल के तहत उच्च शिक्षा के क्षेत्र में संस्कृत भाषा और ज्ञान-सम्पदा के प्रसार की नयी सम्भावनाओं की तलाश की जानी चाहिए। युवा पीढ़ी संस्कृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन से वेदों, शास्त्रों, दर्शनों, पुराणों तथा काव्य आदि साहित्य में उपलब्ध दुर्लभ ज्ञान-विज्ञान की सम्पदा प्राप्त कर लाभान्वित हो। नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में मजबूत अनुसंधान-संस्कृति तथा अनुसंधान-क्षमता को बढ़ावा दिया गया है। गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा का नया रास्ता खुला है। इसे संस्कृत भाषा के विस्तार और प्रसार का अभूतपूर्व अवसर बनाया जाना चाहिए। विश्वविद्यालयों को संस्कृत-शिक्षा का शीर्ष अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने की दिशा में प्रयास करने चाहिए। २०१४ के बाद देश में, राष्ट्रीय विचारों की सरकार के सत्ता में आने के बाद, संस्कृत के उत्थान और सम्मान की आस जाग्रत हुई, जिसका प्रमाण केन्द्र सरकार ने देश में एक साथ तीन नए केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालयों की स्थापना करके दिया है। सरकार संस्कृत को विज्ञान, सूचना तकनीक और संचार से जोड़कर और अधिक प्रासंगिक व प्रामाणिक बनाने के लिए कृत संकल्पित है। इन प्रयासों से ही संस्कृत भाषा देश में अपनी महत्ता और खोयी हुई प्रतिष्ठा को पुन: अर्जित कर पाएगी।

आज भारत में १५ विश्वविद्यालयों और ५०० से भी अधिक परम्परागत गुरुकुलों में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन होने के साथ ही; जर्मनी, अमेरिका और ब्रिटेन जैसे विकसित देशों में भी संस्कृत भाषा स्नातक स्तर पर पढ़ायी जाती है। अमेरिकी अंतरिक्ष संगठन 'नासा' संस्कृत के सभी स्वरों की वैज्ञानिकता और ध्वन्यात्मकता को स्वीकार कर चुका है। छठीं और सातवीं पीढ़ी के सुपर कम्प्यूटरों की भाषा २०३४ में संस्कृत में ही पढ़ी जा रही है। अमेरिकी और ब्रिटिश संसद में सामूहिक वेद-वाणियों की गर्जना सुनाई दे रही है। कोरोना संकटकाल में संस्कृत की विधा योग और आयुर्वेद को विश्व ने स्वीकारा है।

समय आ गया है कि स्वतन्त्रता के सत्तर वर्ष बाद ही सही, हम अपने स्वाभिमान और पहचान के प्रतीकों को आत्मविश्वास और पूरे मनोबल के साथ स्वीकार करें। आज संस्कृत विश्व के लिए 'सर्वे भवन्तु सुखिन:', 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'कृष्णवन्तो विश्वमार्यम्' का सार्वकालिक सन्देश देने वाली ही है। भारतीय संस्कृति की रक्षा का इतना बड़ा दायित्व पहले कभी भारतीयों पर नहीं था। पिछले २५ वर्षों से, २०वीं सदी के अन्तिम दशक से, राजनीति की जितनी प्रभावी भूमिका हो गयी है, उससे बहुत कम संस्कृति की रह गयी है। चेतना-निर्माण से चेतना-परिष्कार तक की सांस्कृतिक यात्रा अधूरी रही है और प्राय: हर चीज को राजनीति ने हाशिये पर डाल दिया है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है और आज हमें विरासत में मिली है। 'संस्कृति' शब्द किसी देश या समाज की पहचान होती है। संस्कृति से तात्पर्य है– 'सुधरी हुई स्थिति या उत्तम स्थिति।' मनुष्य अपनी बुद्धि के प्रयोग से सदैव उन्नति करता आया है। उसने सभी क्षेत्रों में उत्तरोत्तर उन्नति की है। व्यक्ति, समुदाय, समाज और राष्ट्र के निर्माण-विकास में संस्कृति की विशेष भूमिका रही है। संस्कृति हमारे सामाजिक जीवन को सदैव प्रभावित करती है। दुर्भाग्य यह रहा है कि हमने राजनीति को सबकुछ मान लिया, जबकि राजनीति 'केवल पथ की साधना' और संस्कृति 'उस पथ का साध्य' है। संस्कृति 'जीवन के वृक्ष का सम्वर्धन करने वाला रस' है। संस्कृति का संचार और भाषा से गहरा सम्बन्ध है। भारतीय समाज का एक बड़ा हिस्सा भाषा-चिन्तन से विमुख है। हिन्दी समाज को कई रूपों में, जिसमें भाषा प्रमुख है, विभाजित करने की अंग्रेजों ने कोशिश की। वह अभी तक जारी है। भाषा विकृत हुई है। भाषा न सिर्फ ज्ञान की सम्वाहक है, बल्कि देश की उन्नति एवं प्रगति का द्योतक भी है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें, तो भारतवर्ष के धर्म, दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा आदि विषयों की भाषा संस्कृत ही है। वैश्वीकरण के इस दौर में बाजार ने ही इस कालखण्ड को बनाया, सजाया-सँवारा और जरूरत पड़ने पर उजाड़ा भी। भाषा का वैविध्य भी बाजार को अपनी राह का रोड़ा लगने लगा। बाजार के लिए भाषा सिर्फ एक संचार का माध्यम थी। भाषा के संक्षिप्तीकरण और सूचनापरकता के नाम पर उसमें से अलंकार, कहावत, मुहावरा और अनेकार्थकता को धीरे-धीरे समाप्त करने का प्रयत्न हो रहा है, क्योंकि बाजार केवल अपने उत्पाद से ही जुड़े अर्थ को सम्पोषित करना चाहता है। किन्तु आज वैश्विक उदारवाद के दौर में सारा विश्व यह स्वीकार कर चुका है कि संस्कृत को धर्म विशेष या राजनीतिक विचारधारा से जोड़ना मूर्खता है। इसे इसकी समृद्ध विरासत के लिए स्वीकार करना चाहिए। भारत देश में संस्कृत भाषा में ही इसकी संस्कृति सन्निहित है। अपनी प्राचीन संस्कृति, समृद्ध परम्परा और अथाह वाङ्मय से युक्त संस्कृत भाषा के समवेत रूप में ही भारत विश्वगुरु था।

संस्कृति और संस्कृत भाषा के संरक्षण में संचार-माध्यमों का सबसे अधिक योगदान है। भारतीय संस्कृति की मुकम्मल छवि प्रस्तुत करने वाले कई धारावाहिक आज भी दूरदर्शन पर दिखाये जा रहे हैं। आकाशवाणी ने भारतीय कला और संस्कृति का सतत् प्रचार किया और श्रोताओं को सांस्कृतिक रूप से सचेत किया। मुद्रित माध्यमों ने तो भारत-बोध के लिए हमेशा से रचनात्मक संघर्ष किया है। सूचना-क्रान्ति और संचार-माध्यमों के प्रचार-प्रसार ने सम्पूर्ण विश्व को बहुत छोटा बना दिया है, साथ ही; एक-दूसरे पर हमारी निर्भरता बढ़ गयी है। वर्तमान परिवेश में संस्कृति, भाषा और संचार पर विचार करने के लिए राज्य की सीमाएँ अप्रासंगिक हो गयी हैं। संचार-भाषा मनुष्य की साझा सांस्कृतिक धरोहर का अंग है। देश और समुदाय की सम्मृद्धि के लिए संस्कृति, संचार और संस्कृत भाषा की अहम् भूमिका है। हमारा जो कुछ श्रेष्ठ है, उत्तम है, रक्षणीय है– वह इन्हीं तीन तत्त्वों में संचित है। भारतीय संस्कृति में विषमताओं के मध्य सारभूत मौलिक एकात्मकता के दर्शन होते हैं। आज भी हमारी संस्कृति विश्व में अपनी महत्ता को बनाए हुए है। इसकी जीवन्तता वर्तमान में भी चरितार्थ है और यही गौरवमयी संस्कृति हम भारतीयों को सनातन काल से गौरवान्वित कर रही है। ऐसे समय में, संचार-सूचनाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। संचार-माध्यम राष्ट्रीय विरासत और संस्कृति के प्रति जनता को सम्वेदनशील बनाने वाले उपकरण रहे हैं। पारम्परिक और आधुनिक संचार-माध्यमों ने जनता में देश की कलात्मक और सांस्कृतिक विरासत के प्रति समझ पैदा की है। इस प्रकार, जनमाध्यमों ने हमारी सांस्कृतिक अभिरुचियों को विकसित किया है।

संचार-माध्यम सामाजीकरण का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। सामाजीकरण की सभी स्थितियों में संचार-माध्यम की अपनी भूमिका होती है। मानव सामाजिक प्राणी तब बनता है, जब वह मौखिक, परम्परागत, मुद्रित या इलेक्ट्रॉनिक संचार-माध्यमों द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहारों को सीखता है और उसे अपना लेता है। संचार-माध्यम परम्परागत मान्यताओं को पुष्ट कर सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों पर पैनी दृष्टि रखते हैं। संचार-माध्यम मनोरंजन और विकास का सन्देश देकर संस्कृति के निर्माण में सहायक होते हैं। संचार-माध्यमों का बाहुल्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान को तीव्र करता है, जो सांस्कृतिक विकास का सूत्रधार है।

संचार और संस्कृति में एक अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है। संचार या जनसंचार विचारों, सूचनाओं, उत्प्रेरक संकेतों के आदान-प्रदान से ही हमारे समग्र जीवन-मूल्यों और संस्कृति की संरचना होती है। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ शिक्षित और सुसंस्कृत जनसमुदाय ने संचार-कला के आधार पर, समय की माँग को ध्यान में रखते हुए, अपने सन्देश को दूसरों तक पहुँचाने के अनेक साधनों एवं माध्यमों को विकसित कर लिया है। प्राचीनकाल से ही संचार संस्कृतियों के विकास और विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। किन्तु औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप; जिस तरह संचार का विकास हुआ, वह अवश्य हमारी सांस्कृतिक पहचान और मूल्य- व्यवस्था के लिए चुनौतीपूर्ण है। वर्तमान समय भूमण्डलीकरण का है। इसकी प्रक्रिया में नित नयी प्रेरणाएँ, परिकल्पनाएँ और विचारधाराएँ देश, समाज और मनुष्य को आन्दोलित करती हैं। विश्व मानचित्र पर उभरे उच्च प्रौद्योगिकी स्रोत ने 'विश्वग्राम' की संकल्पना को साकार रूप दिया है। मार्शल मैक्लूहान की विश्वग्राम की परिकल्पना वर्तमान तकनीक और संचार-क्रान्ति के फलस्वरूप 'ग्लोबल विलेज' यानी 'विश्वग्राम' के रूप में हमारे सामने है। यद्यपि भारत में हमारे चिंतकों ने पहले ही ऋग्वेद में सर्वप्रथम 'विश्व पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्' का उद्घोष किया था। इसी प्रकार, महात्मा गाँधी ने भी विश्वग्राम का स्वप्न देखा था। ग्राम स्वराज के विषय में बात करते हुए गाँधी जी स्पष्ट कहते हैं कि– ''मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों ओर दीवारों से घिरा रहे, न मैं अपनी खिड़कियों को कसकर बन्द रखना चाहता हूँ। मैं तो सभी देश की संस्कृति का संचार अपने घर में बेरोकटोक चाहता हूँ। पर ऐसी संस्कृति के किसी झोंके से मेरे पाँव उखड़ जाएँ, यह मुझे कत्तई मंजूर नहीं।''

संचार एक जटिल सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें संस्कृति एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सांस्कृतिक विभिन्नताएँ संचार की प्रक्रिया को गति प्रदान करती हैं। संस्कृति और संचार– दोनों की विषयवस्तु मनुष्य है। संचार के प्रचलित माध्यम मानव-सभ्यता एवं संस्कृति के विकास-क्रम को दर्शाते हैं। संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसका संचारित होना है। संस्कृति सीखी जाती है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसका हस्तान्तरण होता रहता है। यदि संचार की प्रक्रिया नहीं होती, तो संस्कृति सुनिश्चित नहीं करती, अपितु संस्कृति एवं संचार की अन्त:निर्भरता सुनिश्चित करती है। संचार किसी भी सामाजिक व्यवस्था में सांस्कृतिक तत्त्वों की प्रकृति पर आधारित है। संस्कृति का निर्माण समाज के प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा किया जाता है। व्यक्ति अपने ज्ञान-अनुभवों को एक-दूसरे से बाँटकर संस्कृति की निरन्तरता बनाए रखते हैं। एक सामाजिक समूह के लोगों के लिए उनकी संस्कृति उनकी पहचान होती है। संस्कृति में होने वाले सामयिक परिवर्तनों का ज्ञान हमें संचार-माध्यमों के द्वारा ही प्राप्त होता है। अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा करने एवं उसके प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न संचार-माध्यमों की आवश्यकता होती है। संस्कृति और संचार एक-दूसरे के पूरक हैं और मानवीय विकास के साधन हैं। यह संचार-माध्यम ही है, जिसने संस्कृति

एवं कला के विविध आयामों को सबके लिए उपलब्ध करा दिया। वहीं दूसरी ओर; इसने विकृत और मानव-विरोधी सांस्कृतिक रूपों को घर-घर तक विस्तारित कर दिया है। आजादी की प्राप्ति तक प्रेसखानों का मूल उद्देश्य जहाँ आजादी प्राप्त करना था, वहीं भारतीय संस्कृति के तत्त्वों को प्रचारित और प्रसारित करना भी था, क्योंकि संस्कृति के तमाम तत्त्वों में संचार-माध्यम एक तत्त्व माना जा सकता है। प्रो. जवरीमल पारख के अनुसार– ''जनसंचार-माध्यम मानव-भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति यथार्थ के निर्माण और पुन:निर्माण, सूचना, शिक्षा और मनोरंजन प्रदान करने वाले उत्पादों के निर्माण और सम्प्रेषण का तकनीकी माध्यम ही नहीं है, बल्कि स्वयं में एक सांस्कृतिक उत्पाद है और इस रूप में जनमाध्यमों को संस्कृति का अंग ही माना गया है।''

संचार प्रौद्योगिकी के अधिकाधिक प्रयोग के कारण मानव-जीवन की विभिन्न गतिविधियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये हैं। सूचना-क्रान्ति ने भारतीय समाज के सूचना-प्रवाह को दूषित-प्रदूषित कर दिया है। यहाँ यह भेद करना कठिन हो गया है कि संचार-माध्यमों में कौन-सी सूचना निर्माण करती है और कौन-सी विघटन। संचार-माध्यमों का नया रूप देखने को मिल रहा है, जो मिशन से कमीशन की ओर अग्रसर है, जिसमें संस्कृति दूर छूट चुकी है। मौजूदा सूचना की राह से संस्कृति में मिलावट का उपक्रम नजर आने लगा है। यह संचार-क्रान्ति मानव-समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, संस्कृति, सामाजिक रिश्ते, पारिवारिक रिश्ते और मानव के वाह्य जगत पर तो प्रभाव डाल ही रही है, साथ ही; असंतुलन भी पैदा कर रही है। आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करना वर्तमान पीढ़ी की विशेषता बन गयी है। आज का आभिजात्य वर्ग इसे 'नव-संस्कृति' के नाम से अपनाता जा रहा है। नव-संस्कृति के संचरण में आधुनिक जनमाध्यमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। 'नव-संस्कृति' का तात्पर्य संस्कृति की नवीनता से है। मानव का स्वभाव रहा है कि वह समयानुकूल परिवर्तनों को अपनी सुविधानुसार आत्मसात् करता है, जहाँ वह स्वयं नहीं जानता कि वह अपने आने वाली पीढ़ी को जड़ से विमुख करने के षड्यंत्र का हिस्सा बन चुका है। भारतीय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की परिकल्पना खतरे में है और वैश्वीकरण का धंधा जोरों पर है, जिसमें भारतीय संचार-माध्यम बहत बड़ी भूमिका में है। यह संकट बहुत गहरा है, जिसे समझना बहुत आवश्यक है। भारतीय जनसंचार माध्यम एफडीआई और सम्पादकीय नीति के नाम पर जो कर रहे हैं, वो उसकी विश्वसनीयता के लिए भी घातक साबित हो रहा है। सभी जनसंचार माध्यम लगभग विघटनकारी सूचना प्रदान कर रहे हैं। निर्माण की बात करना केवल सरकार या कुछ संगठनों का कार्य है, जबकि संचार-माध्यम वह सेतु है, जो नीति-निर्माताओं और नीति-प्रयोक्ताओं के मध्य अहम कड़ी है। ऐसा माना जाता है कि देश पर आधिपत्य या कब्जा करना हो, तो वहाँ की संस्कृति को विकृत करने का कार्य करो, जो यूरोप और अमेरिका-केन्द्रित नव-साम्राज्यवाद ने संगठित रूप में किया है, जिसमें संचार-माध्यम उपक्रम के रूप में प्रयुक्त हुआ है। भारतीय जनमाध्यम अब घटना-प्रधान हो गया है, समस्या-प्रधान नहीं है। कोई घटना घटती है, तो मीडिया उस घटना को 'तिल का ताड़' बनाकर प्रस्तुत करता है और समस्या की अथवा मुद्दों की बात तक नहीं करता, जो उसके दोहरे चरित्र की ओर इशारा करता है। रही सही कसर अनियन्त्रित बेलगाम घोड़े 'सोशल मीडिया' ने पूरी कर दी। अब सोशल मीडिया यह निर्धारित करने लगा है कि मुख्य धारा का मीडिया क्या दिखाएगा, छापेगा या प्रसारित करेगा? यही है वायरल मीडिया, जो वायरस फैला रहा है।

संस्कृति के दोहन और विघटन से व्यक्ति खुद में खुश है। खुद सेल्फी ले रहा है और इंतजार कर रहा है कि लाइक और कमेण्ट मिले। यह हमारी संस्कृति– 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भाव को अकेला और बिल्कुल अकेला करने का खतरनाक षड्यंत्र है। इसे बचाने के लिए प्रयास करना

आवश्यक है। हालाँकि यह प्रयास कोई मीडिया युगल करेगा नहीं, बावजूद इसके; आशाएँ हैं, संस्कृति के संरक्षण की। यहाँ ये सात सूत्र संस्कृति के वजूद को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान निभा सकते हैं– पहला; परम्पराओं को जानने की और युवाओं तक पहुँचाने की, दूसरा; भाषा और विचारों को आत्मसात् करने की, तीसरी; परम्परागत नृत्य, संगीत, व्यंजनों को अगली पीढ़ी को सौंपने की, चौथा; संस्कृति और तकनीक को एक दूसरे से बाँटने की, पाँचवाँ; समुदाय एवं समाज के अन्य सदस्यों के साथ समय बिताने की, छठाँ; सामाजिक एवं राष्ट्रीय महत्त्व के उत्सवों के प्रबंधन की एवं सातवाँ; सहभागिता की। यह तभी सम्भव है, जब संचार-साधनों का प्रयोग संस्कृति-सम्बद्ध होगा। संस्कृति ही हमें संस्कार देती है और संस्कार ही हम सभी को वाणी अर्थात् भाषा रूपी सम्वेदना में प्रवाहित करती है। यह प्रवाह मानवीय समाज में एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी में निरन्तरता के साथ स्थानान्तरित होती रहती है। यही संचार मानवीय समाज की संस्कृति है। संस्कृति समाज का आवरण ही संस्कार है और संस्कार की पहचान ही भाषा है। भाषा संचार की आत्मा है। आत्मीय सम्वेदना ही मानवीय सभ्यता का लक्ष्य है। यही परम्परा ही भारतीयता को प्राचीनता से नवीनता के शृंगार से अभीभूत करती आ रही है।

सन्दर्भ-सूची

१. http://kavitakosh.org/kk ceQ_DeefKeue_efkeMJe_keâe_ieg™_ceneve_/_Dešue _efyenejer_keepehesÙeer
२. https://hi.wikipedia.org/wiki/DeeÙe&Yeš
३. लालकृष्ण आडवाणी– मेरा देश मेरा जीवन, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, पेज नं. ६४३
४. http://literature.awgp.org/book/Bhartiya_Sanskriti_ka_Swarup/v1.41
५. https://en.wikipedia.org/wiki/Sanskrit
६. https://culturalsamvaad.com/thought/peveveer-pevceYetefceMÛe-mkeie&/
७. https://www.indiatoday.in/india/story/pm-narendra-modi-on-coronavirus-read-prime-minister-full-speech-on-covid-19-outbreak-1657677-2020-03-20
८. https://www.hindilibraryindia.com/religion/YeejleerÙe-mebmkeâej-Skeb-Gvekeâe-ce/3417
९. विश्वनाथ मुखर्जी– बना रहे बनारस, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पेज नं. ४३
१०. अवधेश प्रधान– सम्पादक– महामना के विचार : एक चयन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, पेज नं. ७६
११. लालकृष्ण आडवाणी– मेरा देश मेरा जीवन, पेज नं. ५४५
१२. अवधेश प्रधान– सम्पादक– महामना के विचार; एक चयन, पेज नं. ८९
१३. राम आहूजा– भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, पेज नं. २२५
१४. https://timesofindia.indiatimes.com/city/mumbai/nasa-believes-sanskrit-is-scientific-language-for-programming-hrd-min/articleshow/70622836.cms
१५. https://hindi.opindia.com/miscellaneous/indology/sanskrit-is-oldest-and-most-scientific-language-in-the-world/
१६. प्रो. ओम प्रकाश सिंह– संचार के मूल सिद्धांत, क्लासिकल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पेज नं.२२५
१७. आर. के. प्रभु– संग्राहक– मेरे सपनों का भारत, मुद्रक और प्रकाशक– विवेक जितेन्द्रभाई देसाई, नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद-३८००१४, पेज न. १२९
१८. https://hi.wikipedia.org/wiki/ संस्कृति
१९. https://culturalsamvaad.com/thought/जननी-जन्मभूमिश्च-स्वर्ग/

●

उत्तराखण्डी संस्कृति और गंगा

प्रो. मंजुला राणा*

पुण्यदायिनी नदियाँ भारतीय संस्कृति की प्राणवाहिनी हैं। स्वर्ग और पृथ्वी के बीच एक संधि-रेखा को हमारे ऋषियों ने वैदिक संस्कृति से लेकर लौकिक संस्कृति तक सँजोकर रखा है, जिसका लोकपक्ष आज जनमानस के संस्कारों का अंग है। 'गां पृथ्वी गच्छतीति गंगा' एवं 'गं अव्ययं मयतीति गंगा' अर्थात् जो स्वर्ग से सीधे पृथ्वी पर आए, वह गंगा है तथा जो स्वर्ग की ओर ले जाए, वह गंगा है। हमारे मनीषियों ने इसे सतयुग में मोक्ष, त्रेतायुग में ध्यान और तप, द्वापरयुग में तप और कलयुग में मोक्षप्रदायिनी माना है। स्कंदपुराण में वर्णित इस माहात्म्य को वर्णित करते हुए भगवान् शिव के मुख से प्रसरित है कि– ''मैं इस जगद्धात्री परमब्रह्म स्वरूपिणी गंगा को संसार की रक्षा निमित्त अपनी लीला से धारण करता हूँ। त्रैलोक्य में जितने तीर्थ तथा पुण्यक्षेत्र हैं, सर्वत्र जो धर्म है, दक्षिणा से युक्त जितने यज्ञ हैं, समस्त देव, पुरुषार्थ आदि सभी शक्तियाँ गंगा में सूक्ष्म रूप से विराजमान हैं।

ब्रह्मपुराण में ब्रह्मा जी ने कमण्डल में संचित भगवान् आशुतोष द्वारा प्रदत्त पवित्र जल अर्घ्य के रूप में अर्पित किया। यही जल सुमेरु पर्वत पर निरन्तर टपकता रहा तथा घनीभूत तुषार रूप में परिवर्तित होकर, वाष्प बनकर सूर्यलोक में पहुँच गया। गंगा की यही तीन धाराएँ– ऊर्ध्वगामी, मृत्युलोकगामी तथा पाताल-प्रवेशिनी धारा के रूप में विख्यात् हुईं। पद्मपुराण में गंगा को सर्वोत्तम मानते हुए कहा गया है कि विष्णु देवताओं में सर्वोपरि हैं, जैसे अश्वमेध-यज्ञ यज्ञों में तथा पीपल वृक्षों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार नदियों में गंगा सर्वश्रेष्ठ है–

''देवानां प्रवरो विष्णुर्यज्ञानां अश्वमेधकः,
अश्वत्थः सर्ववृक्षानां नदी भागीरथी सदा।''[१]

पण्डितराज जगन्नाथ ने 'गंगालहरी' में तो पृथ्वी के सौभाग्य का कारक गंगा की अनुकम्पा को माना है। स्कंदपुराण में लोक और परलोक की प्राप्ति का मार्ग गंगा के अवगाहन से ही माना जाता है। पौराणिक आख्यानों में गंगा को जीवन्त नारी-छवि के रूप में वर्णित किया गया है। स्कंदपुराण इसे समस्त प्राणियों में श्रेष्ठतम मानता है–

''गंगा हि सूर्वभूतानामिहामुत्र फलप्रदा,
भावानुरूपतो विष्णो सदा सर्वजगद्धिता।''[२]

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ऊर्जावान करने वाली गंगा की तरंगों ने कवियों, कलाकारों, वैज्ञानिकों तथा जन-जन को जीने का कारण दिया है। सभी ने अपने-अपने आईने में इसके सौन्दर्य का आस्वादन किया है।

उत्तराखण्ड प्रदेश का यह सौभाग्य है कि इसे हिमालयी प्रदेश होने का गौरव प्राप्त है। इसे गंगा का मायका भी कहा जाता है, क्योंकि इसी प्रदेश में अनेक हिमानियों (ग्लेशियर) से निकलकर सदानीरा नदियों का उद्गम हुआ है। यहाँ प्रदेशवासियों के लिए गंगा माँ है। हमने इसकी शान्त, निश्छल, सहिष्णु गति से जीवन का पाठ सीखा है। बिना किसी स्वार्थ के अविरल गति से प्रवाहित होकर जन-जन की प्यास बुझाना, धरती को उपजाऊ रखकर रससिक्त रखना,

* संकायाध्यक्ष : कला, संचार एवं भाषा संकाय, हे. नं. ब. गढ़वाल (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड

यहाँ नदियों की विशेषता मानी जाती है। यह गुण न केवल इस प्रदेश का है, वरन् हमारी भारतीय संस्कृति, सम्पूर्ण ज्ञान-परम्परा तथा भारतीय वाङ्मय में हमारे ऋषि-मुनियों ने नदियों को अधिष्ठात्री के रूप में स्वीकार किया है। वैदिक काल के प्रत्येक ऋषि ने अपनी ऋचाओं में ब्रह्माण्ड की संरचना तथा संचालन में प्रकृति के महत्त्वपूर्ण उपादान के रूप में नदियों की आराधना की है। 'जल ही जीवन है'– ऐसा उद्घोष करके हमने प्रकृति से पर्यावरण को जोड़कर इसके महत्त्व को स्वीकार किया है। विष्णुपदी, भागीरथी, ब्रह्मदेव आदि नामों से अलंकृत यह मात्र जल-प्रवाह नहीं है, वरन् प्रत्यक्ष ब्रह्म है।

गढ़वाल और कुमायूँ जनपद में अनेक नदियों का उद्गम है। यहाँ की संस्कृति और सभ्यता नदी संस्कृति मानी जाती है। नदियों की सहिष्णुता से परिचालित यहाँ का जनमानस पूर्णत: निश्छल और निस्वार्थ भाव से देश का एक अप्रतिम उदाहरण है।

गंगा एक नदी नहीं है, अपितु हमारे विश्वास और आस्था का प्रतीक है। वैदिक साहित्य ने पुण्यप्रसूता नदियों को बहुत आदर के साथ शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक में स्थान दिया है। तत्पश्चात् महाभारत के वन पर्व में इसका माहात्म्य इस रूप में है–

''सर्व कृतयुगे पुण्यं पुश्करं स्मृतय।
द्वापरे अपि कुरुक्षेत्रं गंगा कलियुगे स्मृता।''[३]

महाभारत में त्रिपथगामिनी, वाल्मीकि रामायण में त्रिपथगा तथा रघुवंश में त्रिस्त्रोता कहकर इसे पूज्य माना गया है।

मूलत: 'गमयति प्रापयति ज्ञापयति भगवत्पदं या शक्ति सा गंगा'[४] अर्थात् जो शक्ति स्वर्ग-प्रदायिनी, ईशदात्री है– वही गंगा है। जिससे मानव-जीवन को सद्मार्ग पर चलने की, सद्लक्ष्य को प्राप्त करने की एवं सद्जीवन के रहस्यों को जानने का ज्ञान प्राप्त हो– वही गंगा है।

भारतवर्ष में जो हिमानियाँ इन नदियों की प्रसूता हैं, उन्हें अध्यात्म से जोड़कर भारतीय मानस ने इसके अवगाहन को ही सर्वांगीण उन्नति का कारक माना है। मानवीय सभ्यता का इतिहास साक्षी है कि नदियों से न केवल हमारी संस्कृतियों ने जन्म लिया, वरन् इनसे सभ्यताओं का पोषण भी हुआ है। हमारा सम्पूर्ण सांस्कृतिक चिन्तन इन नदियों के साथ ही सम्पृक्त है।

भारतीय प्रज्ञा ने इसकी ऊर्मियों में देवत्व की खोज की है तथा इन्हें मातृवत मानते हुए वन्दनीय माना है। ऋग्वेद में आर्यों ने स्वयं को सप्तसिंधु निवासी स्वीकार किया है। इसी में कुम्भु, कुम्भा, वितस्ता, अस्किनी, पुरुषणी, शतद्रु, विपाशा, सदानीरा, दृषद्वती, गोमती, सुवास्तु, सिंधु, सरस्वती, सुरवीमा तथा मरुद्दधा आदि नामों से इन नदियों को जाना गया है। इन प्राणवती सदानीरा नदियों ने हिमालय का शृंगार किया है। ये दो रूपों में दिखाई देती हैं– सदानीरा तथा बरसाती। सदानीरा विष्णु गंगा (अलकनंदा), भागीरथी, मंदाकिनी, धौली गंगा, नंदाकिनी, पिण्डर और नयार नदी के समागम से 'गंगा नदी' निर्मित है।

नदियों का उद्गम हिमनद होते हैं, जो वर्ष भर जल-प्रपातों से आबद्ध रहते हैं। गंगा, यमुना, कावेरी, ब्रह्मपुत्र, अमेजन, नील तथा हिमालय की अलकनंदा, मंदाकिनी, नंदाकिनी, पिण्डर आदि नदियाँ अमृतवाहिनी हैं, जो बाद में अनेक स्थलों के संगमों पर मिलकर गंगा और उसकी सहायक नदियाँ बनती हैं। गंगा की धवलता में सम्पूर्ण उत्तराखण्ड और हिमालय के सौन्दर्य को पहचान मिली है। इसका वितान हिमालय से लेकर बंगाल की खाड़ी तक फैला हुआ है, जहाँ ये जन-जन की प्यास बुझाने के साथ अन्नदात्री बनकर एक विशाल भूभाग का सिंचन

भी करती है। यह भारत की मात्र प्राकृतिक सम्पदा ही नहीं, अपितु हमारी आस्था का केन्द्र है। इसकी अनेक सहायक नदियों ने इसके सौन्दर्य और शृंगार में श्रीवृद्धि की है। अनेक पौराणिक और मिथकीय अवधारणाओं का सम्बन्ध इनसे जोड़ा जाता है। गंगा नदी को शिव की जटाओं में बाँधकर रखना तथा भगीरथ प्रयास से पृथ्वी पर आने के साथ एक अन्य कथा में राजा सगर के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को लेकर ऋषि कपिल के क्रोध से भस्मीभूत राजा के साठ हजार पुत्रों के उद्धार हेतु राजा सगर के वंशधर भगीरथ द्वारा कठोर तपस्या के बल पर स्वर्ग से गंगा को पृथ्वी पर लाने के प्रयास का उल्लेख मिलता है। इसीलिए इसके नाम के उच्चारण मात्र से पापों का शमन, दर्शन से कल्याण तथा स्नान से सात पीढ़ियाँ कल्याण को प्राप्त होती हैं। राजा शांतनु का प्रेम-प्रसंग भी गंगा के वैभव से जोड़कर देखा गया है। राजा शांतनु का विवाह गंगा से हुआ था, जिनमें भीष्म प्रतीज्ञा का प्रसंग हर पल गंगा को स्मृतियों में जीवित रखता है। यह भी सत्य है कि हिमालय से निकली अलकनंदा ने भागीरथी के संगम से उत्तराखण्ड के देवप्रयाग स्थान पर इसे गंगा नाम से विभूषित किया है।

इस हिमालयी नदी 'अलकनंदा' का एक भव्य इतिहास रहा है। अपने उद्‌गम के साथ इसे अनेक सहायक नदियों ने सहचरी की भाँति सम्बल दिया है। यह गंगा की दो धाराओं में से एक है। इसका मूल स्रोत सतोपंथ और भागीरथी खरक हिमानी के समन्वय से माना जाता है। अपने मूल पथ पर यह सतोपंथ से एक कमनीय कामिनी के समान मंद प्रवाही रूप में तथा खरक हिमानी ग्लेशियर से पोषण प्राप्त कर इसे युवा रूप में देखा जा सकता है। बालाकुण्ड पर्वत इनको पृथक्-पृथक् करके आगे बढ़ाता है, जहाँ सर्वप्रथम इसका समागम कुबेर गंगा तथा वसुधारा के झरनों से होता है। इस जलप्रपात को अनेक स्थानीय किंवदंतियों में आदर दिया गया है कि इस स्थान के जल की बूँद कभी पापियों पर नहीं गिरती तथा अपने सम्मिलित स्वरूप में यह बद्रीनाथ घाटी से निकलकर हनुमानचट्टी तक पहुँचकर आगे घृत गंगा से मिलती है। इसी मार्ग पर विष्णु प्रयाग में धौली गंगा तथा हेलंग के पास यह विरही गंगा से मिलती है। यहाँ से नंदप्रयाग में अलकनंदा का मिलन गंगा की सहायक नदी नंदाकिनी से होता है तथा कर्णप्रयाग में पिण्डर उसका हाथ थाम लेती है। इसी तारतम्य में, रुद्रप्रयाग से होती हुए मंदाकिनी का आश्रय लेकर, यह एक विस्तृत भूभाग के मैदानी क्षेत्र में प्रविष्ट होकर भागीरथी के संगम स्थल देवप्रयाग में आकर बहुत विकल भाव से प्रवाहित अलकनंदा और भागीरथी का अटूट समन्वय गंगा की विशालता में दिखाई देता है। ''भूगोलविदों ने भी गंगा को मूल नदी न मानकर अलकनंदा और भागीरथी नदियों के संगम के पश्चात् ही गंगा माना है।''[५] यह भी कहा गया है कि यह समागम सास-बहू की तरह है अर्थात् अलौकिक और आध्यात्मिक स्वरूप में लोकमानस इसकी पवित्रता को स्वीकार करता है। यहीं से इसे माँ का सम्बोधन देते हैं। गंगा माँ बनकर जन-जन के कष्टों को दूर कर अपने उदात्त स्वरूप और उद्दाम वेग से हरिद्वार की ओर प्रवाहित हो जाती है। अनेक मिथकीय अवधारणाओं से देवप्रयाग में अलकनंदा और भागीरथी के संगम को देखा जाता है। अपने मायके में जिस प्रकार कन्या अपने उन्मुक्त भाव से जीवन व्यतीत करती है, वही भाव यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते अलकनंदा का रहता है। किन्तु भागीरथी का सामीप्य ससुराल में आयी नवविवाहिता की भाँति उसमें गम्भीरता और स्थिरता का विन्यास कर देता है। सम्भवत: सास-बहू की संकल्पना का पार्श्व अभिप्राय यही अवधारणा रही हो।

उत्तराखण्ड को देवभूमि का विशेषण दिलाने में इन नदियों का विशेष महत्त्व है। अनेक

ऋषि-मुनियों ने इन्हीं के तटों और हिमालय की कंदराओं में शान्ति की खोज की है। आज भी यदि हिमालयी सभ्यता और संस्कृति के ताने-बाने का विश्लेषण करें, तो गंगा की प्रधान सहायक नदियों का अद्‌भुत लौकिक और पारलौकिक योगदान है। सामाजिक और आध्यात्मिक उजास के साथ इन नदियों का वैज्ञानिक महत्त्व भी है। एक ओर इन्होंने मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बनाए रखकर वृक्षों को संजीवनी प्रदान की, तो साथ में; धरती के अवशिष्ट पदार्थों को बहाकर पृथ्वी को प्रदूषण-मुक्त भी किया। नदियों के किनारों पर विशाल बस्तियों की बसत ने पर्यटन, तीर्थ, उद्योगों को अपनी अलग क्रान्ति से विभूषित किया है। हिमालय के जनमानस की यह विशेषता है कि उनका प्रत्येक कार्य नदियों के प्रति सम्मान और पूजा से प्रारम्भ होता है। अपने पर्व और त्योहारों पर गंगा-स्नान का यहाँ विशेष महत्त्व है।

अनेक मेलों का आयोजन यहाँ की नदियों के तटों पर किया जाता है, जो न केवल दूरस्थ लोगों के लिए मिलन-केन्द्र हैं, वरन् औद्योगिक और व्यापारिक दृष्टि से भी स्वागत योग्य कदम माना जाता है। हिमालय के प्रत्येक गीत में गंगा है। यहाँ की लोक-संस्कृति में इसका मानवीकरण विशेष आकर्षण का केन्द्र रहता है। अनेक प्रवासी रचनाकारों ने भी इसके सौन्दर्य के उपमानों को अपनी रचनाधर्मिता का विषय बनाया है। हमारे प्रसिद्ध लोकगीतों में तो इसका अद्‌भुत वर्णन मंत्रमुग्ध कर देता है। हरिद्वार और ऋषिकेश के साथ चारों धामों की पवित्रता गंगा से जुड़ी हुई है। यही नहीं, गोमुख और गंगोत्री धाम ने तो उत्तराखण्ड को विश्व पटल पर गौरवान्वित किया है।

यह देवभूमि के जन-जन का सौभाग्य है कि हम गंगा के मायके (माँ का घर) से सम्बन्ध रखते हैं तथा जिस प्रकार एक स्त्री अपनी माँ के प्रत्येक रूप-स्वरूप से प्रेम करती है, उसी प्रकार हिमालयवासी गंगा की आत्मा से जुड़े हुए हैं। यह एक नदी नहीं, वरन् हमारी पुण्य-प्रसूता माँ है, जिसकी गोद में हमारा जीवन है। यहाँ के जनमानस ने गंगा से धैर्य और शांत भाव से जीवन व्यतीत करना सीखा है। लोककल्याण और सहिष्णुता यहाँ की निजी विशेषता है, जिसने इस प्रांत को गंगा-सी पवित्रता और हिमालय-सा अटल विश्वास दिया है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. पद्मपुराण– ४२:४२
२. स्कंदपुराण– २७:२३
३. वनपर्व– ८४/९०१
४. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश– शिवराम वामन आप्टे, पृष्ठ ३२८
५. जियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट– गैन्जेज, १९२०, पृष्ठ २०७

●

कबीर और गाँधी के विचार
आज के युग की प्रासंगिकता

डॉ. मनीषा आर. जोगिया*

सारांश– भारतभूमि सदैव से सन्तभूमि, योगभूमि रही है। अनेक सन्त-महात्माओं ने मानवता की रक्षा के लिए नयी राह दिखायी। जिस तरह १४वीं शती में पूज्य कबीर जी ने मानवता और समरसता का मार्ग हमें दिखाया, उसी मशाल को २०वीं शती में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी लेकर आगे बढ़े। जो कार्य कबीर ने सर्वहारा, पीड़ित, दु;खी लोगों के लिए तथा मानवता की सेवा के लिए किया, वही राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने किया। संसार को विश्वशान्ति के लिए दोनों के विचारों की आवश्यकता है।

भूमिका : कबीर और गाँधी ने मानव-समाज के हर क्षेत्र पर, जैसे– सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक या नैतिक क्षेत्र– सभी पक्षों पर अपने विचार प्रकट किए। कबीर और गाँधी– दोनों ही कालजयी हैं। वे जितने प्रासंगिक अपने काल में थे, उससे कहीं ज्यादा आज प्रासंगिक हैं। निर्गुण सन्त परम्परा में कबीर सबसे प्रतिभावान, उदार, मानवता का स्वर बुलन्द करने वाले, यशस्वी, प्रतिभावान और जाज्वल्यमान हिन्दी के प्रथम कवि थे। आचार्य क्षितिमोहन सेन का मानना है कि– ''सन्तों की जीवंत वाणी जलती हुई मशाल है और यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि ये बानियाँ यथासमय भारतवर्ष की और संसार की समस्याओं को सुलझायेगी। उसके व्यक्तित्त्व के दो प्रधान पक्ष हैं– प्रथम; धर्मसुधारक उपदेशक का, द्वितीय; शुद्ध भक्त का। दोनों की प्राणमयी वाणी को पुन:-पुन: मनन करने की आवश्यकता पड़ती रहती है।''

१४वीं शती के अंधकार युग में कबीर साहब मशालची बनकर आए। इसी परिवेश ने कबीर को युगपुरुष बना दिया। वे अपने युग के ध्रुवतारक थे। पूज्य बापू (महात्मा जी) के बारे में कुछ भी कहना सूरज को रोशनी दिखाने के बराबर है। गाँधी जी के आध्यात्मिक गुरु श्रीमद राजचन्द्र थे, जिनकी विचारधारा का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। हिमालय की तरह पवित्र, अडिग गाँधी विचारधारा ने जगत को सत्य और अहिंसा का मार्ग दिखलाया। कबीर और गाँधी (दोनों) ने अपने ईश्वर को 'राम' कहा। दोनों के लिए प्रेरणा का दूसरा सामान्य स्त्रोत उनकी स्वाभाविक मानवता थी। दोनों ने समाज के प्रत्यक्ष पक्ष पर चिन्तन किया और लोकहित को दृष्टि में रखते हुए, समाज के जातिगत एवं वर्गगत वैषम्य का अंत करके, उन्होंने एक मानवधर्म की प्रतिस्थापना का प्रयास किया। दोनों ने हिन्दू समाज में फैली हुई अस्पृश्यता का अंत करने का सराहनीय प्रयत्न किया और समानता का स्वर घोषित किया। आचरण की शुद्धि पर बल दिया और प्राणीमात्र के प्रति भावना दिखाई। दोनों के व्यक्तित्त्व में और जीवन-दर्शन में कई समानताएँ हैं। ये दोनों धर्म और जाति आधारित भेदभाव से ऊपर उठकर मानव-एकता के दूत थे। गाँधीवाद के बुनियादी तत्त्वों में से 'सत्य' सर्वोपरि है। वे मानते थे कि सत्य ही किसी भी राजनैतिक संस्था या सामाजिक संस्थान इत्यादि की धुरी होनी चाहिए। वे अपने किसी भी राजनैतिक निर्णय को लेने से पहले सच्चाई के सिद्धान्तों का पालन अवश्य करते थे। सत्य, अहिंसा, मानवीय

* असि. प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, सरकारी विनयन, वाणिज्य एवं विज्ञान कॉलेज, नवसारी, गुजरात

स्वतन्त्रता, समानता एवं न्याय पर उनकी निष्ठा को उनकी निजी जिन्दगी के उदाहरणों से बखूबी समझा जा सकता है। वह ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से स्वतन्त्रता के लिए भारत के संघर्ष में एक प्रमुख नेता थे। हालाँकि, गाँधी की विरासत राजनीतिक सक्रियता से कहीं आगे तक फैली हुई है। उनकी शिक्षाओं में अहिंसा, वास्तविकता, आत्मनिर्भरता और न्याय की खोज की अवधारणाएँ शामिल हैं। गाँधी जी की माता कबीरपंथी थीं। गाँधी जी पर उनकी शिक्षा का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था। अहिंसा के मार्ग पर चलने वाला इस मानव-संसार का महानायक बन गया। उन्हें पृथ्वी पर चलने वाले सबसे महान् व्यक्तियों में से एक माना जाता है। वे धैर्य, आत्मसंयम, साहस, सत्य और श्रद्धा की प्रतिमूर्ति थे। इस युगद्रष्टा ने शाश्वतकाल से विषमताओं का खण्डन कर, शुद्ध मानवता का प्रचार किया। महात्मा जी की सबसे बड़ी विशेषता, जो उन्हें कबीर के साथ ले जाकर रखती है, वह उनकी आध्यात्मिक प्रेरणा है। वे हमेशा उन परमतत्व तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं, जिसे उन्होंने कबीर के शब्दों में अनिर्वचनीय ज्योति अथवा परम प्रकाशन कहा है। उस दुर्बल से शरीर को लोक-कल्याण में प्रवृत्त होने की अनन्त शक्ति उसी ज्योति के दर्शन से प्राप्त हुई। उन्होंने अपने समय की बुराइयों के खिलाफ आवाज उठाई और उन बुराइयों से लड़ने के लिए समाज के अन्दर चेतना के प्राण फूँके। अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण ही वे समाज के प्रकाश-स्तम्भ सिद्ध हुए। कबीरदास जी ने उन व्यवस्थाओं और मान्यताओं का प्रचण्ड विरोध किया, जो वंचित वर्गों के शोषण को वैधता प्रदान करती है। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था को उसकी अमानवीयता के कारण अपनी कटु आलोचना का विषय बनाया–

'जो तू बाम्भन बभनी का जाया,
आन बाट है क्यों नहिं आया।'

कबीर उस समय अपनी कविता में पशुओं के प्रति करुणा का भाव व्यक्त करते हुए दिखायी देते हैं, जो आज 'PETA' जैसी संस्थाएँ पशुओं के पक्ष में कार्य कर रही हैं–

'बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है, तिनका कौन हवाल।।'

राष्ट्रपिता सन्त और अहिंसा के पुजारी ने जिस पर बल दिया, उसी पर कबीर के विचार प्रस्तुत साखी के माध्यम से देख सकते हैं–

'दिन को रोजा रहतु हौ, रात हनत हौ गाय।
यह तो खून वह बंदगी, क्यों कर खुसी खोदाय।।'

कबीर भविष्यद्रष्टा सन्त हैं, तो राष्ट्रपिता महात्मा के आदर्श आज भी समग्र विश्व में सम्मानित हैं। आज पूरा विश्व साम्प्रदायिकता के अनेक रूपों से आक्रांत है। विश्व का कोई कोना ऐसा नहीं है, जहाँ इस आतंकवाद का साम्राज्य न फैला हो। ऐसी परिस्थिति में; विश्व को कबीर और गाँधी के विचारों की आवश्यकता है।

कबीर और गाँधी आजीवन साम्प्रदायिक सौहार्द्र के लिए संघर्ष करते रहे। हिन्दू-मुस्लिम एकता को मजबूती प्रदान करते रहे। मानव जाति के हृदय में प्रेम का वास हो, भाई-चारे का सम्बन्ध हो, हिंसा त्यागकर मानव-समाज अहिंसा के पथ पर चले– इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कबीर और गाँधी ने अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया। आने वाली पीढ़ियों के लिए ये दोनों मशालची मशाल प्रज्ज्वलित रखने के लिए प्रेरणा देकर गए। गाँधी जी कबीर के इस दोहे को हमेशा दोहराते थे–

'कबीरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुंह धरें, सो पैठें घर माहिं।।'

कबीर कभी भी एक पंथ या विचारधारा को लेकर नहीं चले। कबीर का व्यक्तित्व आत्मविश्वास से परिपूर्ण था। वे समाज-सुधारक भी हैं, कवि भी हैं, दार्शनिक भी हैं, भक्त भी हैं और सन्त भी हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर का व्यक्तित्त्व बहुआयामी है। वे अपने युग में शास्त्रवाद का विरोध करते हुए दिखाई देते हैं और तर्कवाद पर बल देते हैं। कबीर कहते हैं–

'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।'

कबीर और गाँधी– दोनों ने अपने ईश्वर को 'राम' कहा– निराकार राम की उपासना पर बल दिया। दोनों का आविर्भाव अलग-अलग समय में होते हुए भी दोनों ने अपने-अपने समय में समाज-सुधार का कार्य किया। कबीर का जीवन गाँधीवादी था और गाँधी का जीवन और कर्म कबीरीय था। 'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जो पीर परायी जाणे रे'– दूसरों की पीड़ा को दूर करने का आजीवन प्रयत्न किया। दोनों कर्मयोगी, क्रान्तिकारी, समाज-सुधारक, युगचेता, युग-प्रवर्तक, आत्मज्ञानी थे। भारत के सन्त थे। भारत हमेशा उनका ऋणी रहेगा।

१४वीं शती के इस सन्त ने उत्तर भारत और मध्य भारत के भक्ति आन्दोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। वे भारतीय रहस्यवादी सन्त और कवि थे। वे इकलौते ऐसे कवि हैं, जो आजीवन समाज और लोगों के बीच व्याप्त आडम्बर पर कुठराघात करते रहे। बहुआयामी प्रतिभा के धनी कबीरदास के व्यक्तित्व और उनकी वाणियों में अभिव्यक्त उनकी विचारधारा के अधिकांश आलोचकों ने उन्हें सन्त, युग-प्रवर्तक, विद्रोही, आत्मज्ञानी आदि विशेषणों से विभूषित किया है। कबीर और महात्मा गाँधी के विचारों में धर्म और जाति के आधार पर भेदभाव का विरोध और एकता के प्रति समर्पण जैसी कई समानताएँ हैं। दोनों ने अपने धार्मिक विश्वासों से प्रेरणा ली और मानव-समाज के हर क्षेत्र में अपने विचार रखे।

महात्मा गाँधी आधुनिक काल की एक अविस्मरणीय विभूति हैं। प्रमुख रूप से वे भारतीय जनता के समक्ष एक महान् राजनीतिक नेता के रूप में आए, परन्तु उनका सामज-सुधारक रूप विशेष उल्लेखनीय सिद्ध हुआ। धर्म, अध्यात्म, दर्शन तथा समाज के प्रत्येक पक्ष पर गाँधी जी ने चिन्तन किया और लोकहित को दृष्टि में रखते हुए धार्मिक मत-मतान्तर तथा समाज के जातिगत एवं वर्गगत वैषम्य का अन्त करके उन्होंने एक मानव-धर्म की प्रतिस्थापना का प्रयास किया। समाज और धर्म-सुधार के क्षेत्र में गाँधी आधुनिक युग में कबीर के प्रतिरूप दृष्टिगत होते हैं। अपने समय में जिस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य और ब्राह्मण-शूद्र की समानता का स्वर लेकर कबीर आविर्भूत हुए थे, आधुनिक युग में गाँधी ने पुन: उसी स्वर में उद्घोषणा की। गाँधी का कार्य कबीर जैसा ही था।

कबीर के दर्शन, धर्म व समाज सम्बन्धी सिद्धान्तों को गाँधी जी ने व्यावहारिक रूप दिया। एक अंग्रेजी लेखक ने उन पर गीता, टॉलस्टाय और रस्किन का प्रभाव स्वीकार करते हुए यह निर्णय दिया है कि उनके असली पूर्व रूप कबीर थे। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के महान् प्रयास से लेकर चरखा चलाते समय तक कबीर उनकी स्मृति में रहे हैं। उनकी आध्यात्मिक साधना, निर्गुणोपासना, राम नाम, सत्यान्वेषण और आग्रह, अहिंसा, अन्त:करण-शुद्धि, आचरण-

प्रवणता, सर्व धर्म समन्वय, अछूतोद्धार और संक्षेप में; मानवतावादी भावना– सभी के मूल स्रोत कबीर हैं। आज से ५०० वर्ष पहले सत्य के योद्धा के जीवन में संघर्षमयता पर कबीर ने जो प्रकाश डाला था, वह मानो गाँधी में आकर प्रतिफलित हुआ है।

गाँधी मूलत: एक आध्यात्मिक साधक थे। ईश्वर के अस्तित्व में अनन्त विश्वास रखते हुए वे राम की ओर अग्रसर हुए। रामायण के श्रवण और पारिवारिक दाई रम्भा द्वारा उन्हें राम-नाम का सन्देश प्राप्त हुआ। किन्तु कबीर के समान ही उनका राम 'दाशरथी राम' न होकर सर्वव्यापी था। आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में गाँधी जी ने भी कबीर का ही मार्ग अपनाया। एक ओर ज्ञान व विवेक की जागृति द्वारा अन्त:करण शुद्धि पर बल दिया और दूसरी ओर; आचरण-प्रवणता, प्रेम, दया, सहानुभूति, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों के परित्याग और अनासक्ति को आवश्यक माना। साधक का वास्तविक युद्ध तो अन्त:शत्रुओं से होता है। काम, क्रोधादि पर विजय प्राप्त करके ही साधना की ओर प्रवृत्त हुआ जा सकता है। साधना के सहायक हमारे मित्र हैं– अन्तर्दृष्टि, आत्मसंयम, सत्य और शान्ति। इन्हें पाने के लिए सर्वप्रथम विवेक की जागृति आवश्यक है, क्योंकि विवेक के जाग जाने पर सब भावनाएँ उसका अनुगमन करती हैं। विवेक को जगाने का अर्थ है– बुद्धि को जगाना, अच्छे और बुरे का अन्तर करना, आत्मा की आवाज को सुनना और समझना। समस्त कर्मों की सफलता का रहस्य आत्मशुद्धि है। अपनी 'आत्म कथा' के अन्त में वे लिखते हैं– ''आत्मशुद्धि के बिना जीव मात्र के प्रति एकता नहीं सम्भव हो सकती। आत्मशुद्धि के बिना अहिंसा धर्म का पालन सर्वथा असम्भव है। अशुद्धात्मा परमात्मा का दर्शन करने में असमर्थ है। शुद्धि होने के लिए आवश्यक है– मन, वचन और काया से निर्विकार होना, राग-द्वेषादि से रहित होना।''

गाँधी जी की यह साधना सत्य के लिए थी। कबीर का जीवन यदि सत्य की खोज था, तो गाँधी का 'सत्य का प्रयोग'। सत्य ही उनका परमाराध्य था। सत्य के अतिरिक्त किसी ईश्वर की कल्पना भी वे नहीं करते। कबीर ने सत्य को एकान्तिक यौगिक साधना द्वारा भी प्राप्त किया था, किन्तु गाँधी ने समाज के अन्दर रहते हुए आत्म-साधना द्वारा ही उसे पाया था। परस्पर एकता, आत्मभाव की अनुभूति ही उनकी सत्यानुभूति थी। अहिंसा द्वारा वे इसी सत्य को पाना चाहते थे। सत्य की प्राप्ति के उपरान्त राग, द्वेषादि स्वत: नष्ट हो जाते हैं। वे लिखते हैं– ''सत्य का अनुगमन करने से क्रोध, स्वार्थ, द्वेष इत्यादि का सहज ही शमन हो जाता है।''

गाँधी जी ने सत्य को अनन्त प्रकाश के रूप में भी देखा– ''मेरी सत्य की झाँकी हजारों सूर्य के इकट्ठा होने पर भी जिस सत्य रूपी सूर्य के तेज का पूरा अनुमान नहीं हो सकता, उस सूर्य की एक किरण मात्र का दर्शन रूप ही है।'' यहाँ कबीर की 'कबीर तेज अनन्त का, उगते सूरज माहिं' नामक साखी का स्मरण स्वाभाविक है। कबीर के समान ही गाँधी ने भी समस्त धर्मों के मूल में एक ही सत्य की खोज कर सर्वधर्म-समत्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। अपने समय में कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का जो मार्ग निर्मित किया था, उसी पर चल कर गाँधी जी ने भी आधुनिक युग में हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य का प्रयास किया। कबीर के प्रयास की याद करते हुए गाँधी ने अपनी समस्त शक्ति इस कार्य में लगायी। परस्पर धार्मिक सहिष्णुता की आवश्यकता पर अधिक बल दिया। यहाँ कबीर के विचारों से उनका एक अन्तर द्रष्टव्य है। कबीर ने हिन्दू व इस्लाम– दोनों को ही अपूर्ण और पाषण्डपूर्ण बताया था, किन्तु गाँधी ने सकारात्मक पद्धति अपनायी और उन्होंने दोनों धर्मों को ही सत्य पर आधारित कहा। पाषण्डों का भी कटु तिरस्कार

नहीं किया।

निरीह पशुओं की हत्या से उनका अन्त:करण क्षुब्ध हो उठा। नगाड़ों के शोर में कटते हुए बकरों की मूक वेदना ने उन्हें विचलित कर दिया। उनका मानना था कि– ''सांई के बस जीव है, कोरी कुंजर दोय।'' गाँधी जी का एक अन्य उल्लेखनीय कार्य हिन्दू समाज में फैली हुई अस्पृश्यता का अन्त करना भी रहा है। कबीर ने शूद्र और ब्राह्मण की समता का स्वर घोषित किया था, ब्राह्मणों को फटकारा था, अछूतों से सहानुभूति दिखाई थी। नि:सन्देह उसी अपूर्ण कार्य को गाँधी जी ने क्रियात्मक रूप से पूर्ण करना चाहा। आज हिन्दू समाज और हिन्दुस्तानी इतने गिरे हुए हैं, उसमें जनेऊ पहनने का हमें अधिकार ही क्या है? हिन्दू समाज अस्पृश्यता की गन्दगी को दूर करे, ऊँच-नीच की बात भूल जाए, अपने भीतर घुसे हुए दोषों को हटाए, चारों ओर फैले हुए अधर्म, पाषण्ड को दूर करे, तब भले ही उसे जनेऊ पहनने का अधिकार हो सकता है।

गाँधी सच्चे अर्थों में मानवतावादी थे। उनका धर्म था– परोपकार-कार्य, लोक-सेवा और लक्ष्य था– आत्म बोध। प्राणीमात्र के प्रति भ्रातृ-भाव की उनमें गहन अनुभूति थी।

इन लक्षणों को गाँधी ने स्वजीवन में लागू किया। अपने जीवन के तथ्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है– ''अपकार का बदला अपकार नहीं है, बल्कि उपकार भी हो सकता है– यह बात जीवन-सूत्र बन गयी। उसने मेरे मन पर राज करना प्रारम्भ कर दिया। अपकारी का भला चाहना और करना– मैं इसका अनुरागी बन गया।'' निश्चित ही; गाँधी ने सच्चे सन्तत्व को प्राप्त किया था। कथनी और करनी के भेद को मिटाया था। शिक्षक के आचरण की शुद्धता पर बल देते हुए उन्होंने कहा– ''लंका में बैठा हुआ शिक्षक अपने आचरण से शिष्यों की आत्मा को हिला सकता है। मैं झूठ बोलता रहूँ और अपने शिष्य को सच्चा बनाने की कोशिश करूँ, तो बेकार जायेगी। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पृश्यता-निवारण, शरीर-श्रम, सर्वधर्म समभाव और स्वदेशी– उनके ११ व्रत थे।

इतना सब होते हुए भी कबीर और गाँधी की कार्य-पद्धति में एक अन्तर था कि गाँधी ने कार्य-पद्धति की सकारात्मक विधि अपनायी। फटकारने की अपेक्षा प्रेम से कार्य लिया। पापी को भी सहानुभूति दी। दोषों की अपेक्षा गुणों का विवेचन किया। साथ ही; कबीर के व्यक्तित्व में साधुपन के कारण अक्खड़ता थी। किन्तु गाँधी अपने जीवन में भी विनम्र और सुशील थे। उनमें प्रेम से बिंधने और बाँधने– दोनों की शक्ति थी। गाँधी और कबीर के व्यक्तित्व की यह भिन्नता देश-काल और परिस्थितिजन्य थी। गाँधी और कबीर में एक अन्तर यह भी रहा कि गाँधी मूलत: राजनीतिज्ञ थे और कबीर आध्यात्मिक साधक।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि देश-कालगत वैभिन्य होते हुए भी गाँधी की विचारधारा के मूल में कबीर के विचार रहे हैं। अपने व्याख्यानों व पत्रों में अनेक स्थलों पर कबीर का उल्लेख करके उन्होंने अपने ऊपर उनके प्रभाव की पुष्टि की है। कहीं प्राचीन श्रेष्ठ साहित्यकारों की गणना में उन्हें स्थान दिया है, कहीं सन्तों की श्रेणी में रखते हुए उनके कार्य की असफलता का कारण यही बताया है कि उनके स्तर तक मानव की मानवता नहीं पहुँचेगी, हिंसा बनी रहेगी। यहाँ तक कि कबीर के चरखे के लाक्षणिक और प्रतीकात्मक अर्थ को भी उन्होंने स्वीकार किया है। गाँधी पर कबीर का ऋण है। निर्गुण-निराकार राम की उपासना, संवर्ग और सर्वधर्म-समानता का सिद्धान्त, अछूतों द्वारा सदाचरण, सत्य और अहिंसा पर बल आदि

सिद्धान्तों का मूल रूप उन्होंने कबीर से प्राप्त किया था। अपने समाज-सुधार सम्बन्धी कार्यों के लिए गाँधी को कबीर से सबल पृष्ठभूमि प्राप्त हुई थी और इस रूप में; गाँधी को आधुनिक कबीर कहा जा सकता है।

ये दोनों सन्त पीयूषवर्णी मेघ के समान हैं, जो अपनी अमृतमयी रसधार से सम्पूर्ण समाज को आप्लावित कर निरन्तर उसकी कल्याण-कामना में रत रहे। कबीर और गाँधी ने दिशाहीन भ्रमित जनमानस को एक नयी राह दिखलाई। इसके लिए हम उनके सदैव ऋणी रहेंगे। जहाँ मानवता और दीन-सेवा पर सर्वस्व न्योछावर कर त्याग, सेवा, सत्य, कर्तव्य-परायणता और नि:स्वार्थ भाव से आत्मसमर्पण की बात हो, वहाँ संसार में कबीर के साथ गाँधी का नाम अवश्य जुड़ जाता है।

सन्दर्भ-सूची

१. कबीर वाणी पीयूष सम्पादक -डॉ. जयदेव सिंह, डॉ. वासुदेव सिंह
२. कबीर ग्रंथावली– बाबू श्यामसुंदर दास (वाराणसी, नागरी प्रचारणी सभा) १९२८
३. कबीर ग्रंथावली– डॉ. माता प्रसाद गुप्त
४. कबीर– डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी (१९४१)
५. हिंद स्वराज– एम. के. गाँधी
६. यंग इंडिया– एम. के. गाँधी
७. हिंदू धर्म– एम. के. गाँधी
८. महात्मा गाँधी आत्मकथा– सत्य के प्रयोग, (१९५७)
९. 'कबीर सोचि बिचारिया, दूजा कोई नाहि।
आपा पर जब चीन्हिया, तब उलटि समाना माहि।।'

(कबीर ग्रंथावली : सम्पादक : श्यामसुन्दर दास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ ९१, संस्करण २००९)

●

महात्मा गाँधी के जीवन में भारतीय संगीत का प्रभाव

सिद्धार्थ मिश्रा*

सारांश :

संगीत का आध्यात्मिक और नैतिक महत्त्व : महात्मा गाँधी के विश्व-दृष्टिकोण में संगीत केवल मनोरंजन या कलात्मक अभिव्यक्ति का एक रूप नहीं था; अपितु आध्यात्मिक और नैतिक सन्देशों को व्यक्त करने के लिए एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में इसका गहरा महत्त्व था। उन्होंने संगीत को एक सार्वभौमिक भाषा के रूप में माना, जो विभिन्न पृष्ठभूमि और विश्वासों वाले व्यक्तियों को विचारों, भावनाओं और मूल्यों का संचार कर सकती है। संगीत की परिवर्तनकारी क्षमता के लिए गाँधी जी की गहरी प्रशंसा; विशेष रूप से दो प्रमुख संगीत रूपों को अपनाने में स्पष्ट थी– भजन (भक्ति गीत) और कीर्तन (आध्यात्मिक मंत्र)। भजन और कीर्तन गाँधी जी की सभाओं और विरोध-प्रदर्शनों में केन्द्रीय और अपरिहार्य भूमिका निभाते थे। ये भक्ति और आध्यात्मिक संगीत रूप केवल संगत नहीं थे; वे उनके आन्दोलनों की धड़कन थे, जो उनके अनुयायियों के दिल और दिमाग में गूँजते थे। गाँधी जी का दृढ़ विश्वास था कि इन संगीतमय अभिव्यक्तियों में एक जन्मजात शक्ति होती है– भाषाई और सांस्कृतिक बाधाओं को पार करने की क्षमता, जो जनता की आत्मा को छूती है। गाँधी जी के भजन और कीर्तन के उपयोग का एक सबसे उल्लेखनीय पहलू आत्माओं को ऊपर उठाने में उनकी भूमिका थी। कठिनाई और संघर्ष के समय में, जब अहिंसक प्रतिरोध का मार्ग कठिन लगता था, इन संगीत रूपों ने आशा और प्रेरणा के स्रोत के रूप में कार्य किया। भजन और कीर्तन की मधुर धुन और हृदयस्पर्शी बोल लोगों के मनोबल को ऊपर उठाने और विपरीत परिस्थितियों में सान्त्वना प्रदान करने की असाधारण क्षमता रखते थे। गाँधी जी ने माना कि न्यायपूर्ण और अहिंसक समाज की खोज में उनके अनुयायियों का मनोबल बनाए रखना सबसे महत्त्वपूर्ण था और संगीत ने इसे प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। वे सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के प्रति समर्पण और प्रतिबद्धता की अभिव्यक्ति थे। गायन और इन संगीत-अनुष्ठानों में भाग लेने के कार्य के माध्यम से, व्यक्तियों को उनके उद्देश्य की याद दिलाई जाती थी– एक अधिक न्यायपूर्ण और समतावादी समाज के लिए प्रयास करना। इन भक्ति-गीतों की धुन और शब्दों ने उनके समर्पण को मजबूत किया, उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने में भी दृढ़ रहने की शक्ति प्रदान की। शायद सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गाँधी जी ने भजन और कीर्तन की शक्ति का उपयोग जनता के बीच अहिंसा और एकता के मूल्यों का उत्साहपूर्वक प्रचार करने के लिए किया। इन आध्यात्मिक गीतों के बोल अक्सर शान्ति, प्रेम और सद्भाव का सन्देश देते थे, जो गाँधी जी के अहिंसा के दर्शन के साथ पूरी तरह मेल खाता था।

शब्द-सूचक : महात्मा गाँधी, संगीत, भजन, भारतीय, शान्ति, प्रेम।

परिचय : महात्मा गाँधी, भारत के इतिहास में एक महान हस्ती हैं, जिन्हें न केवल राजनीतिक क्षेत्र में, बल्कि भारतीय संस्कृति के मूल में भी उनके उल्लेखनीय योगदान के लिए याद किया जाता है। राष्ट्र के भाग्य को आकार देने में उनकी अच्छी तरह से प्रलेखित भूमिका से

* सहायक आचार्य– कला प्रदर्शन विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित् विश्वविद्यालय), प्रयागराज, उ.प्र.

परे, गाँधी जी का प्रभाव भारत के सांस्कृतिक ताने-बाने को बनाने वाले जटिल धागों तक फैला हुआ है। उनकी स्थायी विरासत के कम खोजे गए पहलुओं में से, भारतीय संगीत पर उनका गहरा प्रभाव, राष्ट्र की संगीत परम्पराओं को आकार देने में एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में सामने आता है, जबकि इनके नेतृत्व और दर्शन का बड़े पैमाने पर अध्ययन किया गया है। भारतीय संगीत के लिए उनका दृष्टिकोण अक्सर छाया में रहता है, जिसे पूरी तरह से सराहा और समझा जाना बाकी है। इस लेख का उद्देश्य भारतीय संगीत पर गाँधी जी के गहन प्रभाव के कम ज्ञात पहलुओं पर प्रकाश डालकर इस अनदेखी को सुधारना है। यह उनके विचारों और कार्यों तथा संगीत की दुनिया के बीच जटिल सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। यह बताता है कि कैसे उनके दूरदर्शी दृष्टिकोण ने भारत के संगीत परिदृश्य को समृद्ध और आकार दिया?

यह लेख भारतीय संगीत पर महात्मा गाँधी के महत्त्वपूर्ण प्रभाव पर विस्तृत रूप से नजर डालता है, जबकि गाँधी जी मुख्य रूप से भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका के लिए जाने जाते हैं। यह लेख भारतीय संगीत के लिए उनके दृष्टिकोण और अहिंसा, आध्यात्मिकता तथा भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण पर केन्द्रित उनके व्यापक दर्शन के बीच जटिल सम्बन्धों की खोज करता है। भारतीय संगीत पर गाँधी जी का प्रभाव गहरा और बहुआयामी था। गाँधी जी ने संगीत को केवल उसके सौन्दर्य-मूल्य के लिए नहीं सराहा; बल्कि उन्होंने सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक कायाकल्प के लिए एक शक्तिशाली साधन के रूप में इसकी क्षमता को पहचाना। गाँधी जी के संगीत से जुड़ने का मुख्य कारण इसकी एकजुट करने वाली शक्ति में उनका विश्वास था। उन्होंने संगीत को विभाजन को पार करने, सद्भाव को बढ़ावा देने और अहिंसा व एकता के आदर्शों को आगे बढ़ाने के साधन के रूप में देखा। सरल भक्ति संगीत, तंबूरा और हारमोनियम जैसे पारम्परिक भारतीय वाद्ययन्त्रों के लिए उनकी अपनी प्राथमिकता सादगी और आध्यात्मिकता के जीवन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाती है, जिसने उनके दृष्टिकोण से जुड़े संगीतकारों को प्रभावित किया।

यह लेख इस बात पर प्रकाश डालता है कि गाँधी जी ने भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के दौरान संगीत के उपयोग को किस तरह सक्रिय रूप से प्रोत्साहित किया। 'नमक मार्च' जैसे प्रतिष्ठित आयोजनों के साथ-साथ गीत और मंत्रोच्चार भी हुए, जिससे स्वतन्त्रता के लिए आह्वान को बल मिला और सामूहिक आकांक्षाओं को व्यक्त करने में संगीत की भूमिका पर प्रकाश डाला गया। भारतीय संगीत में गाँधी जी की स्थायी विरासत स्वतन्त्रता-आन्दोलन से परे तक फैली हुई है। उन्होंने स्वदेशी संगीत परम्पराओं और लोक संगीत के संरक्षण की वकालत की। संगीतकारों और विद्वानों से अपनी कला के माध्यम से भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विविधता का दस्तावेजीकरण और जश्न मनाने का आग्रह किया। यह लेख भारतीय संगीत पर महात्मा गाँधी के गहन प्रभाव को उजागर करता है। यह दर्शाता है कि कैसे उनके दर्शन और कार्यों ने देश की संगीत परम्पराओं पर एक अमिट छाप छोड़ी। एकता, सादगी और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण पर उनका जोर भारत के संगीतमय ताने-बाने को समृद्ध करता है, जिससे उनकी विरासत भारतीय संगीत की दुनिया में एक स्थायी और पोषित विरासत बन गयी है।

विषय-प्रवेश : हम सभी उन्हें 'महात्मा' के रूप में जानते हैं, जो सत्य के साधक और अहिंसा के विज्ञान के विनम्र अन्वेषक थे। एक सन्त, एक बैरिस्टर, एक स्वतन्त्रता-सेनानी और निश्चित रूप से; समाज, देश और वास्तव में; मानवता के लिए बड़ी चिन्ता रखने वाली एक

दिव्य आत्मा थे। वैश्वीकरण के जीवन के हर क्षेत्र में प्रवेश करने के साथ गाँधी जी एक वैश्विक प्रतीक बन गए हैं। गाँधी जी ने उन विशिष्ट मुद्दों और समस्याओं पर बहुत कुछ लिखा, जिनका उन्होंने सामना किया। जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिसे उन्होंने अछूता छोड़ा हो। वे सही मायने में एक विचारक, संश्लेषणकर्ता, रचनात्मक प्रतिभा और कर्मयोगी थे। बहुत कम लोग जानते हैं कि वह संगीत और कला के बेहद शौकीन थे। हममें से अधिकांश लोग हमेशा से इस धारणा के तहत रहे हैं कि वे संगीत जैसी सभी कलाओं के खिलाफ थे। वास्तव में; वे संगीत के बहुत बड़े प्रेमी थे, हालाँकि संगीत के बारे में उनका दर्शन अलग था। उनके अपने शब्दों में– ''संगीत केवल गले से नहीं निकलता। मन का संगीत है– इन्द्रियों का और हृदय का।''

किसी ने एक बार उनसे पूछा– ''महात्मा जी! क्या आपको संगीत पसन्द नहीं है?'' गाँधी जी ने उत्तर दिया– ''यदि मेरे अन्दर संगीत और हँसी न होती, तो मैं अपने काम के बोझ से मर जाता।'' २२ दिसम्बर, १९४५ को रवीन्द्रनाथ टैगोर को लिखे अपने पत्र में उन्होंने सुझाव दिया था कि शान्तिनिकेतन में बंगाली संगीत के साथ-साथ हिन्दुस्तानी संगीत और पश्चिमी संगीत को भी उचित स्थान दिया जाए। इससे पता चलता है कि उन्हें संगीत की विभिन्न विधाओं का अच्छा ज्ञान था। संगीत के बारे में उनका विचार आध्यात्मिकता से भी जुड़ा था। इस सन्दर्भ में; उन्होंने ७ अक्टूबर, १९२४ को पण्डित नारायण मोरेश्वर खरे (सत्याग्रह आश्रम, साबरमती में संगीत शिक्षक) को एक पत्र लिखा– ''मैं धीरे-धीरे संगीत को आध्यात्मिक विकास के साधन के रूप में देखने लगा हूँ। कृपया यह सुनिश्चित करने का प्रयास करें कि हम सभी अपने 'भजन' को सही अर्थों में समझकर गाएँ। मैं उस आनन्द का वर्णन नहीं कर सकता, जो मुझे महसूस होता है।'' संगीत एक रचनात्मक गतिविधि है, जो आत्मा को ऊपर उठाती है। उन्होंने हमेशा इस कला को पुनर्जीवित करने और संगीत विद्यालय को संरक्षण देने का प्रयास किया। १५ अप्रैल, १९२६ को अहमदाबाद में 'यंग इण्डिया' को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था– ''अगर हम संगीत की व्यापक व्याख्या करें, यानी अगर हम इसका मतलब एकता, सौहार्द्र, आपसी मदद से लें, तो यह कहा जा सकता है कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में हम इससे दूर नहीं रह सकते। इसलिए अगर ज्यादा-से-ज्यादा लोग अपने बच्चों को संगीत की कक्षा में भेजें, तो यह राष्ट्रीय उत्थान में उनके योगदान का हिस्सा होगा।'' महात्मा के अनुसार– ''सच्चे संगीत में साम्प्रदायिक मतभेद और दुश्मनी के लिए कोई जगह नहीं है। संगीत राष्ट्रीय एकता का एक बेहतरीन उदाहरण है, क्योंकि सिर्फ वहाँ हम हिन्दू और मुस्लिम संगीतकारों को एक साथ बैठकर संगीत समारोहों में हिस्सा लेते हुए देखते हैं। वे अक्सर कहते थे– ''हम संगीत को संकीर्ण अर्थ में किसी वाद्य को अच्छी तरह से गाने और बजाने की क्षमता के रूप में लेंगे, लेकिन इसके व्यापक अर्थ में; सच्चा संगीत तभी बनता है, जब जीवन एक ही धुन और एक ही ताल के साथ तालमेल बिठा लेता है। संगीत वहीं जन्म लेता है, जहाँ हृदय के तार बेसुरे न हों।'' उन्होंने कहा कि खादी और चरखे में सच्चा संगीत निहित है। संगीत के साथ प्रयोग तब सफल माना जाएगा, जब पूरे देश में करोड़ों लोग एक ही स्वर में बोलना शुरू कर देंगे। उनके संगीत की ध्वनि से मृत मिट्टी से स्वतन्त्रता के गीत फूट पड़े। निन्दा करने वाले प्रबुद्ध हो गए और प्रबुद्ध लोगों ने उनमें आत्मज्ञान की पूर्णता देखी। महात्मा गाँधी के पसंदीदा राग सत्य और अहिंसा थे। उन्होंने स्वदेशी और खादी के 'थाट' का इस्तेमाल किया। उनकी वादी और संवादी, स्वर ब्रह्मचर्य और निस्वार्थता थे।

असत्य और हिंसा वर्जित स्वर थे। उन्होंने 'चरखे' के साथ अपना रियाज कभी नहीं छोड़ा। महात्मा गाँधी ने संगीत को एक पवित्र और शक्तिशाली प्राचीन कला के रूप में परिभाषित किया, जिसमें भावनाओं को बदलने और नियन्त्रित करने की क्षमता है। २० अक्टूबर, १९१७ को ब्रोच में 'द्वितीय गुजरात शैक्षिक सम्मेलन' में अपने भाषण में उन्होंने कहा– ''कभी-कभी, हम एक बड़ी सभा में बेचैनी पाते हैं। इसे रोका जा सकता है और यदि सभी लोग राष्ट्रीय गीत गाएँ, तो शान्ति मिलती है। हमारे पास संगीत की शक्ति का एक उदाहरण यह है कि नाविक और अन्य मजदूर एक साथ मिलकर हर-हर और अल्लेबेली की पुकार लगाते हैं और इससे उन्हें अपने काम में मदद मिलती है। लोकप्रिय जागृति के हमारे प्रयासों में संगीत को जगह मिलनी चाहिए।

उन्होंने आगे कहा– ''संगीत का मतलब लय-व्यवस्था है। इसका प्रभाव विद्युतीय और सुखदायक है। लेकिन दुर्भाग्य से, हमने संगीत की उपेक्षा की है। यह आधुनिक अर्थों में कभी राष्ट्रीयकृत नहीं हुआ। यदि स्काउट और सेवा समिति संगठनों के स्वयंसेवकों पर मेरा कोई प्रभाव होता, तो मैं राष्ट्रीय गीतों के साथ उचित गायन को अनिवार्य बना देता और उस उद्देश्य के लिए मेरे पास हर कांग्रेस या सम्मेलन में भाग लेने वाले महान संगीतकार होने चाहिए और सामूहिक संगीत सिखाना चाहिए।

जब गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका में थे, तब उन्होंने आश्रम में शाम की प्रार्थना शुरू की थी। भजनों का वह संग्रह 'नीतिवं काव्यो' नाम से प्रकाशित हुआ था। सत्याग्रह आश्रम, साबरमती में उन्होंने दैनिक प्रार्थना में 'रामधुन को शामिल किया था। आश्रम के संगीतकार पण्डित एन. एम. खरे, मामा फड़के, श्री विनोबा और बालकोबा भावे आदि थे, जो महान भारतीय शास्त्रीय संगीतकार थे। उनके आश्रम भजनावली में धर्म, जाति, पंथ, क्षेत्र, भाषा आदि का कोई भेदभाव नहीं था। यह विभिन्न रंगों के फूलों का एक सुन्दर गुलदस्ता था, जिसमें विभिन्न सुगंधें और अलग-अलग विशेषताएँ थीं– सभी प्रेम, मानवता और विश्वास के एक ही गुलदस्ते में।

उपर्युक्त से हमें यह तथ्य पता चलता है कि महात्मा गाँधी को अच्छे घरेलू संगीत के लिए स्वाभाविक कान था। उनके जीवन पर संगीत का बहुत बड़ा प्रभाव था। बचपन में सुने गए गीता, रामायण आदि के मन्त्रों के मधुर पाठ ने उन पर ऐसी छाप छोड़ी, जो वर्षों तक न मिट सकी और न ही कमजोर हुई।

भारत के युवाओं के साथ अपनी एक बातचीत में उन्होंने कहा है– ''हमारा पूरा जीवन एक गीत की तरह मधुर और संगीतमय होना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सत्य, ईमानदारी आदि सद्गुणों के अभ्यास के बिना जीवन ऐसा नहीं बन सकता। जीवन को संगीतमय बनाने का अर्थ है– उसे ईश्वर के साथ एक करना, उसमें विलीन करना। जिसने राग और द्वेष अर्थात् पसंद-नापसंद से खुद को मुक्त नहीं किया है, जिसने सेवा के आनन्द का स्वाद नहीं लिया है, उसे दिव्य संगीत की कोई समझ नहीं हो सकती। संगीत का वह अध्ययन, जिसमें इस दिव्य कला के इस गहन पहलू को शामिल नहीं किया जाता, मेरे लिए उसका कोई महत्त्व नहीं है।''

गाँधी जी दुनिया में शान्ति और सद्भाव के लिए जिए और मरे। महात्मा ने जो सबसे बड़ी किताब लिखी, वह उनके अपने जीवन के बारे में थी, ताकि वे साहसपूर्वक कह सकें– ''मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।'' उनका पूरा जीवन लय और सद्भाव से भरा था। उन्हें अपने दिन की शुरूआत और अंत कुछ मधुर भजनों के साथ करने की आदत थी, जो उन्होंने अपने पीछे छोड़ी सिम्फनी के लिए छोड़े थे कि भयानक हिंसा के बावजूद, पृथ्वी अभी भी रहने के लिए एक

संगीतमय जगह है। वर्तमान युग में, जब गाँधीवादी मार्ग ही मानव-अस्तित्व और विकास का एकमात्र रास्ता प्रतीत होता है, मानव-जीवन की बेहतरी के लिए गाँधी जी के कला और संगीत के दर्शन की यह खोज, निश्चित रूप से; संगीत और गाँधीवादी अध्ययन– दोनों के विद्वानों के लिए प्रासंगिक होगी।

लोक संगीत का प्रचार और पुनरुद्धार : गाँधी जी की आस्था-प्रणाली के मूल में यह दृढ़ विश्वास था कि राष्ट्र की आत्मा इसकी विविध लोक-परम्पराओं में जटिल रूप से बुनी हुई है। भारत की सांस्कृतिक विरासत के समृद्ध ताने-बाने के प्रति उनके मन में गहरी श्रद्धा थी और यह श्रद्धा लोक संगीत की जीवन्त दुनिया तक फैली हुई थी। गाँधी जी इन लोक-परम्पराओं को राष्ट्र की धड़कन के रूप में देखते थे, जो इसकी पहचान का सार है। भावुक उत्साह के साथ, गाँधी जी ने भारत की विविध लोक संगीत विरासत के संरक्षण और प्रचार-प्रसार के लिए एक मिशन शुरू किया। उन्होंने इन संगीत परम्पराओं के गहन महत्त्व को पहचाना और राष्ट्र की अनूठी सांस्कृतिक पच्चीकारी को प्रतिबिम्बित करने में उनकी भूमिका को पहचाना। इस उद्देश्य के प्रति अपने अटूट समर्पण में, गाँधी जी ने संगीतकारों को ग्रामीण भारत के हृदयस्थलों की यात्रा करने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने उनसे देहाती परिदृश्यों को पार करने, लोक संगीत के प्रामाणिक माहौल में खुद को डूबोने और इन परम्पराओं के वास्तविक सार को आत्मसात् करने का आग्रह किया। यह उनका विश्वास था कि ऐसा करने से ये संगीतकार लुप्त होती लोक-परम्पराओं में नई जान फूँक सकते हैं, जो भुलाए जाने के कगार पर थीं। इस ठोस प्रयास के पीछे दो उद्देश्य थे। सबसे पहले, इसका उद्देश्य शहरी और ग्रामीण भारत के बीच बढ़ती खाई को पाटना था। ऐसे युग में, जहाँ तेजी से शहरीकरण पारम्परिक ग्रामीण जीवन शैली को खत्म कर रहा था, गाँधी जी की दृष्टि शहर और ग्रामीण इलाकों के बीच सम्बन्ध की भावना को बहाल करने की थी। शहरी संगीत परिदृश्य को ग्रामीण लोक संगीत की प्रामाणिकता के साथ जोड़कर, उनका उद्देश्य भारत की ग्रामीण जड़ों के लिए समझ और प्रशंसा की भावना को फिर से जगाना था। दूसरे, गाँधी जी के प्रयास लुप्त होती लोक-परम्पराओं के पुनरुद्धार की ओर अग्रसर थे। संगीतकारों को अपनी रचनाओं में लोक-तत्त्वों को शामिल करने के लिए प्रोत्साहित करके, उन्होंने इन परम्पराओं में नई जान फूँकी, यह सुनिश्चित करते हुए कि वे युगों तक गूँजती रहेंगी। भारत के लोक संगीत के संरक्षण और प्रचार के लिए गाँधी का दृष्टिकोण केवल एक संगीत प्रयास नहीं था; यह एक सांस्कृतिक मिशन था। यह संगीत और समाज के बीच जटिल अन्तर्सम्बन्ध की उनकी गहरी समझ और आने वाली पीढ़ियों के लिए भारत की विविध सांस्कृतिक विरासत की रक्षा करने की उनकी प्रतिबद्धता का प्रमाण था।

पारम्परिक भारतीय वाद्ययन्त्रों को बढ़ावा देना : महात्मा गाँधी का भारत की सांस्कृतिक विरासत के प्रति गहरा सम्मान पारम्परिक भारतीय संगीत वाद्ययन्त्रों के क्षेत्र तक फैला हुआ था और इन वाद्ययन्त्रों के लिए उनकी वकालत ने भारतीय संगीत में उनकी स्थायी प्रमुखता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। हारमोनियम, तबला और सितार जैसे इन वाद्ययन्त्रों के महत्त्व में गाँधी जी का गहरा विश्वास भारत की समृद्ध संगीत परम्पराओं को संरक्षित करने और मनाने के लिए उनकी अटूट प्रतिबद्धता से उपजा था। सबसे पहले और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गाँधी जी पारम्परिक भारतीय वाद्ययन्त्रों को देश की संगीत परम्परा के दिल और आत्मा के रूप में देखते थे। उनके लिए ये वाद्ययन्त्र केवल ध्वनि उत्पन्न करने के उपकरण नहीं थे, बल्कि

सांस्कृतिक विरासत और सदियों पुराने ज्ञान के भण्डार थे। उनकी नज़र में, ये भारत की संगीत पहचान का सार थे, जो समकालीन पीढ़ियों को युगों से चली आ रही धुनों के समृद्ध ताने-बाने से जोड़ते थे। पारम्परिक वाद्ययन्त्रों के लिए गाँधी जी का समर्थन संगीत की किसी विशेष शैली तक सीमित नहीं था। उन्होंने शास्त्रीय और भक्ति संगीत– दोनों में इनके उपयोग का उत्साहपूर्वक समर्थन किया। इस समावेशिता ने संगीत को सीमाओं से परे एक एकीकृत शक्ति के रूप में देखने के उनके दृष्टिकोण को रेखांकित किया। चाहे शास्त्रीय संगीत की संरचित और जटिल रचनाएँ हों या आत्मा को झकझोर देने वाले भक्ति-भजन और कीर्तन, पारम्परिक वाद्ययन्त्रों ने भारत की संगीत विविधता को संरक्षित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इसके अलावा; गाँधी जी द्वारा इन वाद्ययन्त्रों का समर्थन केवल बयानबाजी से परे था; इसने उनके समय के संगीत परिदृश्य पर एक ठोस प्रभाव डाला। पारम्परिक वाद्ययन्त्रों के उनके संरक्षण ने संगीतकारों और वाद्ययन्त्र-निर्माताओं को इन प्रिय संगीत वाद्ययन्त्रों को गढ़ने और परिष्कृत करने के लिए प्रोत्साहित किया। गाँधी जी जैसे प्रमुख व्यक्ति के समर्थन और मान्यता ने संगीतकारों और वाद्ययन्त्र-निर्माताओं को मान्यता की भावना प्रदान की, जिससे उन्हें अपने शिल्प को समर्पण और गर्व के साथ आगे बढ़ाने की प्रेरणा मिली। नतीजतन; इन वाद्ययन्त्रों ने न केवल अपनी स्थायी प्रमुखता बनाए रखी, बल्कि बदलते संगीत परिदृश्य के साथ विकसित और अनुकूलित भी होते रहे। विभिन्न पीढ़ियों के संगीतकारों को गाँधी जी के दृष्टिकोण से प्रेरणा मिली। उन्होंने पारम्परिक वाद्ययन्त्रों को नवीन रचनाओं और समकालीन संगीत अभिव्यक्तियों में एकीकृत किया। परम्परा और आधुनिकता के इस मिश्रण ने भारतीय संगीत में इन वाद्ययन्त्रों की निरन्तर प्रासंगिकता और जीवन्तता में योगदान दिया है। हारमोनियम, तबला और सितार जैसे पारम्परिक भारतीय वाद्ययन्त्रों के लिए महात्मा गाँधी की कट्टर वकालत भारत की सांस्कृतिक विरासत के लिए उनकी गहन प्रशंसा से प्रेरित थी। इन वाद्ययन्त्रों को राष्ट्र की संगीत परम्परा का अभिन्न अंग मानने और शास्त्रीय और भक्ति संगीत में इनके उपयोग के लिए उनके भावुक समर्थन का स्थायी प्रभाव पड़ा है। इस सम्बन्ध में गाँधी जी की विरासत भारतीय संगीत के जीवन्त और विविध परिदृश्य में पारम्परिक वाद्ययन्त्रों के स्थायी महत्त्व का प्रमाण है, जहाँ वे संगीतकारों और दर्शकों– दोनों के साथ समान रूप से गूँजते रहते हैं।

सांस्कृतिक पहचान और संगीत विरासत : महात्मा गाँधी के लिए संगीत का एक ऐसा गहन महत्त्व था, जो महज एक कला रूप होने से कहीं बढ़कर था। उनके लिए यह भारत की सांस्कृतिक पहचान का एक अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण घटक था, जो राष्ट्र की विरासत के ताने-बाने में बुना हुआ एक जटिल धागा था। भारत की सांस्कृतिक विरासत के प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व के रूप में संगीत के संरक्षण और उत्सव में उनका दृढ़ विश्वास, भारतीय संस्कृति के व्यापक सन्दर्भ में, भारतीय संगीत की महत्त्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करता है। भारत की सांस्कृतिक विरासत के प्रतीक के रूप में संगीत पर गाँधी जी का दृष्टिकोण राष्ट्र के इतिहास और परम्पराओं के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा से उपजा था। उन्होंने माना कि भारत की सांस्कृतिक सम्पदा विविध तत्त्वों का एक जटिल मोजेक है, जिनमें से प्रत्येक राष्ट्र की बहुमुखी पहचान में योगदान देता है। इस सम्बन्ध में, संगीत एक अलग इकाई नहीं, बल्कि इस बड़े टेपेस्ट्री का एक अभिन्न अंग था। उनके विचार में, संगीत भारत की कहानियों, भावनाओं और मूल्यों का एक जीवन्त भण्डार था। इसमें सदियों से राष्ट्र के आध्यात्मिक, सामाजिक और भावनात्मक अनुभवों का सार

समाहित था। चाहे वह मन्दिरों में गूँजने वाले भक्ति-भजन हों, कॉन्सर्ट हॉल में गूँजने वाले शास्त्रीय राग हों या गाँव की सभाओं में बजने वाली लोकधुनें हों– संगीत का प्रत्येक रूप अपने साथ भारत की समृद्ध सांस्कृतिक कथा का एक टुकड़ा लेकर आया था। इस संगीत-विरासत को संरक्षित करने और मनाने के लिए गाँधी की अटूट प्रतिबद्धता उपनिवेशवाद और तेजी से आधुनिकीकरण के सामने भारत की सांस्कृतिक पहचान की रक्षा और पोषण करने के उनके व्यापक मिशन का प्रतिबिम्ब थी। उनका मानना था कि जैसे-जैसे राष्ट्र प्रगति करता है, उसे उन परम्पराओं से नाता नहीं खोना चाहिए, जो इसके अद्वितीय चरित्र को परिभाषित करती हैं। भारतीय संस्कृति में संगीत के महत्त्व पर यह दृष्टिकोण मनोरंजन या कलात्मक अभिव्यक्ति की सीमाओं से परे है। इसने राष्ट्र की सामूहिक स्मृति के संरक्षक और इसके मूल्यों और आकांक्षाओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने के साधन के रूप में संगीत की भूमिका पर जोर दिया। भारत की विरासत के प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व के रूप में संगीत के लिए गाँधी की दृष्टि ने इस कला रूप को एक पवित्र दर्जा दिया। उन्होंने संगीत को राष्ट्र की आत्मा को प्रतिबिम्बित करने वाले दर्पण के रूप में देखा, जो धुन, लय और गीतों में इसके सार को दर्शाता है। यह दृष्टिकोण आज भी गूँजता है, जो हमें याद दिलाता है कि भारतीय संगीत केवल मनोरंजन का एक रूप नहीं है, बल्कि देश की सांस्कृतिक विरासत का एक जीवन्त अवतार है– एक खजाना, जिसे आने वाली पीढ़ियों के लिए सँजोना, संरक्षित करना और मनाया जाना चाहिए।

महात्मा गाँधी के प्रिय भजन : भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम में एक प्रमुख नेता, महात्मा गाँधी का भजनों से गहरा सम्बन्ध था, जो हिन्दू धर्म में भक्ति गीत या भजन हैं। उन्होंने भजनों का उपयोग एकता, सादगी और आध्यात्मिक चिन्तन को बढ़ावा देने के साधन के रूप में किया। गाँधी जी से जुड़े कुछ उल्लेखनीय भजन इस प्रकार है–

१. **'रघुपति राघव राजा राम' :** यह गाँधी जी के पसंदीदा भजनों में से एक है। यह हिन्दू पौराणिक कथाओं में एक केन्द्रीय व्यक्ति भगवान् राम की प्रशंसा करता है और अपने सरल, लेकिन गहन गीतों के लिए जाना जाता है, जो सत्य और धार्मिकता के आदर्शों पर जोर देते हैं।

२. **'वैष्णव जन तो' :** कवि नरसिंह मेहता द्वारा लिखित यह भजन एक सच्चे वैष्णव (विष्णु के भक्त) के गुणों का वर्णन करता है। गाँधी जी अक्सर इस भजन को गाते थे, जो करुणा, विनम्रता और दूसरों की सेवा पर इसके जोर को महत्त्व देते थे।

३. **'हरि तुमा हरो' :** यह भजन भगवान् कृष्ण से उनकी सुरक्षा और मार्गदर्शन के लिए एक निवेदन है। यह उस भक्ति और समर्पण की भावना को दर्शाता है, जिसे गाँधी जी ने अपने निजी जीवन में अपनाया था।

४. **'अल्लाह तेरो नाम' :** यह भजन गाँधी जी की धार्मिक सद्भावना के प्रति प्रतिबद्धता का प्रमाण है। यह हिन्दू और मुस्लिम– दोनों देवताओं के नामों का आह्वान करता है, जो सभी धर्मों की एकता में उनके विश्वास को दर्शाता है।

५. **'अखिल भारत में' :** यह भजन जाति, पंथ या धर्म की परवाह किए बिना भारत के सभी लोगों के बीच एकता का आह्वान करता है। यह गाँधी जी के एकजुट और समतावादी भारत के दृष्टिकोण के अनुरूप है।

गाँधी जी अक्सर अपनी दैनिक दिनचर्या में और अनुयायियों के साथ बैठकों के दौरान,

शान्ति और एकजुटता की भावना को बढ़ावा देने के लिए, इन भजनों का इस्तेमाल करते थे। भजनों पर उनका जोर न केवल उनकी व्यक्तिगत आध्यात्मिकता का प्रतिबिम्ब था, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक सामंजस्य के लिए एक उपकरण भी था।

निष्कर्ष : महात्मा गाँधी का भारतीय संगीत पर अमिट प्रभाव उनकी राजनीतिक विरासत से कहीं आगे निकल गया है। संगीत के लिए उनकी दृष्टि उनके अहिंसा, आध्यात्मिकता और भारत की सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा के दर्शन में गहराई से निहित थी। गाँधी जी द्वारा लोक संगीत का उत्साहपूर्ण प्रचार, संगीत की आध्यात्मिक और नैतिक शक्ति की उनकी पहचान, संगीत-प्रथाओं में एकता, सादगी और सुलभता के लिए उनकी अथक वकालत और पारम्परिक भारतीय वाद्ययन्त्रों के लिए उनका अटूट समर्थन सामूहिक रूप से भारतीय संगीत के क्षेत्र में उनकी स्थायी विरासत का निर्माण करते हैं। उनका प्रभाव संगीतकारों और विद्वानों को भारतीय सन्दर्भ में संगीत, संस्कृति और सामाजिक परिवर्तन के जटिल अन्तर्सम्बन्धों का पता लगाने के लिए प्रेरित करता है। यह सुनिश्चित करता है कि उनका दृष्टिकोण भारत के समृद्ध सांस्कृतिक ताने-बाने की आधारशिला के रूप में संगीत के इतिहास में अंकित रहे।

सन्दर्भ-सूची

१. Suhrud, T.– Gandhi's Experiments with Music.
२. Mutatkar, S.– Music in the Life of Gandhi.
३. Lal, V.– Gandhi and Music.
४. Gandhi, M.– (Autobiography) (2008). The Story of My Experiments with Truth. Yale University Press, London
५. The Coòected Works of Mahatma Gandhi, Vol. 83, pg. 410
६. The Coòected Works of Mahatma Gandhi, Vol. 82, pg. 250-251
७. Young India, 1.04.1926 : The Coòected Works of Mahatma Gandhi, Vol. 30, pg. 160
८. The Coòected Works of Mahatma Gandhi, Vol. 21, pg. 30

●

वाराणसी की वस्त्र कला

निशांत*

शोध-सार : वाराणसी के वस्त्र अपनी पारम्परिक बुनाई तकनीक तथा विविध रूपांकनों के कारण आदि काल से प्रसिद्ध रहे हैं। यहाँ के वस्त्र उद्योग के प्रमाण प्राचीन ग्रन्थों से लेकर विदेशी यात्रियों के यात्रा-वृत्तान्तों में भी मिलते हैं। समय-समय पर यहाँ की वस्त्र-परम्परा में कुछ बदलाव दिखता रहा है, जैसे– इस्लामिक काल में ज़री, कपास और रेशम के प्रयोग से बुनी जाने वाली जामदानी तथा किमखाब आदि प्रकार के वस्त्रों का आगमन। परन्तु, तमाम बदलाव और नए प्रयोगों के बावजूद; वाराणसी के वस्त्रों ने अपनी मौलिकता को बनाए रखा। इसका श्रेय यहाँ के कुशल बुनकरों तथा नक्शेबन्दों को जाता है, जो कि पीढ़ियों से बुनकरी के काम में ख्याति अर्जित करते रहे हैं। आधुनिक तकनीक तथा बाज़ार में उपलब्ध सस्ते उत्पाद ने हाथ से करघे पर बुनाई की परम्परा को निश्चित तौर पर प्रभावित किया है। परन्तु आज भी ऐसे कारीगरों की बड़ी संख्या है, जो पारम्परिक शैली में काम तो करते ही हैं, साथ ही; नए फैशन के मुताबिक़ प्रयोग भी कर रहे हैं।

बीज शब्द : वाराणसी, ब्रोकेड, बुनकर, जामदानी, जैक्वार्ड, ज़री, नक्शबन्द, कपड़ा, कला, कलाबत्तू, करघा।

मूल आलेख : वाराणसी हाथ से बुने हुए वस्त्रों के लिए वैश्विक महत्त्व का केन्द्र है। यह केन्द्र अपनी ज़री या ब्रोकेड के लिए प्रसिद्ध है। कपड़ों पर ज़री या ब्रोकेड का काम हमारी सांस्कृतिक प्रथाओं में एक लम्बी और निरन्तर परम्परा रही है। भारत में कई केन्द्र हैं, जो हाथ से बुने हुए वस्त्रों का उत्पादन करते हैं, लेकिन बुनाई की प्राचीन तकनीक अन्य जगहों की तुलना में वाराणसी में अधिक संरक्षित और प्रचलित है।[१] यहाँ के वस्त्र कलात्मकता, डिज़ाइन, पैटर्न, कपड़े की गुणवत्ता तथा सुन्दरता की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखते हैं। विकसित प्रकार की बुनाई का केन्द्र होने के कारण वाराणसी अनेक प्रकार के वस्त्रों का उत्पादन करता है। वाराणसी के बुनकर किसी भी प्रकार के डिज़ाइन को अपने करघे पर तैयार करने में निपुण हैं।[२] कपड़े पर सोने और ज़री के काम की परम्परा ऋग्वैदिक काल से चली आ रही है। वाराणसी की वस्त्र-परम्परा के प्रमाण वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक मिलते रहे हैं। ऋग्वेद में सोने के एक बहुमूल्य वस्त्र (हिरण्य) का उल्लेख है, जिसकी व्याख्या वर्तमान समय के ब्रोकेड कार्य या किमखाब के सबसे प्राचीन समकक्ष के रूप में की गयी है।[३] बौद्ध जातक, पाली और संस्कृत ग्रन्थ ऐसे कपड़ों के पर्याप्त सन्दर्भ प्रदान करते हैं। पाली साहित्य में वाराणसी में बने कपड़े 'वारणसयेक' या 'कासयेक' का उल्लेख मिलता है। ऐसा कहा जाता है कि बुद्ध के निर्वाण प्राप्त होने के बाद उनके शरीर को वाराणसी में बने कपड़े में लपेटा गया था, जिससे चमकदार नीली, पीली और लाल किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं।[४]

इस्लामिक काल से पहले वाराणसी कपास या मलमल जामदानी के काम के लिए प्रसिद्ध था। बेहतरीन कपास और जटिल ज़री का काम, जिसे जामदानी के नाम से जाना जाता है, २०वीं सदी की शुरूआत तक प्रचलन में था। वाराणसी जामदानी की खासियत थी– डिजाइनिंग के लिए

* सहायक आचार्य– कला इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.

कॉटन बेस पर सूती धागों की जगह जरी के तार का इस्तेमाल करना। वाराणसी में ऐसे कुछ ही कारीगर हैं, जो वर्तमान में जामदानी शैली में काम करते हैं। इस्लामी काल के दौरान फ़ारसी से व्युत्पन्न जामदानी और किमखाब शब्द अब स्वदेशी वस्त्रों के लिए सामान्य नाम हैं।[५] उन दिनों बनारस के बुनकर न केवल साड़ी या अन्य पोशाक सामग्री जैसे स्वदेशी परिधान तैयार कर रहे थे, बल्कि मुगल दरबारों और रईसों से प्रभावित नई रुचि और फैशन की जरूरतों को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार के कपड़े भी बुन रहे थे।

जामावार पैटर्न की साड़ी

मुगल काल के बाद से हम समकालीन लघु चित्रों के माध्यम से पुरुष और महिला पोशाकों में ज़री के काम और ब्रोकेड के उपयोग का पता लगा सकते हैं। यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि १६वीं शताब्दी में पुराने डिज़ाइन अचानक समाप्त हो गए। समकालीन चित्रों से हमें पता चलता है कि फ़ारसी रूपांकनों का पोशाकों में प्रयोग होता था, हालाँकि उन्हें भारतीय चलन के अनुसार संशोधित किया गया था।[६] बनारस के वस्त्रों में फ़ारसी रूपांकनों की प्रचुरता के समर्थन में सटीक सन्दर्भ मौजूद हैं। आइन-ए-अकबरी में फारसी गुरु गियास नक्शबन्द को अकबर के शाही दरबार में नियुक्त किए जाने की बात कही गयी है। लघु चित्रों में दर्शाए गए उपलब्ध उदाहरणों से हम ब्रोकेड कार्यों के डिजाइन और पैटर्न के क्रमिक विकास का पता लगा सकते हैं।[७]

विदेशी आगंतुकों के कई यात्रा-वृत्तान्त उपलब्ध हैं, जो वाराणसी के वस्त्रों की प्रसिद्धि का समर्थन करते हैं। रॉल्फ फिच (१५८३-९१ ईसवी) ने लिखा है कि वाराणसी सूती कपड़ा उद्योग का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था।[८] सदियों से भारत कपास, रेशम और ऊनी वस्त्रों का उत्पादन करता रहा है और मूल रूप से सूती वस्त्रों का सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र माना जाता है। प्राचीन काल में यहाँ के वस्त्र सुदूर पश्चिम में ग्रीस, रोम तथा पूर्वी एशिया तक निर्यात किए जाते थे। भारतीय हथकरघा वस्त्र न केवल अपनी जटिल बुनाई और सटीक विवरण के लिए, बल्कि अपने रूपांकनों और पैटर्न की विशिष्टता के लिए भी जाने जाते हैं। ''शुद्ध सोने और चाँदी के धागे विश्व प्रसिद्ध वराणसी ब्रोकेड में अपना जादुई आकर्षण बुनते हैं।''[९]

१८वीं शताब्दी के कई ग्रन्थों में 'अकबरी' नामक कपड़े का वर्णन किया गया है। अनुमानत: यह एक प्रकार का उच्च गुणवत्ता का बढ़िया महँगा मलमल था, जिसके समकक्ष को वाराणसी के जामदानी के रूप में देखा जा सकता है। मुगल बादशाह अकबर के दरबार में इसकी लोकप्रियता के कारण यह 'अकबरी' के नाम से लोकप्रिय हो गया।[१०]

बुनाई की प्रक्रिया : वाराणसी की ब्रोकेड साड़ियों या ड्रेस सामग्री की निर्माण-प्रक्रिया के विभिन्न चरण हैं। इसमें नक्शबन्द, बुनकर, रंगरेज़, कुण्डीगर, रफूगर, कार्डवाल जैसे कई विशेषज्ञों के सामूहिक प्रयास से वस्त्र-निर्माण होता है। इस शिल्प का महत्त्वपूर्ण पक्ष डिज़ाइन है। कपड़े पर उकेरा जाने वाला डिज़ाइन पहले कागज पर तैयार किया जाता है, फिर उसे एक ग्रॉफ़ पर स्थानान्तरित किया जाता है। डिज़ाइन बनाने वाले नक्शबन्द (डिज़ाइनर) बुनाई की बुनियादी बातों में विशेषज्ञता रखते हैं तथा वे जानते हैं कि कागज के टुकड़े पर एक नियत डिज़ाइन या

पैटर्न को बुने हुए कपड़े में कैसे प्रस्तुत किया जाता है। तैयार डिज़ाइन को नक्शबन्द सूती धागों के ढाँचे में एक छोटा नमूना बनाते हैं। यह नमूना बुनाई में उचित मार्गदर्शन देता है।[११] हालाँकि, अब बुनकर किसी ढाँचे पर बने नमूना पैटर्न के बजाय हस्तनिर्मित या कम्प्यूटर-जनित ग्राफ़ या तस्वीरों पर ज्यादा निर्भर हैं।

ग्राफ पर तैयार नक्शा

१४वीं सदी की शुरूआत में बुखारा में हज़रत ख्वाज़ा बहाउद्दीन नाम के एक वली का जन्म हुआ। वह सबसे बड़े सूफी मुस्लिम सम्प्रदाय में से एक के संस्थापक थे और उन्हें कपड़े बनाने की नक्शा (डिज़ाइन) कला के आविष्कारक के रूप में जाना जाता है और तब से उन्हें हज़रत ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबन्द रहमतुल्ला अली की उपाधि दी गयी थी। ''उस समय से नक्शबन्दी की कला अस्तित्व में है और जो लोग नक्शा बनाने की कला में शिष्य बनना चाहते हैं, उन्हें ख्वाजा साहब के नाम पर फातिहा पढ़ना अनिवार्य है।''[१२] बनारस में कई मशहूर नक्शबन्द हुए हैं, जो अपनी कारीगरी के लिए कई पीढ़ियों से जाने जाते हैं। १८वीं सदी के अंत और १९वीं सदी की शुरूआत में कई दूसरी विधाओं के कारीगरों ने वाराणसी के वस्त्रों की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए कपड़ा डिजाइन के लिए कार्य किया। भित्तिचित्र और लघु चित्रकारों, पत्थर तराशने वालों, नक्शबन्दों ने आपस में अपने डिजाइनों का आदान-प्रदान किया और इसके परिणामस्वरूप; समकालीन दृश्य अभिव्यक्तियों में दिखाई देने वाले समान पैटर्न को देखा जा सकता है।[१३] बनारस के नक्शबन्द १९वीं सदी तक अभ्रक की चादरों पर नक्शा के लिए डिज़ाइन (खाका) बनाते थे। उस्ताद अली हसन जैसे कुछ डिजाइनरों ने २०वीं सदी के मध्य तक कागज और अभ्रक शीट दोनों पर काम किया। कागज पर २०वीं सदी की शुरूआत के अधिकांश डिज़ाइन ब्रश और स्याही से बनाए गए थे, जिन्हें सियाहकलम के नाम से जाना जाता था।[१४] नक्शबंदों की नई पीढ़ियाँ इण्टरनेट और कम्प्यूटर से परिचित हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि नया मीडिया डिजाइनरों और बुनकरों को अन्य क्षेत्रों से ऐसे रूपांकनों को चुनने में मदद कर रहा है, जिनकी माँग है। हालाँकि, ये नए प्रयोग कभी भी स्थानीय शैली का हिस्सा नहीं थे। बनारसी बुनकर न केवल स्थानीय पारम्परिक वस्त्र बनाने में लगे हुए हैं, बल्कि तनचोई, जामावर, बलूचरी जैसे बाहर के नमूने बनाने में भी अपना हाथ आजमा रहे हैं, जो स्थानीय किमखाबों से अलग पैटर्न प्रदर्शित करते हैं। ऐसे नए प्रयोग अब इस क्षेत्र का पर्याय बन गये हैं।

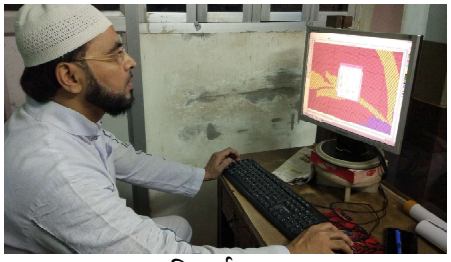
कम्प्यूटर पर डिजाईन बनाता नक्शबन्द

बुनकर, जुलाहा समुदाय से आते हैं। अधिकतर वे मुस्लिम हैं, हालाँकि उनमें से कुछ हिन्दू भी हैं। बनारस में इस समय हजारों बुनकर बुनाई के काम में लगे हैं, जिनमें अधिकतर पावर-लूम पर काम करते हैं। हालाँकि, अभी भी काफ़ी संख्या ऐसे बुनकरों की है, जो हथकरघा पर

बुनाई की सदियों पुरानी परम्परा को जारी रखे हुए हैं। १५वीं सदी के सन्त कवि-दार्शनिक कबीर वाराणसी के बुनकर समुदाय से थे और वे आज भी बुनकरों और सामाजिक सद्भाव में विश्वास रखने वालों के बीच अपने दोहों के माध्यम से याद किये जाते हैं। ''कहते हैं कि उनके करघे से निकलने वाली कपास रेशम की तरह चमकती थी और साटन की तरह चिकनी होती थी। कबीर कपास को इतनी बारीक कात सकते थे कि कपड़ा एक अँगूठी के आर-पार निकल सकता था।''[१५]

करघे पर बुनाई

सामग्री और तकनीक : ताना और बाना धागे बुनाई का आधार हैं। ताना धागे मूलत: रेशम और कपास के होते हैं। ब्रोकेड में इस्तेमाल किया जाने वाला बाना धागा सोने या चाँदी या सोने-चाँदी के परत वाले ताँबे के तारों का होता है, जो रेशम के धागे के चारों ओर लपेटा जाता है, जिसे कलाबत्तू कहा जाता है। बुनाई के लिए रेशम के धागे के चारों ओर सोने और चाँदी के धागे को घुमाया जाता है।[१६] निम्न गुणवत्ता वाले कलाबत्तू सोने की परत वाले चाँदी के धागे, पीतल, ताँबे तथा नायलॉन के धागों से बनाए जाते हैं। बनारसी रेशम साड़ी की बुनाई तकनीक एक जटिल प्रक्रिया है। बुनाई की प्रक्रिया कच्चे रेशम के चयन से शुरू होती है, जो कई प्रकार का होता है तथा विभिन्न केन्द्रों से आयात किया जाता है। कच्चे रेशम को विशेष रूप से ब्रोकेड के लिए तैयार किया जाता है और इस प्रक्रिया में काफी धैर्य और श्रम की आवश्यकता होती है। घुमाने की प्रक्रिया से कई प्रकार के धागे बनाये जाते हैं। फिर इसे चरखे पर घुमाने और जाँचने की आवश्यकता होती है। किसी विशेष कपड़े के लिए उपयुक्त धागा तैयार करना एक जटिल प्रक्रिया है।

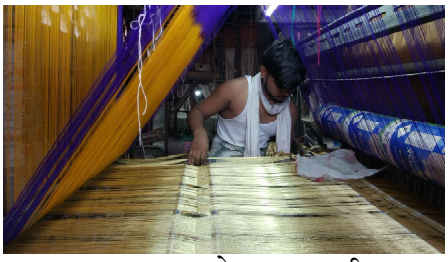
पावरलूम पर धागे लगाता कारीगर

पहले वाराणसी ब्रोकेड में इस्तेमाल किए जाने वाले रंग प्राकृतिक हुआ करते थे, जिनमें विशेष चमक हुआ करती थी। रेडीमेड रासायनिक रंगों ने यहाँ की विशिष्टता को काफी हद तक प्रभावित किया है और कुछ विशेष पारम्परिक शेड अब प्रचलन में भी नहीं दिखते हैं। नए रासायनिक रंग सस्ते तथा उपयोग में आसान होते हैं और इन्हें तैयार करने में समय भी कम लगता है। रंगाई से पहले सूत को पानी में उबाल कर धोया जाता है। इस तरह सूत नरम हो जाता है, साथ ही; इसमें चमक आ जाती है।

जैक्वार्ड पिट लूम पर काम करना पगिया पारम्परिक लूम की तुलना में आसान होता है। बुनकर करघे के नीचे खोदे गए गड्ढे में अपने पैर रखकर जमीन पर बैठता है। बुनकर अपने पैरों से ट्रेडल को हिलाता है, वैकल्पिक रूप से इनमें से एक को उठाता है और दूसरे

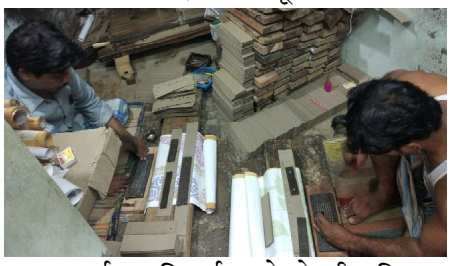
कार्ड पर डिजाईन उकेरने की प्रक्रिया

को दबाता है और एक नया कार्ड, जिस पर डिज़ाइन को छिद्रित किया जाता है, उससे होकर कुछ ताना धागा ऊपर उठ जाता है। ग्राफ़ पेपर पर हस्तान्तरित नक्शबन्द के डिज़ाइन को कार्ड निर्माताओं द्वारा हाथ से छिद्रित किया जाता है। बाने का धागा बोबिन से निकाला जाता है और एक चक्र पूरा करने के लिए सटीक संख्या में ताना धागों से होकर गुजारा जाता है। क्रम को पूरा करने के लिए बाने के धागे को फिर आगे बढ़ाया जाता है।

विभिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न प्रकार के कपड़े हुआ करते थे। पोत-थान, किमखाब का सस्ता संस्करण और कम महँगा भी, अमरू जहाँ सोने और चाँदी की ज़री का उपयोग नहीं किया जाता था, वहीं अबरवान कलाबत्तू में पैटर्न के सीमित हिस्से के साथ रेशम या मलमल से बना होता था। पैटर्न ज्यादातर पुष्प रूपांकनों, लताओं और कभी-कभी मानव आकृतियों या पशु-पक्षियों के होते हैं। बुनाई, रंगाई, छपाई, उभार और कढ़ाई जैसी विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से कपड़ों को सुन्दर बनाने की परम्परा, खासकर साड़ी में विशेष महत्त्व रखती है। ये सभी हस्तशिल्प विधाएँ भारत में सदियों से प्रचलित हैं और इस सन्दर्भ के कई प्रमाण भी उपलब्ध हैं।[१७]

१८वीं शताब्दी तक वाराणसी कपड़ा उद्योग ने कुछ हद तक अपनी पूर्व स्थिति पुन: प्राप्त कर ली। ''मुगल राजकुमारों, उच्च वर्ग के हिन्दुओं, अवध के नवाब के वंशजों और सहयोगियों तथा बनारस में रहने वाले पेशवा के घर से सम्बन्धित रईसों ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।''[१८] नए बाजार और धनी ग्राहकों ने बनारसी किमखाब, ब्रोकेड उत्पादन और उसके व्यापार को प्रोत्साहित किया। साथ ही; बनारस के शासक राजवंश ने कुशल बुनकरों को संरक्षण दिया। १८वीं और १९वीं सदी की शुरूआत के प्रमुख उपभोक्ताओं में साहूकार, राजस्व अधिकारी, महंत, धार्मिक प्रतिष्ठानों के प्रमुख और विभिन्न शासक परिवारों के सदस्य शामिल थे।[१९] ''शादियों पर बनारसी साड़ियों की खरीदारी हमारी परम्परा का हिस्सा रही है। उन सभी महिलाओं के लिए, जिनके लिए साड़ी पहनना एक परम्परा है, 'बनारसी' रखना एक आवश्यकता है।''[२०]

छोटी बूटी की साड़ी

सारांश : हाल के वर्षों में, सही कच्चे माल की खरीद और आपूर्ति में दिक्कत के कारण, कपड़ा उद्योग के सामने चुनौतियाँ कई गुना बढ़ी हैं। इस कारण, मशीन बुनाई तकनीक के आगमन के साथ ही, सामग्री की प्रकृति और उसकी गुणवत्ता से गम्भीर समझौता किया गया है। इसने, निश्चित रूप से; उन पारम्परिक बुनकरों के जीवन को प्रभावित किया है, जो पीढ़ियों से हथकरघा का काम करते रहे हैं। बाज़ार में कुछ ऐसे नकल भी उपलब्ध हैं, जो असली बनारसी के नाम से बेचे जाते हैं। हालाँकि असली बनारसी की समझ रखने वाले ग्राहक पारम्परिक रूप से बुने कपड़े ही पसन्द करते हैं। बनारसी साड़ी और ब्रोकेड वस्त्रों को फैशन डिजाइनरों और कपड़ा विशेषज्ञों द्वारा संरक्षण दिया जाना एक सकारात्मक पहल है। ऐसे कई प्रतिष्ठान हैं, जो मूल रूप से पारम्परिक उत्पादों का व्यापार करते हैं। इनके द्वारा बुनकरों को नए अवसर मिल रहे हैं, जो वाराणसी के वस्त्र उद्योग की निरन्तरता के लिए अच्छा संकेत है। यहाँ के वस्त्र को

फैशनेबल और आधुनिक परिधानों में जगह मिलना और नए प्रयोग का हिस्सा बनाना, निश्चित तौर पर; नए बदलाव के साथ परम्परा के सम्वर्धन में मददगार होगा।

सन्दर्भ-सूची

१. आनन्द कृष्ण तथा विजय कृष्ण– बनारस ब्रोकेड्स, क्राफ्ट्स म्यूजियम, १९६६, पृ. ११
२. कमला एस. डोंगरकेरी– द इंडियन साड़ी, ऑल इंडिया हैण्डीक्राफ्ट्स बोर्ड, १९६१, पृ. ६३
३. आनन्द कृष्ण तथा विजय कृष्ण– op. cit., पृ. ११
४. कमला एस. डोंगरकेरी– op. cit.,पृ. २१
५. आनन्द कृष्ण तथा विजय कृष्ण– op. cit., पृ. ११
६. Ibid., पृ. २५-२६
७. Ibid., पृ. २६
८. जे. होर्टोन राइले, राल्फ फिच, इंग्लैण्ड्स पायनियर टू इण्डिया एण्ड बर्मा, टी फिशर अनविन, १८९९, पृ. १०३
९. कमलादेवी चट्टोपाध्याय (सम्पा.)– हैण्डीक्राफ्ट्स ऑफ़ इण्डिया, ऑल इण्डिया हैण्डीक्राफ्ट्स बोर्ड, १९५९, पृ. ११
१०. देवकी अहिवासी– मलमल जामदानी, शंकर प्रेस, १९७७, पृ. १६
११. आनन्द कृष्ण तथा विजय कृष्ण– op. cit., पृ. ६९
१२. अंजन चक्रवर्ती, हसन अली एलिआस कल्लू हाफिज़ : द मास्टर नक्शबंद ऑफ़ बनारस ब्रोकेड्स, क्राफ्ट्स कॉउंसिल ऑफ़ इंडिया, २००२, पृ. १६
१३. Ibid., पृ. २२
१४. Ibid., पृ. २३
१५. जया जेटली– वोवन टेक्सटाइल्स ऑफ़ वाराणसी, नियोगी बुक्स, २०१५, पृ. ६९
१६. आनन्द कृष्ण तथा विजय कृष्ण– op. cit., पृ. ३८
१७. कमला एस. डोंगरकेरी– op. cit., पृ. २३
१८. आनन्द कृष्ण तथा विजय कृष्ण– op. cit., पृ.३५
१९. अंजन चक्रवर्ती– op. cit., पृ.११
२०. जया जेटली– op. cit., पृ. १४

●

तक्षशिला विश्वविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था की आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था में प्रासंगिकता

डॉ. राघवेन्द्र मालवीय*

सारांश : तक्षशिला उत्तर वैदिक काल में ही एक नगर रूप में विकसित हो चुका था, इसलिए यहाँ विद्वानों का होना स्वाभाविक था और इसी कारण, ज्ञान-चर्चाओं का होना भी सम्भव था। देश-विदेश से विद्यार्थी यहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। यह भारत के ज्ञात इतिहास का सर्व प्राचीन विश्वविद्यालय था, जहाँ काशी, पाटलिपुत्र, मिथिला, राजगृह, उज्जयिनी, चम्पा आदि नगरों के छात्र यहाँ की ज्ञान-गरिमा से परिचित होने के लिए आते थे।

तक्षशिला में प्रधानत: उच्च शिक्षा दी जाती थी। लगभग सोलह वर्ष की अवस्था में छात्र तक्षशिला पहुँचते थे। तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षण का आधार परिवार-प्रणाली थी। एक आचार्य के नियन्त्रण में बीस या पचीस छात्र रहते थे। इस विश्वविद्यालय में शिक्षा की कोई निश्चित अवधि भी नहीं थी। इस विश्वविद्यालय में दिसापोमोक्ख विद्वान् रहते थे। इन विद्वानों की कीर्ति से आकृष्ट होकर ज्ञान-पिपासु छात्र आते थे। तक्षशिला विश्वविद्यालय की शिक्षा का प्रधान उद्देश्य स्वान्त:सुख था, न कि उपाधि प्राप्त करना।

तक्षशिला विश्वविद्यालय में वेदत्रयी, अष्टादश शिल्प, व्याकरण, दर्शन आदि विभिन्न विषय पढ़ाये जाते थे। आयुर्वेद, शल्य चिकित्सा, धनुर्विद्या तथा सम्बद्ध युद्धकला, ज्योतिष, भविष्य, कथन, मुनीमी, व्यापार, कृषि, रथ चालन, इन्द्रजाल, नाग-वशीकरण, गुप्तनिधि-अन्वेषण, संगीत, नृत्य और चित्रकला– अष्टादश शिल्प के अन्तर्गत आते थे।

की-वर्ड : तक्षशिला विश्वविद्यालय, शिक्षा-व्यवस्था, आधुनिक, प्रासंगिकता।

प्रस्तावना– भारतीय शिक्षा का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। यहाँ विभिन्न कालों में विभिन्न प्रकार की शिक्षण संस्थाएँ मिलती हैं। वैदिक काल में विद्या के केन्द्र आश्रम या गुरुकुल थे, जिसमें विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करने के लिए दूर-दूर से आते थे। सुदीर्घकाल तक ये गुरुकुल ही शिक्षण संस्थाओं का कार्य करते रहे। किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में जैसे-जैसे उलझन बढ़ती गयी, लोगों की रुचि अध्ययन के लिए उतनी ही बढ़ती गयी। कालान्तर में; राज्य की राजधानियों या प्रसिद्ध स्थलों पर सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं का उदय हुआ। राजा व सामन्त विद्या को प्रोत्साहन देते थे तथा विद्वानों को राजधानियों में संरक्षण देते थे। इन्हीं परिस्थितियों ने तक्षशिला, पाटलिपुत्र, कन्नौज, मिथिला, कल्याणी, तन्जौर आदि को प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र बना दिया।

भारत के ज्ञात इतिहास का सर्वप्राचीन विश्वविद्यालय उस युग में आधुनिक रावलपिण्डी नगर (पाकिस्तान) से बीस मील दूरी पर उत्तर पश्चिम में अवस्थित था। तक्षशिला प्राचीन समय में गान्धार राज्य की राजधानी थी। वाल्मीकि रामायण के अनुसार– ''तक्षंशिलायां तु पुश्कल पुश्कलावते गन्धर्व देशो। रुचिरे गान्धार विषये च स:।'' अर्थात् भरत ने गन्धर्वों को हटाकर इस देश के पूर्वी और पिश्चमी भागों में पुश्कलावत एवं तक्षशिला नगरों को अपने पुत्र पुष्कल एवं तक्ष के नाम पर बनाया था। महाभारत से पता चलता है कि परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने इसे जीता तथा यहीं अपना प्रसिद्ध नागयज्ञ किया था।

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर– शिक्षक-शिक्षा विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित वि.वि.), प्रयागराज, उ.प्र.

तक्षशिला का इतिहास में प्रसिद्धि का कारण उसका विश्वविख्यात शिक्षा-केन्द्र का होना है, जहाँ जगत-प्रसिद्ध दिसापोमोक्ख विद्वान् रहते थे, जो कि स्वतन्त्र रूप से विद्या ज्ञान देते थे। बौद्ध जातकों (तेलपत्त व सेतकेतु) से पता चलता है कि देश के विभिन्न भागों– शिवि, कुरु, मिथिला, राजगृह, काशी, उज्जयिनी आदि से विद्यार्थी यहाँ शिक्षा प्राप्त करने आते थे। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों– चीन, बेबीलोन, ग्रीक, सीरिया, अरब आदि देशों से भी छात्र यहाँ अध्ययन करने के लिए आते थे। विद्वान् आचार्य व्यक्तिगत रूप से, पारिवारिक प्रणाली के आधार पर छात्रों को शिक्षा प्रदान करते थे। एक विद्वान् के पास सौ छात्र विद्या ग्रहण करते थे। लगभग सोलह वर्ष की अवस्था के विद्यार्थी तक्षशिला विश्वविद्यालय में प्रवेश लेते थे, जिनकी शिक्षण-अवधि ६ से ८ वर्ष तक होती थी। यहाँ जाति-पाँति का कोई बन्धन नहीं था। यहाँ के पाठ्य-विषयों में वेदत्रयी, वेदान्त, व्याकरण, आयुर्वेद, अठारह शिल्प, सैनिक विद्या, ज्योतिष विद्या, कृषि, व्यापार, चिकित्सा, राज विद्या, शल्य विद्या, दर्शन आदि प्रमुख थे।

व्याकरण-पिता पाणिनी, शल्य-विशेषज्ञ जीवक, अर्थशास्त्र के रचयिता एवं सुप्रसिद्ध राजनीतिविद् चाणक्य, बौद्ध विद्वान् वसु बन्धु, कौशल नरेश प्रसेनजित, वैशाली का महाली आदि इसी विश्वविद्यालय के छात्र थे।

लगभग एक हजार वर्षों तक तक्षशिला की ख्याति देश-विदेश में परिव्याप्त रही। सातवीं शती ई.पू. में तक्षशिला को शिक्षा-केन्द्र के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। कई शताब्दियों तक तक्षशिला विश्वविद्यालय ने अपनी ज्ञान-ज्योति देश-विदेश में विकीर्ण की। समय के उतार-चढ़ाव से प्रभावित होते हुए भी यहाँ ज्ञान-ज्योति अवलोकित होती रही। ईसा पूर्व छठीं शताब्दी में पारसियों, ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में शकों ने तक्षशिला नगर पर आक्रमण किया। पश्चिमोत्तर भारत में स्थित होने के कारण तक्षशिला विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा आक्रान्त होता रहा। तक्षशिला विश्वविद्यालय कुषाण वंश के अन्त तक क्रियाशील रहा। पाँचवीं शताब्दी के मध्य हूणों के प्रलयंकारी आक्रमणों से तक्षशिला विद्यालय की गुरुता सर्वदा के लिए विलुप्त हो गयी।

किसी भी समाज में शिक्षा सृजन एवं शक्ति का पुँज होती है। शिक्षा सामाजीकरण, सामाजिक नियन्त्रण, परिवर्तन, व्यक्तित्व-निर्माण, मानव संसाधन के सृजन का महत्त्वपूर्ण उपादन एवं सामाजिक-आर्थिक विकास का सूचक है। शिक्षा व्यक्ति में आलोचना एवं विश्लेषण करने की क्षमता प्रदान करती है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वही व्यक्ति सर्वांगीण विकास कर सकता है, जिसने शिक्षा के द्वारा अन्त:दृष्टि एव आत्मविश्लेषण की क्षमता को विकसित कर लिया हो।

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व राजनैतिक संरचना में कोई भी राष्ट्र अपनी शिक्षा-प्रणाली के आधुनिकीकरण से विमुख नहीं हो सकता। वस्तुत: शिक्षा को सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति के सशक्त साधन के रूप में होना चाहिए। शिक्षा में निरन्तर सुधार एवं परिवर्तन न लाना, उसे उन रूढ़ियों एवं परम्पराओं में बाँध देना है, जिसकी जीवन में कोई प्रासंगिकता ही न हो। अत: शिक्षा को प्रासंगिक बनाये रखने हेतु उसमें अपेक्षित उद्देश्यों को स्थान प्रदान किया जाना चाहिए, जिससे उसे राष्ट्र की आकांक्षाओं के अनुरूप कार्य करने वाली एक प्रक्रिया के रूप में प्रतिस्थापित किया जा सके।

आज की वर्तमान परिस्थिति में शिक्षा का स्तर दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। आज की शिक्षा-व्यवस्था अर्थहीन हो गयी है। आज २१वीं सदी में शिक्षा का अर्थ मात्र डिग्री प्राप्त कर लेना है। ऐसी शिक्षा-व्यवस्था से समाज एवं राष्ट्र का विकास करना असम्भव है। ऐसे में; आज

भी प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था के अनेक ऐसे तत्त्व हैं, जिनको सिद्धान्त और व्यवहार– दोनों दृष्टियों से वर्तमान शिक्षा में स्थान दिया जा सकता हैं। प्राचीन युग में शिक्षा को न तो पुस्तकीय ज्ञान का पर्यायवाची माना गया था और न ही जीवकोपार्जन का साधन। अपितु शिक्षा को वह प्रकाश माना गया, जो व्यक्ति को अपना सर्वांगीण विकास करने, उत्तम जीवन व्यतीत करने और मोक्ष प्राप्त करने में सहायता देती है। प्राचीन भारतीयों का विश्वास था कि शिक्षा शक्ति का एक ऐसा स्रोत है, जो हमारी शारीरिक, मानसिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों और क्षमताओं का निरन्तर एवं सामंजस्यपूर्ण विकास करके हमारे स्वभाव को परिमार्जित करती है और उसे उत्कृष्ट बनाती है। अत: आज की अर्थहीन शिक्षा-व्यवस्था में प्राचीन शिक्षाविदों द्वारा बतायी गयी शिक्षा की संकल्पना की महती आवश्यकता का सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है। अर्थात् यदि हम अपने समाज एवं राष्ट्र का विकास चाहते हैं, तो शिक्षा की उपर्युक्त संकल्पना को कार्यरूप देना होगा, जिसका आज अभाव है।

भारत एक प्रजातान्त्रिक देश है। प्रजातन्त्र की सफलता वहाँ के नागरिकों पर निर्भर करती है। अत: आज यह आवश्यक हो गया है कि हम शिक्षा का ऐसा उद्देश्य निर्धारित करें कि जिससे व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र– तीनों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। आज की शिक्षा-व्यवस्था का उद्देश्य मात्र डिग्री धारण करना और नौकरी प्राप्त करना हो गया है। चारित्रिक एवं नैतिक गुणों का निरन्तर ह्रास हो रहा है। ऐसे में; तक्षशिला विश्वविद्यालय के शैक्षिक उद्देश्य थे– बालक का आध्यात्मिक विकास करना, ज्ञान एवं अनुभूति पर बल, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, चित्तवृत्तियों का शोधन, नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्य की भावना का विकास, सामाजिक कुशलता की उन्नति, राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार। तक्षशिला विश्वविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था में विद्यमान उपर्युक्त शैक्षिक उद्देश्यों को वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में लागू किया जाए, तो नि:सन्देह भारत में भी स्वस्थ्य नागरिकों का निर्माण किया जा सकता है।

पाठ्यक्रम उन सभी क्रिया-कलापों का समूह होता है, जिन्हें अध्यापक एवं छात्र मिलकर शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आयोजित करते हैं। आज की शिक्षा के पाठ्यक्रम उद्देश्यों को प्राप्त करने वाले कम तथा बच्चों के बस्तों के बोझ को बढ़ाने वाले अधिक हैं। वर्तमान पाठ्यक्रम अत्यधिक कठोर होने के कारण यह पुस्तकीय ज्ञान एवं रटने की आवश्यकता पर अत्यधिक बल देता है, जिससे कि बालकों का सर्वांगीण विकास एवं मौलिकता समाप्त हो जाती है। वर्तमान शिक्षा-पाठ्यक्रमों में संस्कार एवं नैतिक तथा चारित्रिक विकास की शिक्षा का अभाव है, जबकि संस्कार ही शिक्षा का मूलाधार है। संस्कारों के आधार पर ही शिक्षा द्वारा बालक का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास होता है। तक्षशिला विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक, धार्मिक, चारित्रिक विषयों के शिक्षण के साथ-साथ भौतिक समृद्धि के लिए भी उचित विषय सम्मिलित थे, जिससे बालक का सर्वांगीण विकास होता था। अत: तक्षशिला विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम से ऐसे तत्त्वों को ग्रहण करके हम आधुनिक भारत के नैतिक, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उत्कर्ष में अद्वितीय योगदान दे सकते हैं।

निष्कर्ष– वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षण-विधि भी एक चुनौती के रूप में खड़ी है। आज भी अधिकांश विद्यालयों में व्याख्यान-विधि का प्रयोग प्रमुख शिक्षण-विधि के रूप में किया जाता है। 'आओ करके सीखें' की पाठ्यचर्याओं को 'पढ़कर या सुनकर समझो' की भावना से पढ़ाकर शिक्षक विषय की आत्मा की हत्या कर देते हैं। ऐसी शिक्षण-विधि से बालकों में रटने

एवं प्रत्याशित उत्तरों को याद करने की विधि को बढ़ावा मिल रहा है। इसके विपरीत; यदि हम प्राचीन तक्षशिला विश्वविद्यालय की विधियों पर दृष्टिपात करें, तो वहाँ कई प्रकार की शिक्षण-विधियाँ, जैसे– श्रवण विधि, मनन विधि, वाद-विवाद विधि, प्रश्नोत्तर विधि, कण्ठस्थीकरण विधि का प्रयोग किया जाता था, जिसके प्रयोग से छात्रों में तार्किक दृष्टिकोण, एकाग्रता, विश्लेषण-संश्लेषण की क्षमता, आत्मावलम्बन, उच्चारण-कुशलता, विस्तृत शब्द-भण्डार, विवेचना आदि मानसिक शक्तियों का विकास होता था, जिससे छात्र ज्ञान के उच्चतम शिखर पर पहुँच जाता था। अत: वर्तमान पाठ्यक्रम के शिक्षण में इन विधियों का प्रयोग किया जाना प्रासंगिक है।

आज के बालक कल के भावी नागरिक हैं। अत: बालकों में स्वतन्त्रता, समानता, न्याय, बन्धुत्व की भावना का विकास किया जाना आवश्यक है। परन्तु आज के बालकों में इसके विपरीत स्थिति देखने को मिल रही है। आज के छात्रों में पढ़ाई के प्रति अरुचि, अनैतिकता, अनुशासनहीनता, अराजकता आदि दुर्गुणों का विकास हो रहा है। 'सुखार्थी वा त्यजेत् विद्या, विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम' का सिद्धान्त अब मान्य नहीं रहा, जबकि प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था में इस बात पर विशेष बल दिया जाता था कि छात्रों का आचरण एवं व्यवहार उत्कृष्ट हो। इसके लिए छात्रों को मर्यादा, शिष्टाचार और आत्मसंयम के नियमों का अनुकरण करने का आदेश दिया जाता था। छात्र काम, क्रोध, मद, लोभ और दूषित विचारों से मुक्त होकर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते थे, जिससे छात्रों में संयम, विनय, सदाचरण, सेवा, समाज, देश-प्रेम, स्वावलम्बन, अनुशासन, सत्याचरण जैसे गुणों का विकास होता था। अत: आज २१वीं सदी के भटके हुए छात्रों के लिए भी उपर्युक्त विचार ग्रहणीय है।

तक्षशिला विश्वविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था पारिवारिक प्रणाली पर आधारित थी, जिसमें छात्रों की अनुशासन भावना और गुरु एवं शिष्य में मधुर सम्बन्ध विश्वविख्यात है। आज की शिक्षा-व्यवस्था में भी इन बातों पर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, क्योंकि आज का शैक्षिक वातावरण अत्यन्त विषाक्त हो चुका है और अनुशासनहीनता का ताण्डव नृत्य सर्वत्र हो रहा है। छात्रों में अनुशासन की भावना का विकास और प्राचीन काल के गुरु-शिष्य सम्बन्धों की पुनर्स्थापना करके इन दोनों दोषों से मुक्ति पायी जा सकती है।

मानव-सम्बन्धों को घनिष्ठता प्रदान करने के लिए पारस्परिक स्नेह और सम्मान की भावनाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। जब शिक्षक एवं छात्र– दोनों मधुर सम्बन्ध के सूत्र में आबद्ध होते हैं, तभी अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया सुचारु रूप से संचालित हो सकती है। यह सत्य है कि आज के शिक्षक एवं छात्र प्राचीन युग के आदर्श तक अक्षरश: नहीं पहुँच सकते, किन्तु दृढ़ निश्चय के साथ उस मधुर सम्बन्ध की ओर अग्रसर होकर उसमें कुछ हद तक सफलता प्राप्त की जा सकती है। अत: छात्रों एवं शिक्षकों को उस आदर्श की दिशा में अग्रसर होना आवश्यक ही नहीं, वांछनीय भी है। परन्तु यह तभी सम्भव है, जब आज के छात्र गुरु-शिष्य सम्बन्धी प्राचीन आदर्श के प्रति निष्ठावान बनें और शिक्षक उस आदर्श के अनुसार सरस्वती-साधना में लीन होकर सरल जीवन व्यतीत करें।

आज समाज में ऊपर से नीचे तक नैतिकता का पतन दृष्टिगोचर हो रहा है। समाज में कोई भी व्यक्ति– चाहे वह नेता हो, मंत्री हो, कर्मचारी हो, छात्र हो, शिक्षक हो अथवा आम जनता– सबके अन्दर नैतिक पतन आ गया है। इस समस्या का समाधान भी तक्षशिला विश्वविद्यालय की

शिक्षा-व्यवस्था द्वारा किया जा सकता है। आज के बालक ही भविष्य के नागरिक हैं। बालकों के अनैतिक होने का मुख्य कारण विद्यालयों में धर्म एवं नैतिक शिक्षा का ज्ञान प्रदान नहीं किया जाना है। धर्म एवं नैतिक शिक्षा के अभाव में बालक पथ-भ्रष्ट हो रहा है। प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था के धर्म, नैतिकता एवं मूल्य सम्बन्धी विचार शाश्वत मूल्यों से अनुप्रमाणित थे, जो मानव-गरिमा एवं विकास के लिए समय सीमा से बाहर न केवल भारत, अपितु सम्पूर्ण मानवता के लिए उपयोगी थे। अत: ऐसे में; आज व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के गिरती नैतिकता की शिक्षा आवश्यक प्रतीत होती है। अत: इस बिन्दु पर भी तक्षशिला विश्वविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था आज की तिथि में प्रासंगिक प्रतीत होती है।

वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में पुस्तकीय तथा रटने के ज्ञान की अधिकता होने के कारण छात्र परीक्षा एवं मूल्यांकन के भय से तनावग्रस्त रहते हैं। दूसरा संकट यह रहता है कि बालक अपना सम्बन्धित विषय एक शिक्षक से पढ़ता है और विषयोपलब्धि एवं मूल्यांकन दूसरा शिक्षक करता है, जबकि प्राचीन काल में विद्यार्थी को जो शिक्षक पढ़ाते थे, वे ही उसका मूल्यांकन भी करते थे। तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षण-प्रक्रिया, ज्ञानार्जन-प्रक्रिया तथा मूल्यांकन-प्रक्रिया– तीनों परस्पर सम्बन्धित थी। परिणामत: बालक का मूल्यांकन सहज, यथार्थ एवं स्वाभाविक होता था। जबकि वर्तमान में, शिक्षार्थी द्वारा सीमित समय में लिखे गये कुछ उत्तरों के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है, जो विद्यार्थी का शुद्ध मूल्यांकन कदापि नहीं हो सकता। अत: इस बिन्दु पर सुधार करने के लिए भी तक्षशिला विश्वविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था की सतत् मूल्यांकन-प्रणाली को स्वीकार किया जा सकता है।

तक्षशिला विश्वविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था नि:शुल्क एवं सार्वभौमिक थी। धन-सम्पत्ति शिक्षा के मार्ग में बाधा नहीं थी, क्योंकि शिक्षा को बाजारू सामग्री कभी नहीं बनाया गया और न ही शिक्षा पर धन के वर्चस्व को स्वीकार किया गया। तक्षशिला विश्वविद्यालय के विकास में राजा तथा प्रजा– दोनों का योगदान रहा। विश्वविद्यालय में विविध स्रोतों से पर्याप्त मात्रा में भूमि, धन, अन्न आदि प्राप्त होते थे। अत: वर्तमान में भी आवश्यक है कि हमारी शिक्षण संस्थाओं को राज्य की ओर से पर्याप्त सुविधाएँ प्राप्त हों तथा जन-साधारण को भी इस पुण्य कार्य में अपनी सेवा प्रदान करनी चाहिए, क्योंकि समाज के समुचित सहयोग के अभाव में किसी संस्था के सफल होने की सम्भावना कम हो जाती है।

विद्यालय शिक्षण का महत्त्वपूर्ण केन्द्र होता है, लेकिन आज की परिस्थिति में विद्यालय विद्यार्जन की दृष्टि से कम, धनार्जन को ध्यान में रखकर अधिक खोले जा रहे हैं। प्राचीन विश्वविद्यालय या शिक्षण संस्थाएँ वैयक्तिक संस्थाएँ थीं, जिन पर किसी भी प्रकार का वाह्य प्रभुत्व नहीं था। इन शिक्षण संस्थाओं के स्वरूप, अध्ययन-अध्यापन-प्रणाली आदि का निर्धारण स्वयं शिक्षकों द्वारा जीवन के उच्च आदर्शों पर किया जाता था। फलत: प्राचीन शिक्षण संस्थाएँ अपने लक्ष्य की प्राप्ति की ओर निर्विघ्न संलग्न रहती थीं। किन्तु वर्तमान शिक्षण संस्थाओं की प्रेरणा अधिकांश बहिर्वर्ती रहती है, जिसके परिणामस्वरूप; शिक्षा का सृजनात्मक स्वरूप प्राय: नष्ट-सा हो गया है और शिक्षा भौतिक सत्ता की चेरी बन कर रह गयी है।

आज भूमण्डलीकरण एवं वैश्वीकरण के दौर में विज्ञान और तकनीकी के कारण देश ही नहीं, अपितु पूरा विश्व एक दायरे में सिमटता नजर आ रहा है। ऐसे में; यह एक चुनौती है कि हमें अपने देश की परिस्थितियों के साथ तो सामंजस्य स्थापित करना ही है, साथ ही;

अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य के अनुरूप शिक्षा को व्यवस्थित करना होगा, जिससे कि अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य के अनुरूप नागरिकों का निर्माण किया जा सके, अन्यथा हम विकास की दौड़ में पीछे रह जाएँगे। इस बिन्दु पर भी हम प्राचीन शिक्षा के ऋणी हैं, जो सदैव से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना की हिमायती रही है। प्राचीन काल से ही 'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे संतु निरामया' की भावना से शिक्षा देने की बात कही जाती रही है, अत: ये विचार भी आज के समाज में पूर्णतया प्रासंगिक हैं।

सन्दर्भ-सूची

- जौहरी व पाठक (१९८९)– भारतीय शिक्षा का इतिहास, मैकमिलन इण्डिया लि., मद्रास।
- चौबे, डॉ. सरयू प्रसाद, डॉ. अखिलेश (२००६)– आधुनिक शिक्षा के दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- प्रेमनाथ (१९६९)– शिक्षा के सिद्धान्त, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- रानी, चन्दा (२०१९)– बौद्ध कालीन शिक्षा-प्रणाली और भारतीय संस्कृति, परिशीलन, वॉ० १५, नं० २, पृ० ४३-४६
- मसीह, याकूब (१९८७)– पाश्चात्य दर्शन का समीक्षात्मक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली।
- रानी, अल्का (२०१६)– मध्यकाल में शिक्षा-व्यवस्था का स्वरूप, इण्टरनेशनल जर्नल फॉर इनोवेटिव रिसर्च इन मल्टीडिस्पिलनरी फील्ड, वॉ० २, इश्शू-८, पृ० १-४
- वर्मा, मधु कुमारी (२०१७)– बौद्ध धर्म के शैक्षिक चिंतन एवं नैतिक मूल्यों की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता : एक अध्ययन, शोध प्रबन्ध, शिक्षा संकाय, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा।
- वीर, श्याम (२०१६)– आधुनिक भारत में बौद्ध धर्म का सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक योगदान, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, वॉ० १, इश्शू-५, पृ० ०६-०९
- शर्मा, विजय (२०११)– प्राचीन भारतीय शिक्षा पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता, जर्नल ऑफ एडवांस एण्ड स्कार्लिली रिसर्च इन एलाइड एजुकेशन, वॉ० १, इश्शू-२, पृ० १-६
- साव, सत्य नारायण (२००६)– आधुनिक परिप्रेक्ष्य में गौतम बुद्ध के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन : विशेष रूप से त्रिपिटक के सन्दर्भ में, शोध प्रबन्ध, शिक्षाशास्त्र, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
- सेनगुप्ता, बृन्दा (२०१६)– बौद्धकालीन शिक्षा-पद्धति, इण्टरनेशनल जर्नल एडवांस इन सोशल साइंस, वॉ० ४, इश्शू-१, पृ० ७-९
- सिंह, अतुल कुमार (२०१७)– बौद्धधर्म : योगदान और विकास, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एकेडेमिक रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट, वॉ० २, इश्शू-४, पृ० ८१८-८२१
- सिंह, धीरेन्द्र (२०१८)– बौद्ध धर्म का समकालीन समाज पर प्रभाव : एक नूतन विमर्श, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांसड् एजुकेशन रिसर्च, वॉ० ३, इश्शू-१, पृ० २३२-२३४
- सिंह, भगत (२०१४)– बौद्ध धर्म के पुरातात्त्विक पुरावशेष : हरियाणा के सन्दर्भ में, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिस्पिलनरी रिसर्च एण्ड डेवेलपमेण्ट, १(२). पृ० १४६-१४८
- सिंह, सुरेन्द्र (२०१७)– ह्वेनसांग के दृष्टिकोण में भारत (६२९ ई.-६४५ ई.). इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड् एजूकेशनल रिसर्च, वॉ० २, इश्शू-६, पृ० ३६६-३६९
- हरवंश (२०१७)– प्राचीन भारत के प्रमुख बौद्ध शिक्षण संस्थान, काव्य इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स, कॉमर्स एण्ड बिजनेस मैनेजमेण्ट, वॉ० ५, इश्शू-१, पृ० २७-२९

●

सतत विकास में निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) की भूमिका : एक अनुसंधानात्मक विश्लेषण

रमाकांत सिंह*, प्रो. सोमेश कुमार शुक्ल**

सार– निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) एक प्राचीन भारतीय अवधारणा है, जिसको पश्चिमी स्वरूप औपनिवेशिक काल में प्राप्त हुआ। भारत में पंजीकृत कम्पनियाँ अपने लाभ का एक निश्चित हिस्सा सीएसआर गतिविधियों में निवेश करके समाज में सुधार कर सकती हैं। वर्तमान अध्ययन सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को प्राप्त करने में सीएसआर की भूमिका की जाँच करता है। वर्तमान विश्लेषण से पता चलता है कि वित्तीय वर्ष २०१८-१९ के दौरान २५१८१ उद्यमों द्वारा ३२०७१ परियोजनाओं के माध्यम से सीएसआर गतिविधियों पर लगभग २०२१७.६५ करोड़ रु. व्यय किए गए थे, जो कि वित्तीय वर्ष २०२२-२३ में बढ़कर २४३९२ उद्यमों के द्वारा ५१९६६ परियोजनाओं के माध्यम से २९९८६.९२ करोड़ रु. व्यय किए गए। सीएसआर गतिविधियाँ सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं, क्योंकि १७ सतत विकास लक्ष्यों में से १५ सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में सीएसआर गतिविधियों द्वारा योगदान दिया जा रहा है। विगत वर्षों में शिक्षा और दिव्यांगजन सेवा, गरीबी-उन्मूलन, स्वास्थ्य-सेवा, भूख और कुपोषण मिटाना, सुरक्षित पेयजल, स्वच्छता आदि विकास-क्षेत्रों को सबसे अधिक सीएसआर अनुदान प्राप्त हुए हैं। इन्हें संयुक्त राष्ट्र द्वारा सतत विकास लक्ष्यों में भी शामिल किया गया है, जो एसडीजी संख्या १, २, ३, ४ और ६ क्रमशः गरीबी-उन्मूलन, भुखमरी, स्वास्थ्य-सेवा, शिक्षा और सुरक्षित पेयजल, स्वच्छता-क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं।

मुख्य बिन्दु – निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व, सीएसआर, सतत विकास लक्ष्य, स्थायी विकास, कुल गुणवत्तापूर्ण कल्याण (TQW-Total Quality Welfare)।

'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न औषधयः।
पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम्।।[१]

हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप समय पर वर्षा हो, फसलें और औषधियाँ फलदायी और परिपक्व हों तथा हमारे जीवन की आवश्यकताओं और सम्पत्ति की सुरक्षा सुनिश्चित हो। अर्थात् जो वस्तु अभी उपलब्ध नहीं है, उसे प्राप्त करें (योग) और जो वस्तु प्राप्त हो चुकी है, उसकी रक्षा करें (क्षेम)।

१९८७ में, पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र विश्व आयोग (UNWCED) ने 'ऑउर कॉमन फ्यूचर रिपोर्ट' प्रस्तुत की, जिसको 'ब्रंटलैण्ड रिपोर्ट' के रूप में भी जाना जाता है। इस रिपोर्ट में 'सतत विकास' को परिभाषित किया गया है– ''सतत विकास वह विकास है, जो भविष्य की पीढ़ियों की अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करता है।''[२] इसमें दो प्रमुख अवधारणा शामिल हैं–

* शोधार्थी– वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
** प्रोफेसर– वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

१. आवश्यकताओं की अवधारणा, विशेष रूप से दुनिया के गरीबों की आवश्यक जरूरतें, जिन्हें सर्वोपरि प्राथमिकता दी जानी चाहिए; और

२. वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्यावरण की क्षमता पर प्रौद्योगिकी और सामाजिक संगठन की स्थिति द्वारा लगाई गई सीमाओं का विचार।

इस प्रकार, सतत विकास– आर्थिक विकास, पर्यावरण संरक्षण और सामाजिक कल्याण के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है।

निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) की अवधारणा एक प्राचीन अवधारणा है, जो वैदिक काल से धार्मिक गुणों और मूल्यों, जैसे– ईमानदारी, प्रेम, सच्चाई, परोपकार, दान और विश्वास के माध्यम से अस्तित्व में है। वैदिक दर्शन के अनुसार, व्यवसाय को वैध और समाज का अभिन्न अंग माना जाता है, लेकिन अनिवार्य रूप से इसे उचित तरीके से कार्य करके समाज के लिए धन उत्पन्न करना चाहिए। वैदिक साहित्य में 'सर्व लोक हितम्' की बात की गयी है। इसी भावना से प्रेरित होकर उद्यमी व व्यवसायी सर्व कल्याण के उद्देश्य से ही धर्मशालाएँ, औषधालय, भोजनशालाएँ, शिक्षा शालाएँ, प्याऊ आदि का निर्माण एवं संचालन करते रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप; आज भी ये संस्थाएँ प्रदर्शित होती रहती हैं। व्यावसायिक सन्दर्भ में यह स्पष्ट है कि यदि संगठन अपने व्यवसाय को नैतिक रूप में संचालित करता है और सामाजिक रूप से उत्तरदायित्व को वहन करता है, तो वह दीर्घकालिक लाभ बनाए रखेगा और लाभ प्राप्त करेगा। वैदिक साहित्य में व्यवसाय पर निम्नलिखित उद्धरण द्वारा कहा गया है–

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः। वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान्।
उदुत्सं शतधारं सहस्रधारमक्षितम्। एवास्माकेदं धान्यं सहस्रधारमक्षितम् ।।[३]

अर्थात् मनुष्य खेती, व्यापार आदि के माध्यम से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर (वायुमण्डल) और नीचे (पाताल) की सभी दिशाओं से अधिकाधिक धन अर्जित करे और उसे विविध प्रयोगों से उचित प्रकार बढ़ाए। जैसे वर्षा का जल नदियों में एकत्रित होकर झरनों, कुँओं और नालियों के माध्यम से खेतों तक पहुँचता है और दरिद्रता को दूर कर समग्र लाभ पहुँचाता है, उसी प्रकार अर्जित धन का सदुपयोग कर समाज की समृद्धि और कल्याण में योगदान देना चाहिए।

तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणां चतस्रो गृहपत्न्याः।
तासां या स्फातिमत्तमा तया त्वाभि मृशामसि।।[४]

अर्थात् सम्पूर्ण कुटुम्ब के लोग जो भी धन-धान्य अर्जित करें, उसमें से उत्तम और अधिकांश भाग अनदेखी विपत्तियों के समय के लिए प्रधान पुरुष (राजा) को सौंप दें। शेष धन को सात भागों में विभाजित करें, जिसमें से तीन भाग शिक्षा, विद्या-वृद्धि और राज्य-प्रबंधन आदि के लिए तथा चार भाग सामान्य जीवन के निर्वाह, जैसे– भोजन, वस्त्र आदि पर व्यय करें। यह वैदिक शिक्षा समस्त मनुष्यों के सुख का मूल है। हम सब एक दूसरे की रक्षा करें और एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या न रखें। धन मूलतः एक साधन है और इसका निरन्तर प्रवाह समाज के कल्याण

के लिए होना चाहिए, ताकि समाज का सामान्य हित प्राप्त हो सके।

वैदिक दर्शन इस बात पर जोर देता है कि– **'शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त संकर। कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह।'**[५] अर्थात् 'मनुष्य सैकड़ों और सहस्त्रों प्रकार के कौशलों को अपनाकर तथा अन्य सहस्त्रों कुशल व्यक्तियों के साथ मिलकर धन-धान्य का संग्रह करे। वह इस संचित सम्पत्ति को उत्तम कार्यों में व्यय करे और सदैव भविष्य और वर्तमान का ध्यान रखते हुए उन्नति के मार्ग पर अग्रसर रहे।' दीर्घकालिक स्थिरता के लिए व्यवसाय-प्रक्रिया प्रतिमान में कार्य और सेवा-गुणवत्ता हासिल की जानी चाहिए, साथ ही; धन अर्जित करने के बाद उसका पुन: वितरण भी किया जाना चाहिए।

वेदांतिक अंत:दृष्टि के आधार पर, सीएसआर को आदर्श रूप से व्यक्तिगत सामाजिक उत्तरदायित्व से शुरू करके वैश्विक सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में प्रतिलक्षित होना चाहिए। परन्तु बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा तुलनात्मक लाभ के आधुनिक सिद्धान्तों से लाभ को अधिकतम करने और धन-संचय की चाहत के कारण सीएसआर की प्रथाओं की उपेक्षा की गयी, लेकिन विश्वयुद्धों के पश्चात् सामाजिक कल्याण और आर्थिक विकास के लिए सीएसआर में रुचि का पुनरुत्थान शुरू हुआ। वर्तमान में; भारत में, सीएसआर को 'कम्पनी अधिनियम-२०१३' की धारा १३५ के आधार पर वैधानिक अनिवार्यता प्राप्त है। कम्पनी अधिनियम-२०१३ की धारा १३५, वित्तीय वर्ष २०१४ से प्रभावी है। आम तौर पर, निगमीय सामाजिक जिम्मेदारी से आशय, समाज के कल्याण के उद्देश्य से व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा की जाने वाली गतिविधियों से है। कैरोल[६] के अनुसार, निगमों के सामाजिक उत्तरदायित्व में आर्थिक, वैधानिक, नैतिक और विवेकाधीन दायित्व शामिल हैं।

संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संगठन (UNIDO) के अनुसार– ''निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व एक प्रबंधन अवधारणा है, जिसके तहत कम्पनियाँ अपने व्यापार-संचालन और अपने हितधारकों के साथ वार्तालाप में सामाजिक और पर्यावरणीय प्रसंगों से सम्बन्धित समस्याओं को एकीकृत करती हैं।'' सीएसआर को आम तौर पर उस प्रणाली के रूप में समझा जाता है, जिसके माध्यम से एक कम्पनी आर्थिक, पर्यावरणीय और सामाजिक अनिवार्यताओं ('ट्रिपल-बॉटम-लाइन-दृष्टिकोण'[७]) का संतुलन हासिल करती है, साथ ही; शेयरधारकों और हितधारकों की अपेक्षाओं को भी पूरा करती है।

सतत विकास के लिए विश्व व्यापार परिषद (WBCSD) के अनुसार– ''कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी व्यवसाय द्वारा नैतिक रूप से व्यवहार करने और आर्थिक विकास में योगदान करने के लिए निरन्तर प्रतिबद्धता है, जिससे कार्यबल (कर्मचारी) और उनके परिवारों के साथ-साथ स्थानीय समुदाय और समाज के जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है।''[८]

अत: हमारा मानना है कि इससे कुल गुणवत्तापूर्ण कल्याण (TQW) की प्राप्ति होती है, जिसका हम ७२०° के आधार पर मापन कर सकते हैं, जिसमें ३६०° कर्मचारी के कल्याण और ३६०° उसके परिवार एवं समुदाय के कल्याण का मापन व अंकेक्षण हम कर सकते हैं।

कम्पनी अधिनियम-२०१३ की धारा १३५ में वर्णित किया गया है कि प्रत्येक कम्पनी-

I. जिसका शुद्ध मूल्य ५०० करोड़ या अधिक है, या

II. जिसका टर्न ओवर १,००० करोड़ या अधिक है, या

III. गत वित्तीय वर्ष के दौरान ५ करोड़ या अधिक का शुद्ध लाभ है,

उसे निर्दिष्ट निगमीय सामाजिक जिम्मेदारी गतिविधियों के लिए गत तीन वित्तीय वर्षों के दौरान उनके औसत शुद्ध लाभ का दो प्रतिशत (२%) न्यूनतम व्यय करना अनिवार्य है।

सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) को २०१५ में संयुक्त राष्ट्र के १९३ सदस्यों द्वारा अपनाया गया तथा जो १ जनवरी, २०१६ से प्रभावी हुआ। '२०३०-सतत विकास हेतु एजेण्डा' के तहत १७ विकास लक्ष्य अर्थात् एसडीजी (Sustainable Development Goals-SDGs) तथा १६९ प्रयोजन (Targets) अंगीकृत किये गए हैं, जिसका लक्ष्य २०३० तक एक अधिक सुरक्षित विश्व का निर्माण करना है। एसडीजी को 'वैश्विक लक्ष्य' भी कहा जाता है और ये लक्ष्य सहस्राब्दी विकास-लक्ष्यों Millennium Development Goals (MDGs) के उत्तराधिकारी हैं, जिन्हें वर्ष २००० में प्रस्तुत किया गया था। इसमें आठ (८) सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (MDGs) थे, जिन्हें वर्ष २०१५ तक हासिल किया जाना था, लेकिन २०१५ तक इन लक्ष्यों को असमान-आसमान रूप से प्राप्त किया गया, इसलिए इन लक्ष्यों को नए नाम 'सतत विकास लक्ष्य' के साथ २०३० तक बढ़ा दिया गया है, जिसमें निम्न १७ लक्ष्य शामिल हैं–

१. गरीबी के सभी रूपों की पूरे विश्व से समाप्ति।
२. भूख की समाप्ति, खाद्य सुरक्षा और बेहतर पोषण और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा।
३. सभी आयु के लोगों में स्वास्थ्य, सुरक्षा और स्वस्थ जीवन को बढ़ावा।
४. समावेशी और न्यायसंगत गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने के साथ ही; सभी को सीखने का अवसर देना।
५. लैंगिक समानता प्राप्त करने के साथ ही महिलाओं और लड़कियों को सशक्त करना।
६. सभी के लिए स्वच्छता और पानी के सतत प्रबंधन की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
७. सस्ती, विश्वसनीय, टिकाऊ और आधुनिक ऊर्जा तक पहुँच सुनिश्चित करना।
८. सभी के लिए निरन्तर, समावेशी और सतत आर्थिक विकास, पूर्ण और उत्पादक रोजगार तथा बेहतर कार्य को बढ़ावा देना।
९. लचीले बुनियादी ढाँचे, समावेशी और सतत औद्योगीकरण को बढ़ावा।
१०. देशों के बीच और भीतर असमानता को कम करना।
११. सुरक्षित, लचीले और टिकाऊ शहर और मानव-बस्तियों का निर्माण।
१२. स्थायी खपत और उत्पादन पैटर्न को सुनिश्चित करना।
१३. जलवायु परिवर्तन और उसके प्रभावों से निपटने के लिए तत्काल कार्रवाई करना।
१४. स्थायी सतत विकास के लिए महासागरों, समुद्रों और समुद्री संसाधनों का संरक्षण और उपयोग।
१५. सतत उपयोग को बढ़ावा देने वाले स्थलीय पारिस्थितिकीय प्रणालियों, सुरक्षित जंगलों, भूमि-क्षरण और जैव-विविधता के बढ़ते नुकसान को रोकने का प्रयास करना।
१६. सतत विकास के लिए शांतिपूर्ण और समावेशी समितियों को बढ़ावा देने के साथ-ही-साथ सभी स्तरों पर इन्हें प्रभावी, जवाबदेहपूर्ण बनाना, ताकि सभी के लिए न्याय सुनिश्चित हो सके।
१७. सतत विकास के लिए वैश्विक भागीदारी को पुनर्जीवित करने के अतिरिक्त; कार्यान्वयन के साधनों को मजबूत बनाना।

चूँकि सीएसआर गतिविधियाँ इन उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करती हैं, इसलिए ये

उद्देश्य सीएसआर गतिविधियों से सम्बन्धित हो सकते हैं। सीएसआर समाज के उत्थान और बेहतरी के लिए व्यावसायिक क्षेत्र का नैतिक व्यवहार है।

साहित्य-समीक्षा– 'De Almeida Barbosa Franco et al' (२०२४) ने अपने अध्ययन में एसडीजी को पूरा करने के लिए रणनीतिक प्रबंधन में गतिशील क्षमताओं के एकीकरण पर प्रकाश डाला है और सुझाव दिया है कि इसे विभिन्न क्षेत्रों में अवशोषित और उपयोग किया जा सकता है। इसके अलावा; यह भी दिखाया है कि कम्पनियाँ केवल SDG १२ (टिकाऊ उत्पादन और खपत) तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सभी SDG से जुड़ी हुई हैं।

Bharti (२०२३) ने पता लगाया कि भारतीय कम्पनियों द्वारा सीएसआर गतिविधियों में व्यय की जाने वाली राशि का अधिकतम हिस्सा सतत विकास से सम्बन्धित लक्ष्यों की प्राप्ति में किया जा रहा है।

Wirba, A. V. (२०२३) ने अपने शोध पत्र 'Corporate Social Responsibility (CSR) : The Role of Government in Promoting CSR' में तर्क दिया गया है कि सीएसआर के चार मुख्य सिद्धान्त या परिशिष्ट हैं– आर्थिक, कानूनी, नैतिक और विवेकाधीन अपेक्षाओं, जिन्हें केवल निगमों के स्वैच्छिक साधनों पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए, बल्कि इन्हें सरकारों द्वारा सुरक्षित और प्रबन्धित करना आवश्यक है, ताकि निगम और उनके कार्यक्षेत्र के समुदायों या समाजों के बीच एक लाभकारी स्थिति बनायी जा सके।

सीएसआर की सर्वोत्तम प्रथाओं को विकसित पश्चिमी देशों से विकासशील देशों में स्थानान्तरित किया जाना चाहिए। हर देश या सरकार को सीएसआर गतिविधियों और एजेण्डों को बढ़ावा देने में अपनी विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और विकास सम्बन्धी स्थितियों का सावधानीपूर्वक ध्यान रखना चाहिए। विकासशील देशों के लिए केवल परोपकारी सीएसआर गतिविधियों के बजाय शैक्षिक, पर्यावरणीय और सामाजिक मुद्दों में योगदान देने वाले व्यवसायों को कर छूट देना महत्त्वपूर्ण है, जिससे सतत विकास का समर्थन करने में सीएसआर केन्द्रीय भूमिका निभा सके।

Niloufar Fallah Shayan, a. M.K. (२०२२) ने अपने अध्ययन मे पाया कि सीएसआर निगमों के वित्तीय प्रदर्शन, पहचान और छवि, प्रतिष्ठा, ब्राण्ड मूल्य में वृद्धि करता है तथा ग्राहक-संतुष्टि और वफादारी को भी प्रभावित करता है तथा इसी बीच SDGs के परिणामस्वरूप; व्यापार में स्थिरता, अर्थव्यवस्था में स्थिरता, वैश्विक संकटों की रोकथाम, श्रम बाजार विस्तार और सार्वभौमिक बाजार का विकास हुआ है। CSR और SDGs एक दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि ये दोनों पर्यावरण-संरक्षण और सामाजिक-आर्थिक विकास को बढ़ावा देते हैं।

Mishra, L. (२०२१) ने भारतीय व्यवसायों द्वारा उपयोग की जाने वाली सीएसआर नीतियों का विश्लेषण किया। यह पाया गया कि व्यवसायों ने सामाजिक, शैक्षिक और स्वास्थ्य सेवा क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, लेकिन पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए बहुत कम प्रयास किए। जाँच में पता चला कि कोई भी कम्पनी SDGs १३ (जलवायु कार्रवाई) और SDGs १४ (पानी के नीचे जीवन) में योगदान नहीं दे रही थी।

Begum (२०२१) ने पता लगाया कि कैसे कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी ने कोविड महामारी के दौरान समाज के सुधार में योगदान दिया। उन्होंने पाया कि व्यवसायों ने उन बच्चों

के लिए तकनीकी उपकरण खरीदे, जो उन्हें खरीदने में सक्षम नहीं थे। अलीबाबा के सह-संस्थापक जैक मा ने कई देशों को चिकित्सा-आपूर्ति और कोरोना वायरस परीक्षण किट दिए। COVID-१९ में टाटा समूह ने १००० करोड़ रु. का योगदान दिया। पूरे COVID-१९ महामारी के दौरान, कई अन्य व्यवसायों ने भी सहायता प्रदान की।

Kolli, S. K. & Srikanth, D. A. (२०२०) ने जाँच की कि कितने भारतीय व्यवसायों ने COVID-१९ में भाग लिया। द्वितीयक डेटा एकत्र करने के बाद, उन्होंने पाया कि कई भारतीय निगमों ने कोविड के दौरान योगदान दिया। सीएसआर प्रयास व्यवसायों के साथ-साथ पूरे देश की सहायता करते हैं। यह व्यवसायों के प्रति उपभोक्ता-निष्ठा को बढ़ावा देने में सहायता करता है।

Mitra, N. & Chatterjee, B. (२०२०) ने पता लगाया कि सीएसआर पहल में भारतीय कम्पनियों की भागीदारी ने सतत विकास लक्ष्यों में कैसे योगदान दिया। उन्होंने पाया कि २०१५-१६ में ५०९७ निगमों ने सीएसआर गतिविधियों पर ९८.२२ बिलियन खर्च किए, जिनमें से ९३.३६ बिलियन का निवेश सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को पूरा करने के लिए सतत विकास से जुड़े क्षेत्रों में किया गया था।

Nimavat, S. (२०१९) ने अपने अध्ययन में बताया कि कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) को आगे बढ़ाने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। सामाजिक, पर्यावरणीय और आर्थिक कारकों को अपनाकर कम्पनियाँ स्थानीय और वैश्विक स्तर पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकती हैं। CSR के माध्यम से व्यवसाय न केवल अपनी नैतिक जिम्मेदारियाँ पूरी करते हैं, बल्कि एक स्थायी और न्यायपूर्ण भविष्य के निर्माण में भी योगदान देते हैं। जैसे-जैसे व्यवसाय CSR को प्राथमिकता देते हैं और सहयोग बढ़ाते हैं, वे SDGs की प्राप्ति की दिशा में प्रगति कर सकते हैं, जिससे वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों का कल्याण सुनिश्चित होता है।

Patil, V., Jauhari, S. & Maheshwari, D. (२०१७) ने सामाजिक-आर्थिक विकास पर कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी के प्रभाव का पता लगाया। उनके अध्ययन के निष्कर्षों के अनुसार, सीएसआर कुछ हद तक ही सामाजिक सुधार और आर्थिक विकास में योगदान देता है। सीएसआर पहल में व्यावसायिक क्षेत्र की भागीदारी अभी भी सीमित है।

अध्ययन का उद्देश्य– वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य भारतीय सामाजिक कल्याण एवं अर्थव्यवस्था के सतत विकास में कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) की भूमिका का विश्लेषण करना है।

अनुसंधान-प्रविधि– सीएसआर योगदान का द्वितीयक समंक राष्ट्रीय सीएसआर पोर्टल (https://csr.gov.in) से प्राप्त किया गया है और सतत विकास लक्ष्यों से सम्बन्धित जानकारी वेबसाइट यानी https://sdgs.un.org से एकत्र की गयी है। अध्ययन के उद्देश्य से विश्लेषण के लिए तालिका के साथ-साथ बार व रेखा चार्ट का उपयोग किया गया है।

समंक विश्लेषण और व्याख्या :

सूची-१

सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) और भारतीय कम्पनी अधिनियम-२०१३ की अनुसूची VII के बीच अंतरसम्बन्ध

सतत विकास लक्ष्य (SDGs)	अनुसूची VII (भारतीय कम्पनी अधिनियम-२०१३)
सतत विकास लक्ष्य-१ 'गरीबी की पूर्णत: समाप्ति'	भूख, कुपोषण और गरीबी को दूर करना और स्वास्थ्य देखभाल को बढ़ावा देना। इसमें स्वच्छता और निवारक स्वास्थ्य देखभाल भी शामिल है। स्वच्छता को बढ़ावा देने और सुरक्षित पेयजल सुलभ कराने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा 'स्वच्छ भारत कोष' की स्थापना की गयी थी। इसमें स्वच्छ भारत कोष में अंशदान भी शामिल है।
सतत विकास लक्ष्य-२ 'भुखमरी की समाप्ति'	
सतत विकास लक्ष्य-३ 'अच्छा स्वास्थ्य और खुशहाली'	
सतत विकास लक्ष्य-४ 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा'	लक्ष्य नं. ४ में शिक्षा को बढ़ावा देना, जिसमें विशेष शिक्षा और विशेषत: बालकों, स्त्रियों, वयोवृद्ध, अन्य रूप से समर्थ व्यक्तियों के बीच व्यावसायिक कौशल बढ़ाने सम्बन्धी नियोजन और जीविका की बढ़ोत्तरी सम्बन्धी परियोजनाओं का सम्वर्धन शामिल है। इसमें केन्द्र सरकार द्वारा अनुमोदित अनुसंधान और विकास परियोजनाओं में योगदान और सार्वजनिक वित्त पोषित विश्वविद्यालयों और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) आदि में योगदान शामिल है।
सतत विकास लक्ष्य-५ 'लैंगिक समानता'	इसमें लैंगिक समानता, स्त्री-सशक्तीकरण का सम्वर्धन, स्त्रियों और अनाथों के लिए गृहों और छात्रावासों का गठन, वरिष्ठ नागरिकों के लिए वृद्धाश्रमों, दैनिक देख-रेख केन्द्रों का गठन और ऐसी अन्य सुविधाएँ तथा सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े समूहों द्वारा सामना की जाने वाली असमानता में कमी लाने के लिए उपाय करना आदि शामिल है।
सतत विकास लक्ष्य-६ 'स्वच्छ जल एवं स्वच्छता'	इस लक्ष्य में पर्यावरणीय सम्पोषण, पारिस्थितिकी संतुलन, वनस्पति, जीव-जंतु का संरक्षण, पशु कृषि वानिकी, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण सुनिश्चित करना तथा मृदा, वायु और जल की गुणवत्ता बनाए रखना, जिसके अंतर्गत गंगा नदी के संरक्षण के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित 'गंगा सफाई कोष' में अंशदान भी शामिल है।
कल्याण,सतत विकास लक्ष्य-७ 'सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा'	
सतत विकास लक्ष्य-९ 'उद्योग, नवाचार और बुनियादी ढाँचा'	
सतत विकास लक्ष्य-१२ 'जिम्मेदारी के साथ उपभोग और उत्पादन'	

सतत विकास लक्ष्य-१३ 'जलवायु, परिवर्तन सम्बन्धी कार्रवाई'	
सतत विकास लक्ष्य-१४ 'पानी के नीचे जीवन'	
सतत विकास लक्ष्य-१५ 'भूमि पर जीवन'	
सतत विकास लक्ष्य-८ 'सभ्य कार्य और आर्थिक विकास'	ग्रामीण विकास परियोजनाएँ
सतत विकास लक्ष्य-११ 'स्थायी शहर और समुदाय'	स्लम क्षेत्र विकास
सतत विकास लक्ष्य-१६ 'शांति और न्याय मजबूत संस्थान'	ग्रामीण खेल-कूद, राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त खेल-कूद, पैरालम्पिक खेल-कूद और ओलम्पिक खेल-कूदों के सम्वर्धन के लिए प्रशिक्षण देना, सशस्त्र बलों के सेवा-निवृत्त सैनिकों, योद्धाओं, प्रभावी विधवाओं और उनके आश्रितों के फायदे के लिए उपाय शामिल है।
सतत विकास लक्ष्य-१० 'देशों के भीतर और देशों के बीच असमानता में कमी करना'	----------
सतत विकास लक्ष्य-१७ 'लक्ष्य प्राप्त करने के लिए साझेदारी'	----------

सूची-१ से पता चलता है कि सतत विकास लक्ष्य-१० और सतत विकास लक्ष्य-१७ को छोड़कर सभी सतत विकास लक्ष्य भारतीय कम्पनी अधिनियम-२०१३ की अनुसूची VII के अन्तर्गत आते हैं, इसलिए सीएसआर गतिविधियाँ और सतत विकास लक्ष्य (SDGs) से जुड़े हुए हैं।

तालिका-१

कम्पनियों के द्वारा विगत वित्तीय वर्ष २०१८-१९ से २०२२-२३ तक सीएसआर गतिविधियों में व्यय की गयी राशि का तुलनात्मक अध्ययन

वर्ष	कम्पनियों की संख्या	कुल सीएसआर परियोजनाएँ	सीएसआर गतिविधि पर व्यय की गई कुल राशि (करोड़ में)
२०१८-२०१९	२५१८१	३२०७१	२०२१७.६५
२०१९-२०२०	२२९८५	३५२९०	२४९६५.८२
२०२०-२०२१	२०८४०	३९३२४	२६२१०.९५
२०२१-२०२२	१९८८८	४४४२५	२६५६९.७८
२०२२-२०२३	२४३९२	५१९६६	२९९८६.९२

स्रोत : https://csr.gov.

जैसा की उपर्युक्त तालिका-१ आकृति-२ में प्रदर्शित किया गया है कि सीएसआर गतिविधियों में वित्तीय वर्ष २०१८-१९ में २५१८१ कम्पनियों के द्वारा कुल ३२०७१ परियोजनाओं के माध्यम से कुल २०२१७.६५ करोड़ रुपये अंशदान किए गए, २०१९-२० में २२९८५ कम्पनियों के द्वारा ३५२९० परियोजनाओं के ma से कुल २४९६५.८२ करोड़ रुपये अंशदान, २०२०-२१ में २०८४० कम्पनियों के द्वारा ३९३२४ परियोजनाओं के माध्यम से कुल २६२१०.९५ करोड़ रुपये अंशदान, २०२१-२२ में १९८८८ कम्पनियों के द्वारा ४४४२५ परियोजनाओं के माध्यम से कुल २६५६९.७८ करोड़ रुपये अंशदान तथा २०२२-२३ में २४३९२ कम्पनियों के द्वारा ५१९६६ परियोजनाओं के माध्यम से कुल २९९८६.९२ करोड़ रुपये अंशदान किया गया। विश्लेषण से पता चलता है कि सीएसआर गतिविधि में योगदान करने वाली कुल कम्पनियों की संख्या में २०१८-१९ से २०२१-२२ तक कमी आयी है तथा २०२२-२३ में अंशदान करने वाली कम्पनियों में वृद्धि हुई तथा साथ में, २०१८-१९ से २०२२-२३ तक कुल सीएसआर परियोजनाओं और इनके माध्यम से अंशदान की गयी राशि में लगातार वृद्धि देखने को मिली है, जिसे आकृति-२ में रेखा व बार आरेख के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

तालिका- २

भारतीय कम्पनियों द्वारा सीएसआर में योगदान (शीर्ष ०५ कम्पनी)

कम्पनी का नाम		अंशदान की गयी राशि (करोड़ रुपये)				
	२०१८-१९	२०१९-२०	२०२०-२१	२०२१-२२	२०२२-२३	कुल
रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड	८४९.३२	९०८.७१	९२२	८१२.३३	७४३.४	४२३५.७६
टाटा कंसल्टेंसी सर्विसेज लिमिटेड	४३४	६०२	६७४	७१९.९२	७७४.४४	३२०४.३६
एचडीएफसी बैंक लिमिटेड	४४३.७८	५३५.३१	३३५.४३	७२२.९९	८०३.१५	२८४०.६६
ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कॉर्पोरेशन लिमिटेड	५८६.८५	५८२.०७	३६१.८२	४३६.१९	४५३.६८	२४२०.६१
एनटीपीसी लिमिटेड	२८५.४६	३०४.९२	२४६.९९	३५६.७१	३१९.९८	१५१४.०६

स्रोत : https://csr.gov.in

जैसा कि तालिका-२ आकृति-३ में दर्शाया गया है कि विगत वर्षों २०१८-१९ से २०२२-२३ तक सीएसआर गतिविधियों में योगदान देने वाली शीर्ष ०५ कम्पनियों में क्रमश: रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड, टाटा कंसल्टेंसी सर्विसेज लिमिटेड, एचडीएफसी बैंक लिमिटेड, ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कॉर्पोरेशन लिमिटेड और एनटीपीसी लिमिटेड हैं। रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड द्वारा २०१८-१९ से २०२२-२३ तक सर्वाधिक कुल ४२३५.७६ करोड़ रुपये

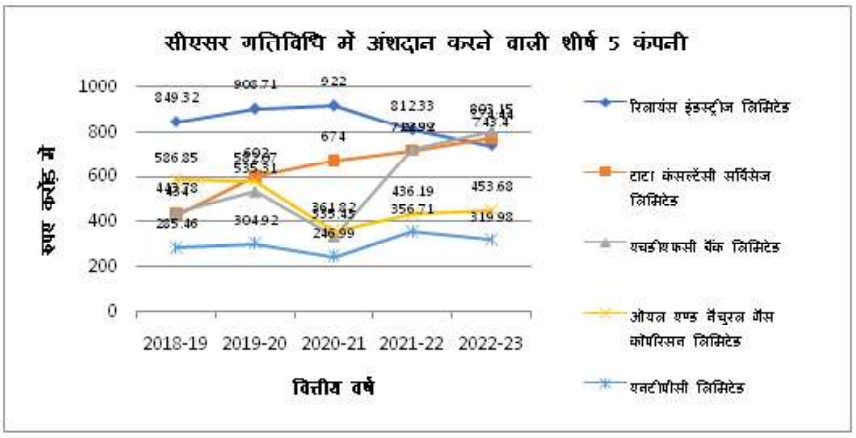

सीएसआर के रूप में अंशदान किए गए, वहीं टाटा कंसल्टेंसी सर्विसेज लिमिटेड के द्वारा कुल ३२०४.३६ करोड़ रुपये, एचडीएफसी बैंक लिमिटेड के द्वारा २८४०.६६ करोड़ रुपये, ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कॉर्पोरेशन लिमिटेड के द्वारा २४२०.६१ करोड़ रुपये तथा एनटीपीसी लिमिटेड के द्वारा १५१४.०६ करोड़ रुपये अंशदान के रूप में दिए गए। अगर हम वित्तीय वर्ष २०२२-२३ के आधार पर देखें, तो सर्वाधिक राशि अंशदान के रूप में एचडीएफसी बैंक लिमिटेड के द्वारा ८०३.१५ करोड़ रुपये, उसके पश्चात् टाटा कंसल्टेंसी सर्विसेज लिमिटेड के द्वारा ७७४.४४ करोड़ रुपये और तृतीय स्थान पर रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड द्वारा ७४३.४ करोड़ रुपये दिए गए।

तालिका- ३

वित्तीय वर्ष २०१८-१९ से २०२२-२३ तक में विकास क्षेत्र के अनुसार व्यय की गई CSR की राशि का तुलनात्मक विश्लेषण

विकास क्षेत्र	२०१८-१९	२०१९-२०	२०२०-२१	२०२१-२२	२०२२-२३
स्वच्छ गंगा निधि	८.११	६.६३	१३.३९	५५.४१	४१.६६
शिक्षा, दिव्यांगजन, आजीविका	८००४.१२	९६३५.३५	८५५९.०५	८६३५.९६	३२०९.५२
खेलों की प्रोत्साहित करना	३१०.१६	३०४	२४३.३९	२९१.७५	५२६.१४
पर्यावरण, पशु-कल्याण, संसाधनों का संरक्षण	१७०४.९	१८०४.६४	१३३६.६	२९०८.९४	२९२१.३८
लैंगिक समानता, महिला सशक्तीकरण, वृद्धाश्रम, असमानताओं को कम करना	५७२.७३	६९४.७१	५२२.५२	७३७.१८	८९३.३३
स्वास्थ्य, भूख, गरीबी और कुपोषण मिटाना, सुरक्षित पेयजल, स्वच्छता	५५४७.८३	६८४०.५६	९२७५.५१	१०१९६.०१	८७३९.३
विरासत, कला और संस्कृति	२२५.९४	९३३.५७	४९३.१३	२४८.०९	४४१.०२
अन्य क्षेत्र (प्रौद्योगिकी इनक्यूबेटर और सशस्त्र बलों और प्रशासनिक उपरिव्यय के लिए लाभ)	१२२.२८	११५.५५	१४६.६६	५५.७८	६३.६५
प्रधान मंत्री राष्ट्रीय राहत कोष (पीएमएनआरएफ)	३२२.१९	७९८.४३	१६९८.३८	१२१४.८४	८१५.८५

ग्रामीण विकास	२४३४.१७	२३०१.०२	१८०५.७१	१८३२.८२	२००५.३७
स्लम क्षेत्र विकास	५१.०६	४२.९४	८८.९५	५८.२९	९३.८४
स्वच्छ भारत कोष	९५.५	५३.४७	१६१.३५	३४.९२	५५.३२
कोई अन्य केन्द्रीय सरकार निधि	७३१.०६	९३२.१६	१६१८.१७	३०९.२२	१७९.०२
एनईसी/उल्लेख नहीं किया गया	८७.६१	५०२.७९	२०३.१४	०.५९	१.५

स्रोत : https://csr.gov.in

२०१८-१९ से २०२२-२३ तक विभिन्न विकास क्षेत्रों में सीएसआर व्यय को तालिका-३ और आकृति-४ में प्रदर्शित किया गया है, जिसका विश्लेषण सरकार की प्राथमिकताओं और नीतिगत दृष्टिकोण पर प्रकाश डालता है। स्वच्छ गंगा निधि में २०२१-२२ में व्यय (रु. ५५.४१ करोड़) में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, लेकिन २०२२-२३ में यह घटकर रु. ४१.६६ करोड़ रह गया, जो नदी पुनर्जीवन कार्यक्रमों में असंगत वित्त पोषण को दर्शाता है। वहीं शिक्षा, आजीविका और दिव्यांगजन जैसे क्षेत्रों में लगातार वृद्धि देखी गयी, जिसमें २०२२-२३ में रु. १३,२०९.५२ करोड़ का उच्चतम व्यय दर्ज किया गया। यह मानव पूँजी विकास पर सरकार के मजबूत ध्यान को दर्शाता है।

आकृति-४

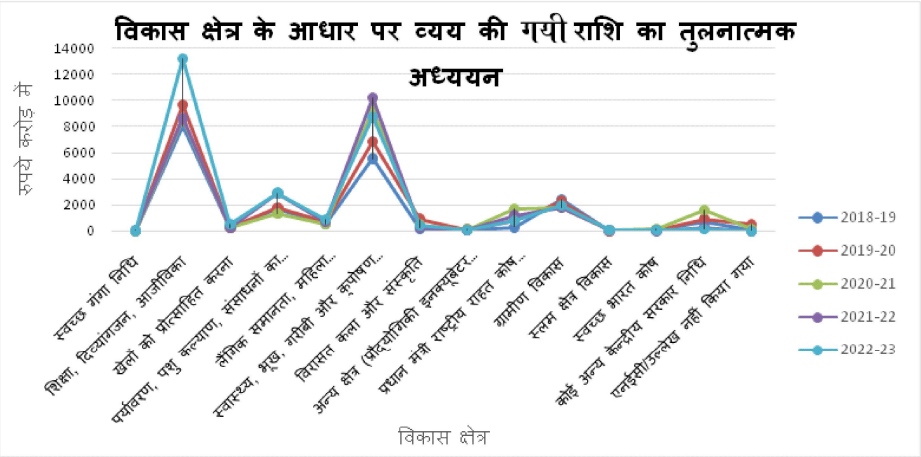

खेलों का प्रोत्साहन क्षेत्र में व्यय आस्थर रहा, लेकिन २०२२-२३ में रु. ५२६.१४ करोड़ की वृद्धि दर्शाती है कि खेलों में नई पहलों या आयोजनों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसी तरह, पर्यावरण और संसाधनों के संरक्षण में २०२०-२१ और २०२१-२२ के बीच व्यय दोगुना हुआ और २०२२-२३ में यह स्थिर रहा, जो स्थिरता के प्रति बढ़ती प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

लैंगिक समानता और महिला सशक्तीकरण के क्षेत्र में धीरे-धीरे वृद्धि हुई, जो २०२२-२३ में रु. ८९३.३३ करोड़ तक पहुँच गयी। यह असमानताओं को कम करने और महिलाओं को सशक्त बनाने की नीतियों के साथ मेल खाता है। हालाँकि स्वास्थ्य और स्वच्छता में महामारी (कोविड़-१९) के दौरान (२०२१-२२ में रु. १०,१९६.०१ करोड़) सबसे अधिक व्यय किया गया, लेकिन २०२२-२३ में यह घटकर रु. ८,७३९.३ करोड़ रह गया। यह महामारी के बाद स्वास्थ्य-सेवाओं को बनाए रखने में कमी को दर्शाता है। सांस्कृतिक विरासत में २०१९-२० के दौरान रु. ९३३.५७ करोड़ का व्यय हुआ, लेकिन इसके बाद इसमें कमी देखी गयी, जो

सांस्कृतिक संरक्षण में असंगत प्राथमिकता को दर्शाता है।

महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों, जैसे ग्रामीण विकास और स्लम क्षेत्र विकास को अपेक्षाकृत कम वित्त-पोषण प्राप्त हुआ, २०२२-२३ में क्रमशः रु. १,८००-२,४०० करोड़ और रु. ९३.८४ करोड़। इसी तरह, स्वच्छ भारत कोष के व्यय में गिरावट देखी गयी, जो २०२०-२१ में रु. १६१.३५ करोड़ से घटकर २०२२-२३ में रु. ५५.३२ करोड़ रह गया। यह स्वच्छता पर कम होते ध्यान को दर्शाता है। अन्य केन्द्रीय सरकारी निधियों का व्यय भी असामान्य रूप से घटा, जबकि अनिर्दिष्ट निधियों (एनईसी) का व्यय २०१९-२० में रु. ५०२.७९ करोड़ से २०२२-२३ में रु. १.५ करोड़ तक गिर गया, जो सख्त निगरानी या विवेकाधीन खर्च में कमी का संकेत है।

कुल मिलाकर शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण जैसे क्षेत्रों में सकारात्मक प्रवृत्तियाँ देखी गयीं, लेकिन अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों, जैसे– स्वच्छता, सांस्कृतिक धरोहर और ग्रामीण विकास में असंगतता या ठहराव देखा गया। यह संसाधनों के न्यायसंगत और दीर्घकालिक आवण्टन की आवश्यकता को रेखांकित करता है। यह सुनिश्चित करने के लिए एक संतुलित और परिणाम-उन्मुख दृष्टिकोण आवश्यक है कि सभी क्षेत्रों में समग्र विकास हो। इन व्यय की प्रभावशीलता का आकलन करने और प्रभावी नीतियों के लिए सिफारिशें प्रदान करने के लिए आगे के शोध और मूल्यांकन की आवश्यकता है।

निष्कर्ष : इस अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि भारत में सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) की प्राप्ति में निगमीय सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय कम्पनी अधिनियम-२०१३ (अनुसूची VII) के अनुसार, सीएसआर पहले गरीबी-उन्मूलन, भूख मिटाने, स्वास्थ्य-सेवाओं, शिक्षा और स्वच्छ जल एवं स्वच्छता जैसे प्रमुख क्षेत्रों में योगदान करती है, जो सीधे एसडीजी १, २, ३, ४ और ६ से सम्बन्धित है। विश्लेषण से पता चलता है कि सीएसआर पर व्यय और परियोजनाओं की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है, जो सामाजिक कल्याण और सतत विकास के प्रति कम्पनियों की बढ़ती प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

हालाँकि, अन्य महत्त्वपूर्ण एसडीजी, जैसे– जलवायु-परिवर्तन, जैव-विविधता संरक्षण और शहरी विकास के लिए संसाधनों के असमान आवण्टन की समस्या बनी हुई है। भारत के सीएसआर ढाँचे में एसडीजी-१० (असमानताओं को कम करना) और एसडीजी-१७ (वैश्विक साझेदारी) को छोड़कर लगभग सभी सतत विकास लक्ष्य शामिल हैं, जिससे इसके व्यापक कवरेज की पुष्टि होती है।

अध्ययन यह निष्कर्ष निकालता है कि सीएसआर कम्पनियों और समाज के मध्य एक पुल का कार्य करता है, जो सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय प्रगति को प्रोत्साहित करता है। हालाँकि, सतत विकास को सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिए संसाधनों का संतुलित आवण्टन, सतत मूल्यांकन और सभी हितधारकों के बीच सहयोगात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है।

उपर्युक्त विश्लेषण एवं निष्कर्ष के उपरान्त हमारा ये सुझाव है कि सीएसआर के अन्तर्गत स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर ही सघन कार्य किया जाए, क्योंकि 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है और स्वस्थ मस्तिष्क में ही विद्या-अध्ययन की ऊर्जा समाहित रहती है।' सीएसआर के माध्यम से जो भी पुनर्निर्माण के कार्य कराए जाएँ, वे स्थायी तौर पर होने चाहिए,

जिसका लाभ समाज दीर्घकाल तक प्राप्त कर सके।

सन्दर्भ-सूची

१. Bharti. (2023, January). Role of CSR in Sustainable Development : a Study of Selected Indian companies. journal of emerging technologies and innovation research, 10(1), 283-286.

२. De Almeida BaRosa Franco, J., Franco, A., Junior, Battisteòe, R. a. G., & Bezerra, B. S. (2024). Dynamic Capabilities: Unveiling Key Resources for Environmental Sustainability and Economic Sustainability, and Corporate Social Responsibility towards Sustainable Development Goals. Resources, 13(2), 22. https://doi.org/10.3390/resources13020022

३. Fallah Shayan, N., Mohabbati-Kalejahi, N., Alavi, S., & Zahed, M. A. (2022). Sustainable development goals (SDGs) as a framework for corporate social responsibility (CSR). Sustainability, 14(3), 1222.Begum,S.(2021). CSR contribution towards the normal cyandup liftment of the society during COVID-19 pandemic.Pal Arch's Journal of Archaeology of Egypt/Egyptology, 18(09), 16–27.

४. Ganesh, M. K. & V. Venugopal, B. (2024). Chaòenges, Practice and Impact of Corporate Social Responsibility on Sustainable Development of Environment and Society. Revista De Gestão Social E Ambiental, 18(1), e4885. https://doi.org/10.24857/rgsa.v18n1-067

५. https://csr.gov.in

६. https://sdgs.un.org

७. https://www.mca.gov.in/Ministry/pdf/CompaniesActNotification3_2014.pdf

८. Kolli, S. K., & Srikanth, D. A.(2020). The Participation of Indian Firms During Covid-19 Pandemic-A Corporate Social Responsibility Perspective. Clinical Medicine, 07(08).

९. Mishra,L.(2021).Corporatesocialresponsibilityandsustainabledevelopmentgoals : A study of Indian companies. Journal of Public Affairs, 21(1). https://doi.org/10.1002/pa.2147

१०. Mitra, N. & Chatterjee, B. (2020). India's Contribution to the Sustainable Development Goals (SDGs) With Respect to the CSR Mandate in the Companies Act, 2013. In S.O. I dowu, R. Schmidpeter, & L.Zu(Eds.), The Future of the UN Sustainable Development Goals (pp.383–396). Springer International Publishing. https://doi.org/10.1007/978-3-030-21154-7_19

११. Muniapan, B. (2013). The Roots of Indian Corporate Social Responsibility (CSR) Practice from a vvedantic Perspective. In CSR, sustainability, ethics & governance (pp. 19–33). https://doi.org/10.1007/978-3-319-01532-3_2

१२. Muniapan, B., & Dass, M. (2008). Corporate Social Responsibility: a philosophical approach from an ancient Indian perspective. International Journal of Indian Culture and Business Management, 1(4), 408. https://doi.org/10.1504/ijicbm.2008.018622

१३. Niloufar Fallah Shayan, a. M.-K. (2022). Sustainable Development Goals (SDGs) as a Framework for Corporate Social Responsibility (CSR). Sustainability, 14(3), 1222.

१४. Nimavat, S. (2019). Role of CSR in Sustainable Development [Journal-article]. IJRAR- International Journal of Research and Analytical Reviews, 6(1), 480–484. http://ijrar.com/upload_issue/ijrar_issue_20544414.pdf

१५. Patil, V. Jauhari, S. & Maheshwari, D. (2017). CSR ActivitiesanditsImpacton

Socioeconomic Upliftment : An Integrated Review. Learning Community-An International Journal of Educational and Social Development, 8(2), 65.https://doi.org/10.5958/2231-458X.2017.00009.4

१६. Tripathi, N. C. Corporate Social Responmsibnility : The Ancient Indian Perspective.

१७. WiRa, A. V. (2023). Corporate Social Responsibility (CSR): The Role of Government in promoting CSR. Journal of the Knowledge Economy. https://doi.org/10.1007/s13132-023-01185-0

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. यजुर्वेद/अध्याय:२२/मन्त्र:२२

२. Brundtland, G. H. (1987). Our common future world commission on environment and development.

३. (अर्थवेद ३/२४/३)

४. (अर्थवेद ३/२४/६)

५. (अर्थवेद ३/२४/५)

६. Carroll, A. B. (1991). The pyramid of corporate social responsibility: Toward the moral management of organizational stakeholders. Business horizons, 34(4), 39-48.

७. Elkington, J. (1997). Cannibals with forks – Triple bottom line of 21st century business. Stoney Creek, CT: New Society Publishers.

८. World Business Council for Sustainable Development (2000) • social-responsibility.at

●

Vishwaguru Bharat : A Tectonic Shift in Attitude

Dr. Anuradha Bapuly*

We have heard the phrase 'Sone ki Chidiya' so many times in our lives, it sometimes felt cringe worthy. When we looked around ourselves, we found poverty, lack of respect for the rule of law and corruption everywhere. But this wasn't always the case. According to a study by British economist Angus Maddison, India was the biggest economy till 1000 AD contributing 28% to the world. By 1700 AD Indian share came down to 24% and by 1820 India's share in the world economy declined to 16%. In 2008, India's share in the world economy was a mere 6.7% while the Indians made up for 16% of world's population.[1] Things looked gloomy everywhere and people were dejected to the core. India and China are the only surviving ancient civilizations. While China has grown in leaps and bounds in the last 3 decades, India was held back due to political reluctance. The political class thought that it suits them if the populace remains poor and depends on the government provided doles.

Rebuilding the confidence : The events of the last few years have made the common citizens to believe in the 'India Story'. The first instance was the idea called 'Swachh Bharat Mission (SBM)'. When it was initiated on 2nd October 2014, millions of households in the country were without toilets. The mission was to build toilets in each house which lacked one. When the project was launched, it appealed to the private sector too and they took it up as part of their Corporate Social Responsibility (CSR) program. As on 13thJune 2024, over 116 million household toilets and 2,38,756 Community Sanitary Complexes had been built under SBM.[2]Cleanliness has been normalized amongst the Indians. One can find the effects of Swachh Bharat in the Railway premises and on the trains which have become a lot cleaner than what it used to be earlier. Even the municipal corporations and municipalities are competing amongst themselves to make their cities and towns garbage free. Every municipal body is vying for the coveted Swachh Survekshan awards.

The biggest initiative was the JAM trinity, which is an abbreviated form of Jan Dhan Account, Aadhaar, and Mobile, which has totally transformed India and it has beenpropelled into one of the most digital-savvy countries in the world. The government started with opening of Jan Dhan accounts for the people who did not have a bank account. Then it focused on Aadhaar based identity so that it could eliminate the ghost accounts through which middlemen were siphoning off the money which was being spent on welfare schemes. Last was the impetus given to faster

* Assistant Professor- Department of Sociology, Vasant Kanya Mahavidyalaya, Kamachha, Varanasi, U.P.

and cheaper mobile connectivity. This has enabled the government to move the money to the beneficiary account digitally as part of Direct Benefit Transfer schemes. In FY23-24, ¹ 6,85,316 crore was transferred for316schemes to the beneficiary accounts.[3]

Today, India sees the highest number of digital transactions in the world. India transacted ¹ 139,204 billion through UPI alone in FY22-23.[4]

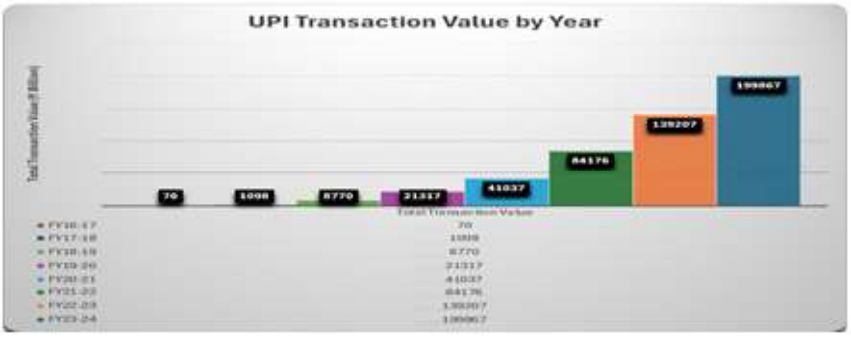

When the developed countries were struggling, India seamlessly provided 2.2 billion COVID-19 vaccine doses to its citizens.[5] When the developed countries were struggling, India leveraged its CoWin platform for registration and keeping a track of the vaccinated population. Even the vaccines were produced in India.

India was also one of the first countries that came to the rescue of the global south when the COVID-19 pandemic struck the world. When the developed countries were hoarding vaccine doses and turned a blind eye towards the citizens of the developing countries, India, with the spirit of 'Vasudhaiva Kutumbakam' (the whole world is one single family), started the 'Vaccine Maitri' initiative to help the countries who were in dire need of COVID-19 vaccines. As the pharmacy of the world, India supplied over 292 million does to 100 countries and UN peacekeepers.[6]This includes the doses that were given to the developing countries as part of Government of India's grant.

Government of India undertook many more projects and schemes that have brought in significant improvement in the lives of common citizens:

- Under the Deen Dayal Upadhyaya Gram Jyoti Yojana (DDUGJY) 2.8 crore households had been electrified. Many of these villages were in the far-flung areas.

● Another initiative that the Government of India undertook is the Jal Jeevan Mission which aspires to provide tapped water to over 161 million households of the country.[7] In the last five years, 116 million households have been provided with tap water connections.

● During COVID-19 pandemic, the Government of India started the scheme known as Pradhan Mantri Garib Kalyan Ann Yojana (PMGKAY). When all the countries were struggling with high levels of inflation, PMGKAY provided food grains for free to 800 million people. This initiative ensured that even the poorest of poor people had enough food and nobody perished due to starvation.

A bright spot in the world economy : When the COVID-19 struck the world, like all the other countries. India too had to undergo a few months of lockdown. This severely impacted economic activities. Indian economy suffered hugely, and the GDP saw a decline of 23.9% in Q1FY2020-21. In the next quarter, the GDP declined further by 7.5%. These were major jolts to the economy. But within a year India bounced back with 20.1% growth in Q1FY2021-22. Just after the pandemic the world economy had to face the effects of Russia-Ukraine conflict. Even though the west was pressurizing India to cut off all ties with Russia, India managed to fend off these pressure tactics and became the voice of the global south. India managed to keep inflation under check and managed to maintain a good rate of growth. It is being estimated that if India continues to maintain its current rate of GDP growth, then India can become a $40 trillion economy by the end of 'AmritKaal' (2047). As per the latest data released by the National Statistical Office, India's GDP grew by 8.2% in FY23-24 which makes it the fastest growing large economy in the world.

As per World Economic Outlook (April 2024) estimates of International Monetary Fund (IMF), India's GDP should surpass Japan and Germany by the year 2028 to become the third largest economy in the world.[8]

India is forging ahead : In the last few years, we have seen India launching Mangalyaan (Mars orbiter), Chandrayaan, and hundreds of satellites in the lower, medium, and geostationaryearth orbits. Many Indian startups have also started collaborating with ISRO and a few of them have built their own rockets and satellites. Indian startup ecosystem is able to make its own rocket engines and launch them successfully.

India has come up with Production Linked Incentive (PLI) scheme for almost all the sectors.It has established India as a major manufacturing country.[9]A few achievements to ponder on: India is the 5th largest economy, 2nd largest steel producer, 4thlargest automobile manufacturer, and 13th largest exporter of pharmaceutical products.

India is focusing on 'Amtnirbharta' so that it can provide employment to its citizens, grow its economy, and it will reduce dependence on other countries. Semi high-speed train 'Vande Bharat', which was designed and developed in India, is running all over the country and new routes are being added every month. India is also going in for rapid indigenization of defence items which are beingprocured by the armed forces. India's defence exports have crossed $2 billion.[10]

In the recently conducted General Elections, over 600 million Indians had voted to choose their Member of Parliaments. The world acknowledged the fairness in which the Election Commission of India had conducted these elections. Indians are way more confident and aspirational now than a decade ago. Every Indian aspires for a better life, and they are quite vocal about it. India's won't accept mediocrity in services provided to then by the executive.

References

1. Angus Maddison, 2007, Contours of the World Economy 1-2030 AD: Essays in Macro-Economic History, The impact of Asian Trade on Europe, 1500-1820
2. Toilets Built Under Swachh Bharat Mission, Ministry of Jal Shakti, https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage. aspx? PRID=1797158#: ~: text=About%2010.9%20crore%2 0individual% 20household, country%20under%20SBM%20(G)
3. Direct Benefit Transfer dashboard, https://dbtbharat.gov.in/
4. UPI Product Statistics, https://www.npci.org.in/what-we-do/upi/product-statistics
5. Co-Win dashboard, https://dashboard.cowin.gov.in/
6. Vaccine supply data, Ministry of External Affairs, https://www.mea.gov.in/vaccine-supply.htm
7. Jal Jeevan Mission dashboard, https://ejalshakti.gov.in/jjmreport/JJMIndia.aspx
8. IMF World Economic Outlook (April 2024) https://www.imf.org/external/datamapper/NGDPD@WEO/WEOWORLD
9. Top 10 manufacturing countries, Shiphub, https://www.shiphub.co/top-10-manufacturing-countries/
10. Atmnirbharta on the rise, Ministry of Defence, Press Information Bureau, https://pib.gov.in/PressReleaseIframe Page.aspx? PRID= 1912885

●

Emerging Narrative Structures in Digital Media with Particular Reference to *The Ramayana.*

Dr. Nisha Singh*

Abstract : This research article examines the evolution of narrative structures in digital media through the lens of *The Ramayana*, one of the most significant ancient epics from South Asia. As traditional narratives migrate to digital platforms, they undergo transformations that reflect both technological capabilities and contemporary cultural values. This study analyzes how *The Ramayana's* complex narrative architecture—with its nested stories, multiple perspectives, and moral frameworks—is being reimagined across various digital formats including video games, interactive narratives, social media, and transmedia storytelling. Drawing on narrative theory, digital humanities methodology, and cultural studies approaches, the research identifies five key patterns of narrative restructuring : hyperlinked narratives, multilinear storytelling, participatory elaboration, procedural adaptation, and immersive worldbuilding. These emerging patterns demonstrate how ancient narrative strategies find new resonance in digital environments while simultaneously being transformed by the affordances of digital media. The findings suggest that digital adaptations of *The Ramayana* represent not merely technological translations but cultural negotiations that both preserve and reinvent traditional storytelling paradigms.

Keywords : Digital media, narrative structure, Ramayana, interactivity, hyper-textuality, multimodality, cultural heritage, Digital storytelling, narrative structure, *The Ramayana*, transmedia, interactive narrative, cultural adaptation, epic literature, digital humanities

The rapid evolution of digital media has created innovative narrative structures that challenge traditional linear methods, fundamentally transforming the storytelling landscape. This paper reinterprets *The Ramayana*, a pivotal epic in Indian mythology, by analyzing the novel narrative forms in digital media.

The enduring narratives of *The Ramayana* have been reinterpreted in the digital realm via multimedia adaptations, immersive experiences, and interactive platforms. The differentiation among author, text, and reader has diminished due to these novel formats, which enable the audience to engage with the narrative in dynamic and non-linear manners. The study examines how the unique affordances of digital media—such as hypertextuality, interactivity, and multimodality—facilitate the analysis

* Head- Department of English & Other Foreign Languages, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi, U.P.

and reconstruction of *The Ramayana*'s narrative structure.

This paper investigates specific digital adaptations of *The Ramayana*, analyzing how these novel storytelling forms may alter our understanding of the epic and promote a more personalized and participatory engagement with its varied characters, themes, and symbolic elements. The research additionally investigates the impact of these breakthroughs on the interpretation, dissemination, and conservation of cultural heritage narratives in the digital age.

The digital revolution has significantly transformed the creation, dissemination, and experience of narratives. Conventional linear narratives have transformed into intricate, multimodal frameworks that leverage the interactive and multimedia features of digital platforms. This transition is especially apparent in the adaptation of ancient epics, which must reconcile technology disparities as well as significant cultural and historical gaps. *The Ramayana*, authored by the sage Valmiki some 2,500 years ago, exemplifies one of humanity's most persistent narrative frameworks—a multifaceted epic that has been perpetually reinterpreted across many cultural settings throughout South and Southeast Asia.

The Ramayana, as a foundational literature with notable adaptation across time, serves as an exemplary framework for analyzing new narrative forms in digital media. The transition from oral tradition to palm-leaf manuscripts, printed books, television serials, and currently digital platforms exemplifies an ongoing process of remediation that reflects wider cultural and technological advancements. The epic's intrinsic storytelling characteristics—such as framing stories, embedded narratives, diverse perspectives, and episodic structure—render it especially amenable to adaptation into digital formats that emphasize nonlinearity, interactivity, and user engagement.

This research examines the reimagining of *The Ramayana*'s narrative structure in digital environments and how these adaptations mirror broader trends in digital storytelling. This study concentrates on a particular epic to elucidate the intricate negotiations between conventional narrative frameworks and novel digital formats, examining issues of cultural authenticity, narrative coherence, and the changing dynamics between storytellers and audiences in digital contexts.

Theoretical frameworks for comprehending digital narratives have advanced considerably since the foundational contributions of hypertext theorists such as George Landow (1992) and Espen Aarseth (1997), who highlighted the nonlinear and ergodic characteristics of digital texts. Murray's (1997) seminal notion of "cyberdrama" characterized digital narratives as arising from the procedural, participative, geographical, and encyclopedic capabilities of computer environments. Recently, Ryan

(2015) has created a thorough framework for digital narratology that examines both the continuities and discontinuities between traditional and digital narrative forms.

Bolter and Grusin's (2000) idea of remediation offers a valuable framework for comprehending the continual transformation of *The Ramayana* across various media. Their notion of the "double logic" of remediation—concurrently obscuring and highlighting the medium—clarifies how digital copies of *The Ramayana* both respect and alter the original story.

The Ramayana serves as a "meta-text," as characterized by Ramanujan (1991), a narrative structure that produces countless variations while preserving identifiable fundamental components. Pollock's (2006) examination of the Sanskrit Ramayana underscores its intricate narrative structure, featuring nested tales, parallel narratives, and repeating themes. Richman's (2001) anthology of articles on various Ramayana variants illustrates the epic's ongoing adaptation to mirror regional cultures and historical circumstances throughout South and Southeast Asia.

The epic's conventional structure consists of seven books (kandas) that chronicle the life of Prince Rama from birth to exile, the kidnapping of his wife Sita by the demon king Ravana, the ensuing conflict, and Rama's eventual return to govern his realm. This structure employs several storytelling devices, including prophesies, flashbacks, nested narratives (such as Hanuman recounting Rama's tale), and numerous perspectives that depict events via the viewpoints of different characters.

Research on digital adaptations of traditional storytelling has broadened to encompass a variety of cultural traditions beyond Western-centric models. Salter (2014) analyzes the transformation of traditional storytelling in digital game adaptations via procedural rhetoric and player agency. Miller's (2008) research on digital storytelling highlights the social and interactive aspects of narrative creation in digital contexts.

In South Asian contexts, Chaturvedi (2016) has recorded the migration of Indian mythological narratives to digital gaming platforms, whilst Viswamohan and Wilkinson (2017) have examined transmedia adaptations of Hindu epics in modern India. These studies emphasize how digital adaptations manage the conflicts among cultural authenticity, commercial demands, and technological capabilities.

Despite extensive research on *The Ramayana* as a narrative tradition and on digital storytelling as a discipline, there is a paucity of literature that systematically examines the reimagining of specific narrative forms from *The Ramayana* in digital environments. This paper attempts to fills the gap by identifying distinct narrative patterns that arise when the traditional structures of *The Ramayana* intersect with the affordances of digital media.

This research employs a mixed-methods approach that combines narrative analysis, digital humanities techniques, and comparative media studies.

The conventional structure of *The Ramayana* comprises multiple interrelated events and character interactions that are inherently suited to hyperlinked organizing. Digital adaptations such as the "Ramayana Encyclopedia" app and the "Virtual Ramayana Archive" convert these linkages into clear hyperlinks, enabling users to traverse the narrative based on their preferences.

These hyperlinked adaptations externalize the internal cross-references that have consistently defined the epic. In Valmiki's original text, allusions to Rama's lineage link to prior events; in digital adaptations, these transform into tangible routes for users to navigate. One developer questioned stated: "The challenge was not in creating absent connections, but in determining which of the myriad existing connections to explicitly activate through hyperlinks" (Developer A, personal correspondence, December 12, 2023).

Analysis of user pathways through these hyperlinked narratives indicates that users often structure their experience around character arcs (tracing Sita or Hanuman) or thematic links (examining instances of dharmic dilemmas) rather than adhering to the chronological seven-kanda framework. This signifies a transition from a temporal to a spatial arrangement of narrative content.

The Ramayana tradition has consistently included many viewpoints, ranging from Valmiki's original Sanskrit text to subsequent regional adaptations that focus on underprivileged figures. Digital versions enhance this plurality via branching storylines that enable users to engage with the story from several perspectives.

The smartphone game *Paths of Dharma: Ramayana Choices* exhibits this methodology by enabling players to engage with the narrative through many characters, each with distinct perspectives and autonomy. Assuming the role of Sita unveils dimensions of the narrative obscured from Rama's viewpoint, whilst selecting Ravana's trajectory fundamentally alters the moral structure of the story. This multilinearity embodies what Ramanujan (1991) referred to as the "many Ramayanas" tradition, while utilizing the procedural capabilities of digital media.

This trend transcends games, encompassing interactive fiction and web tales. The interactive web comic "Ramayana Reimagined" enables viewers to alter perspectives at pivotal narrative moments, resulting in numerous potential trajectories through the storyline. The designer states: "Digital tools enabled us to acknowledge the multiplicity inherent in Ramayana traditions while maintaining narrative coherence" (designer B,

personal communication, January 28, 2024).

Digital adaptations of *The Ramayana* navigate intricate cultural tensions between innovation and authenticity, worldwide accessibility and cultural identity, as well as entertainment and religious significance. These talks are evident in multiple domains.

This paper illustrates that the transfer of *The Ramayana* to digital platforms signifies not merely the application of contemporary technologies to ancient narratives, but a multifaceted process of narrative reconfiguration that simultaneously maintains and alters conventional storytelling frameworks. The five suggested patterns—hyperlinked narratives, multilinear storytelling, interactive elaboration, procedural adaptation, and immersive worldbuilding—demonstrate how digital affordances correspond with and enhance narrative tactics traditionally inherent to the epic.

These findings indicate that digital storytelling should be perceived not as a departure from traditional narrative but as an extension of the ongoing evolution of storytelling across many media formats. The notable compatibility between the traditional structures of *The Ramayana* and digital affordances suggests that specific story architectures—especially those defined by modularity, diverse perspectives, and community adaptation—are particularly conducive to digital remediation.

Subsequent the paper ought to broaden this examination to encompass additional traditional narratives and embryonic technologies, including artificial intelligence and augmented reality.

Furthermore, longitudinal studies examining the integration of digital Ramayana modifications into users' cultural and religious activities would yield significant insights into the societal ramifications of these story alterations.

The Ramayana's evolution across digital platforms illustrates the enduring relevance of ancient texts through ongoing adaptation. The digital representations of the epic signify not the substitution of tradition but its reconfiguration—a process in which both the narrative and the media that convey it undergo reciprocal transformation.

References

Aarseth, E. (1997). *Cybertext: Perspectives on ergodic literature*. Johns Hopkins University Press.

Bolter, J. D., & Grusin, R. (2000). *Remediation: Understanding new media*. MIT Press.

Bogost, I. (2007). *Persuasive games: The expressive power of videogames*. MIT Press.

Chaturvedi, V. (2016). *Mapping mythologies in digital space: Indian epics in gaming environments*. Oxford University Press.

Jenkins, H. (2006). *Convergence culture: Where old and new media collide*. New York University Press.

Landow, G. P. (1992). *Hypertext: The convergence of contemporary critical theory and technology*. Johns Hopkins University Press.

Miller, C. H. (2008). *Digital storytelling: A creator's guide to interactive entertainment*. Focal Press.

Murray, J. H. (1997). *Hamlet on the holodeck: The future of narrative in cyberspace*. MIT Press.

Pollock, S. (2006). *The language of the gods in the world of men: Sanskrit, culture, and power in premodern India*. University of California Press.

Ramanujan, A. K. (1991). Three hundred Ramayanas: Five examples and three thoughts on translation. In P. Richman (Ed.), *Many Ramayanas: The diversity of a narrative tradition in South Asia* (pp. 22-49). University of California Press.

Richman, P. (Ed.). (2001). *Questioning Ramayanas: A South Asian tradition*. University of California Press.

Ryan, M. L. (2015). *Narrative as virtual reality 2: Revisiting immersion and interactivity in literature and electronic media*. Johns Hopkins University Press.

Salter, A. (2014). *What is your quest? From adventure games to interactive books*. University of Iowa Press.

Viswamohan, A. I., & Wilkinson, C. (2017). *The sacred and the digital: Critical depictions of religious narratives in Indian transmedia*. Routledge.

●

Beyond Myth : Ahalya's Cinematic Transcendence in Sujoy Ghosh's Vision

Arpita Saha*, Dr. Madhvi Lata**

The Ramayana has traditionally emphasized various qualities of male characters more than those of female characters. Women are generally categorized into two distinct groups: the virtuous and the immoral. Virtuous women are depicted as embodying qualities such as devotion, purity, and moral integrity, while immoral women are characterized by their overt sexuality, curiosity, and promiscuity.Such traits often lead to their being labelled as adulterer(s) or rakshasi(s). Ahalya, regarded as the finest creation of Brahma, has been the subject of numerous reinterpretations due to her intricate and contentious character.She stands out in the Ramayana as a figure of complexity and controversy, prompting various reinterpretations. The debate lies in determining whether she is a victim of her own vulnerabilities or a casualty of Lord Indra's unjust actions. Nevertheless, all interpretations agree on her punishment for infidelity. In 2015, Sujoy Ghosh's fourteen-minute short film *Ahalya* received widespread acclaim for its narrative and the representation of characters such as Ahalya, Rishi Gautam, and Lord Indra, set against the backdrop of contemporary Kolkata.A distinguishing feature of Ghosh's adaptation is its feminist perspective on this mythological narrative. This paper aims to explore how Ghosh challenges the patriarchal elements and the sexual themes associated with the Ahalya story. It will also examine how Ghosh reinterprets the notion of 'sin' attributed to Ahalya in the 21st century, providing a feminist lens to the tale. Additionally, it seeks to analyse whether only women are subjected to punishment for transgressions and to illuminate the dynamics of good and bad metaphors as depicted in the film, which Ghosh skilfully captures on the cinematic canvas.

Keywords : Sexuality, Body, Patriarchy, Transgression, Sin, Punishment

A discursive relationship exists between life and literature. Everyday experiences provide a wellspring of inspiration for literary works, while literature plays a vital role in influencing and shaping the course of life. Various genres of literature reflect the importance, intent, and societal role of each genre within its cultural context. The epic *Ramayana*, in particular, has experienced numerous adaptations over the centuries.About the diversity of Ramayanas, Romila Thapar points out:

The appropriation of the story by a multiplicity of groups meant a

* Ph.D. Scholar- Department of English, Banaras Hindu University, Varanasi, U.P.
** Assistant Professor- Department of English, Banaras Hindu University, Varanasi

multiplicity of versions through which the social aspirations and ideological concerns of each group were articulated. (4)

The reinterpretation of female characters' life narratives in epics through fiction, drama, and film underscores their impact on the public.While the fundamental storylines remain intact, the motifs associated with the lives of renowned characters differ and are reimagined. These adaptations are crucial in the process of demystifying female figures, offering new perspectives shaped by the insights of authors and directors. Furthermore, this practice reflects and documents the evolving political and social landscapes that influence the literary contributions of their respective eras.

Ahalya, the most beautiful woman created by God Brahma, was married to the much older Rishi Gautam. She is best known for her alleged infidelity, having engaged in an affair with Indra, who disguised himself as Gautam. Valmiki's *Ramayana* depicts Ahalya being aware of Indra's true identity.She acted out of curiosity, leading to her betrayal of her husband. When Gautam discovered the betrayal, he cursed both Ahalya and Indra for their actions. He cursed Indra to lose his testicles and his wife by saying:

You will stay here for many thousands of years without food or drink/, living on air alone, and remain lying on ashes full of remorse / You will dwell in this hermitage unperceived by anyone of all created beings // When, however, Sri Rama, son of Dasharatha /, who is hard to overcome for anyone, visits this fearful grove, then alone you will be absolved of your sin /O immoral woman, you will regain your own pristine body and return to my presence full of joy // (*Srimad Valmiki Ramayana*, canto 48, line 29-32)

Indra, with the support of other deities, was saved by obtaining the testicles of a ram. In contrast, Ahalya was doomed to suffer invisibility until Ram came to rescue her from the grips of greed and illusion. In certain interpretations, Ahalya remains oblivious to Indra's deceit. Upon discovering the truth, she implores her husband for forgiveness. Whether he believes her or not, he ultimately curses her to become a stone, awaiting Ram's arrival to set her free and allow for their reunion.The narratives surrounding similar themes both uphold and challenge patriarchal standards regarding women and sexuality. Ahalya's curse is seen as a necessary punishment for her exploration of her body, viewed as sinful and a means of redemption from earthly desires. In contrast, Indra, the King of the Gods, experiences his curse as misfortune. Wendy Doniger in her article mentions that "Ahalya is, like Helen, the paradigmatic beauty and paradigmatic whore in Hindu civilization" (47). Historically, a woman's body has symbolized power, with sovereign power defined as the right to seize possessions, time, bodies, and life itself (Foucault 136).While Ahalya

endures prolonged suffering for her transgressions, Indra, who was equally involved in the act, maintains his political dominance, for as the King of the Gods he often employed deceitful tactics.The meaning of 'Ahalya' is 'flawless', "one who cannot be ploughed" (Bhattacharya 2). She is considered a *kanya* or one among the five virgins because she alone dared to transgress, explore her curiosity, and gracefully embrace the consequence of her deed. She is also seen as someone who is untamed as her marriage could not suppress her sexual desire. In the Preface of *Mahamoha*Pratibha Raysays:

One should analyze both the psychological and sociological aspects of committing a sin. Many complicated, psychological, sociological and economic reasons are behind it. Years of suffering, deprivation, emotional trauma and conflicts drive a person towards sin . . . . If she has a chance to tell her own story, what will she talk about? Will she talk about her happiness and sorrow, vice and virtue or suffrage and liberation? (vi-vii)

Sujoy Ghosh, renowned for his acclaimed 2012 film *Kahaani*, presents yet another compelling narrative on his cinematic platform. This time, he offers a contemporary interpretation of one of the most frequently recounted episodes from the Ramayana—the tale of Ahalya. Produced by Royal Stag Barrel Select Large Short Films, this fourteen-minute short film features the esteemed actor Soumitra Chatterjee in the role of Rishi Gautam, also known as Goutam Sadhu, alongside Radhika Apte as the mysterious Ahalya and Tota Roy Chowdhury as Lord Indra, referred to as Indra Sen, an Inspector. Set against the backdrop of upper middle-class society in Kolkata, the film opens with Inspector Indra Sen arriving at Goutam Sadhu's residence. He is there to investigate the case of a missing individual named Arjun. Upon the door being opened by Ahalya, Indra Sen is visibly taken aback by her beauty, a reaction artfully conveyed through his expressive gaze and lingering admiration, accompanied by the enchanting Rabindra Sangeet playing in the background, "*Esho amarghorebahirhoyeesotumi je achoantore*" (Ahalya 0:55-1:12). As he enters the living room, Indra notices several dolls or figurines on a table, one of which falls, creating a sound. Ahalya's eyes reveal her surprise, and she awkwardly mentions that this is a peculiar mystery, as the dolls tend to fall whenever a new visitor arrives. While stepping out to summon Sadhu, she picks up the fallen doll and admonishes it, saying, "All of you are becoming very naughty!" (01:39-41). Indra identifies one of the figurines as Arjun, the person he is searching for, and also observes a 'stone' displayed in a case. Goutam Sadhu then enters, and through their conversation, Indra surprisingly learns that the woman he had mistakenly thought was Sadhu's daughter is, in fact, his wife. Indra Sen finds himself deeply captivated by Ahalya, who, in turn, responds to his infatuation with

subtle glances and touch.The white summer dress worn by her serves as a dual emblem of both innocence and uninhibited sensuality. Judith Butler posits that in societies dominated by patriarchy, "the matter of bodies is perceived as a form of materialization regulated by norms to establish the mechanisms of heterosexual hegemony in defining what constitutes a viable body" (xxiv). Conversely, Ahalya is depicted as a highly self-aware individual, fully cognizant and assured of her own sexuality. She skillfully manipulates her physical presence to exert control over Indra's gaze, thereby subverting the traditional male gaze. Her body, expressions, and movements convey a narrative of seduction. In the epics where Indra holds the power and agency, the film presents a role reversal, placing Ahalya in a position of authority. The expression of desire is ignited through subtle actions rather than overt displays. When Indra enquires about Arjun, Goutam mentions that Arjun had visited him for a session and the last sculpture he had created was inspired by Arjun. He discloses that during Arjun's visit, he had shown him a magical 'stone' which possesses the ability to alter identities. Ironically, there is a scene in the film where in reference to the Ramayana, Goutam questions Indra about his familiarity with the text.

Indra replies :

Indra Sen: Long back…I know the basic storyline.

Goutam Sadhu (laughs): Basic storyline. Love that! (*Ahalya* 07:15–19)

This particular moment is significant due to its connection with the millennial generation. Most individuals are aware of the overarching narrative, though they may not grasp every nuanced detail or variation of the story. Indra's claim that he understands "the basic storyline" can be interpreted as somewhat reductionist. Subsequently, Sadhu recounts that Lord Indra, the King of Gods, had a similar stone, which he used to engage in his mischievous exploits, while gesturing towards Sen and referring to him as "your namesake." Sen, sceptical of Sadhu's nonsensical claims, prepares to detain him. Meanwhile, Ahalya calls for Sadhu to retrieve her mobile phone that she left behind. Sadhu encourages Indra to test the stone's magical properties to validate his assertions. Unable to suppress his curiosity and spurred on by Sadhu, Indra takes the stone and ascends to Ahalya's room. Upon seeing Sadhu's reflection in the mirror instead of his own, he is taken aback. Ahalya, mistaking Indra for her husband, instructs him to send Indra away and return to her promptly. Indra, feeling a mix of confusion, shock, and fear of potential consequences, initially turns to leave but is unable to resist his desires and embraces Ahalya passionately. The scene then transitions into darkness. When Indra regains consciousness, he finds himself in a shadowy environment, immobilized and struggling to breathe. He cries out for assistance, but his pleas go

unanswered. He hears voices from outside and, in his struggle, collapses. Concurrently, Sadhu directs attention to the dolls and addresses the newcomer.

Goutam Sadhu: My latest creation! (and pointing at Ahalya) All because of her (13:03-07).

Ahalya comes and picks up the fallen doll looking like Indra Sen and chastises it repeating her earlier words:

Ahalya: Now don't you start becoming naughty like the others! (13:15)

A cautionary note directed towards the unsuspecting newcomer-prey is evident. It is at this moment that Indra Sen comes to a grim realization of his dire situation. To his dismay, he recognizes that he has been transformedinto a 'figurine wooden doll' that bears an uncanny resemblance to his former self, akin to the other dolls he had observed on the table.Ahalya embodies both grimness and bravery, serving as a symbol through which lessons on idealism, morality, fidelity, infidelity, and punishment are conveyed. She serves as a cautionary tale for women regarding the repercussions of deviating from the institution of marriage. Throughout history, her sexuality has been perceived as sinful, leading to her punishment. Her curse can be interpreted as a means of disciplining her for this alleged transgression. Nevertheless, it is frequently overlooked that Ahalya's perceived complicity may stem from Gautam's shortcomings (Doniger 43). In her work, *The Second Sex*, Simone De Beauvoir argues that a woman's dignity is recognized only when she conforms to her patriarchal duties of domestic labour and sexual servitude. De Beauvoir further asserts that the disparities in the roles and responsibilities of husbands and wives become apparent during theirintimate moments. She contends that marriage stifles "woman's erotic satisfaction, denies them the freedom and individuality of their feelings, drives them to adultery by way of necessary and ironic dialectic" (672). The neglect exhibited by husbands serve as a catalyst for women to seek out extramarital affairs in pursuit of their own sensual fulfilment. In this context, Ghosh's film *Ahalya* acknowledges her sexual agency and portrays her as a representation of the modern Indian woman striving to claim authority over her own sexuality and physical existence.

What is striking in the film is Ahalya being supported by her husband Gautam who refrains from punishing her for her indiscretions. Instead, it is the transgressor who faces punishment, being transformed into a stone-like figurine. Throughout various narratives, Rishi Gautam consistently plays the role of the punisher, casting his curses upon both his wife and Indra. However, Ghosh's adaptation presents a significant contrast. Goutam Sadhu does not exemplify toxic masculinity as the Rishi does. Instead, he is

depicted as a shrewd character who collaborates with Ahalya. Rather than being portrayed as a passive and seduced spouse, Ahalya emerges as a cunning strategist. Moreover, Sadhu does not impose harsh penalties on his wife, nor does he absolve the male participant due to a perceived superiority, as Rishi Gautam did.In the film, the dynamics shift dramatically. The men who transgress find themselves ensnared within the figurine doll, feeling suffocated and desperately calling out for help, yet their cries go unheard. They are left for an indeterminate time to reflect on their misdeeds and ponder their fate. This scenario is profoundly symbolic, paralleling Ahalya's suffering as an unseen entity or a lifeless stone, depending on the interpretation of the stories. The presence of numerous figurine dolls implies that there have been many Indras, with more likely to follow. However, it is the men who will face condemnation, rather than the women. Those who yield to their carnal desires without regard for moral responsibilities will be judged. Ahalya will no longer bear the burden of punishment; instead, it is the Indras, characterized by their weakness and indulgence in lust, who will be held accountable. Ahalya's admonition to the Indra-doll, "Now don't you become naughty like others!" (Ahalya 13:15) reinforces this theme. Notably, at the film's outset, all characters are clad in white, and the atmosphere is light. As the narrative progresses towards its climax and an unforeseen twist unfolds, Ahalya and Goutam Sadhu are depicted in dark clothing, set against a more somber backdrop. This transformation signifies a change in their roles and representations, serving as a compelling metaphor that invites reflection on the complex interplay of good and evil within the film.

Ghosh's fourteen-minute short film Ahalya introduces a contemporary perspective that is essential for classic narratives in the 21st century. Despite the passage of time, the nature of sins and those who commit them remains constant, highlighting the necessity for us to rethink our approaches (Mehta).In this adaptation, Ahalya is cognizant of her inherent sexuality and actively asserts control over what has traditionally been denied to women. Modern women continue to find themselves in Ahalya's position, facing similar challenges as they seek to realize their potential as individuals. However, Ghosh portrays Ahalya's sexuality not as a source of shame but as a form of empowerment. Consequently, as societal norms evolve, the narrative of Ahalya also requires significant transformation. Ghosh's interpretation underscores the importance for contemporary Indian women to take charge of their own futures to effectuate substantial change.

References:

Bhattacharya, Pradip. "PANCHAKANYA: Women of Substance." *Journal of South Asian Literature*, vol. 35, no. 1/2, 2000, pp. 13–56.

JSTOR, www.jstor.org/stable/40873760. Accessed 12 Oct. 2021.

Beauvoir, Simone de, et al. *The Second Sex*. Vintage Books, 1989.

Butler, Judith. *Bodies That Matter*. Routledge, 1993.

Doniger, Wendy. "Sita and Helen, Ahalya and Alcmena: A Comparative Study." *History of Religions*, vol. 37, no. 1, Aug. 1997, pp. 21–49. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/3176562.

Foucault, Michel. *The History of Sexuality*. 1st American ed., Pantheon Books, 1978.

Ghosh, Sujoy. "Ahalya." *You Tube*, uploaded by LargeShortFilms, 20 July 2015, www.youtu.be/Ff82XtV78xo?si=OrhLvdPrcpBbVaDg.

Mehta, Takshi. "Ahalya: Analysing Sujoy Ghosh's Feminist Take On The Mythological Tale." *Feminism in India*, 17 Feb. 2021, www.feminisminindia.com/2021/02/18/ahalya-radhika-apte-feminist-take-mythology/. Accessed 01 Nov. 2023.

Richman, Paula. *Many Ramayanas: The Diversity of a Narrative Tradition in South Asia*. U of California P, 1991.

Samal, Babru Bahan, translator. *Ahalya: A Woman's Eternal Quest for Love*. By Pratibha Ray, Createspace Independent Pub., 2018.

Srimad Valmiki Ramayana. 15th ed., Gita Press, 2021.

●

Egalitarian and Feminist Empirical Vision in Literature : An Appraisal on Bharati Mukherjee's *Leave It to Me & Miss New India*

Dr. M. Premavathy*, S. Preethi**

Abstract : In societal perspective Epistemology consists standpoint, Empiricism and Post- Modernism. Gendered effects take scaffold to elucidate the knowledge disciplines with feminism and feminist methodologies. These experiments have the base of Egalitarian needs and notions. In the field of literature, novelists, authors, short story writers provide halo on the leitmotifs of equality, experiences, equanimity and experimentations of lives of women characteristics in literary texts. Writers from 19th and 20th centuries gave their start in empirical trays and 21st century writers exemplify it to the apex. Among them, Bharati Mukherjee's *Leave It to Me* and *Miss New India* have the thematic of representations of Feminist Empiricism and Egalitarian ideas in it. women characters like Anjali Bose, Mrs. Bose, Sonali Bose, Parvati, Debby DiMartino (becomes Devi) are the illustrations of feminist epistemology in literature. Those characters would be analysed in detailed with egalitarian and feminist lens.

Keywords : Phenomenal Courage, Dependence, Experiences, Escapism, Uncertainty, Feminist Empiricism, Equality, Feminist Epistemology.

Universally accepted definition of epistemology is a study of knowledge. In simple terms, it could be understood as the human phenomenal indulgence to circumstance or uncertainty. Epistemology stands to the philosophy of understanding the knowledge or what we know. Gradually it develops it's stand to all disciplines. In thus way feminist epistemology enhanced itself for avoiding androcentric predisposition. Feminist empiricism, being a part of feminist epistemology, it stands for the approach ofindulging all purposes and experiences with a positivism. In 1998, for the discipline political science, Nancy Hartsock initiated the term feminist epistemology and in 1987, Dorothy Smith initially utilized this term for sociology.

In literature it could be used to analyse the elucidation of experiences of characters of literary texts. Feminist empirical nuances that the experiences of women how could takes the aspect of positivism would be analysed in the women characters of novels. Approaching literature with empirical ideas is done by Britta Wigginton and Michelle N. Lafrance under the title *Learning Critical Feminist Research: A brief introduction to feminist epistemologies and methodologies*. In that they say,

* Research Advisor- Associate Professor of English, Bharathidasan University, Tiruchirappalli- 620024

** Ph.D. Research scholar- Department of English, Bharathidasan University, Tiruchirappalli- 620024

Abandoning the dictates of empiricism can be a disorienting experience. For example, drawing on the children's book *Alice in Wonderland* by Lewis Carroll (1865), Riger (1992) suggested that a traditional scientist trained in empiricism who is learning about postmodernism for the first time is comparable to Alice falling into a Wonderland of perplexing language and customs. What was once familiar and stable (e.g., traditional notions of 'psychological variables', such as gender, morality, or intelligence), is revealed as unsettled, problematic, multiple, and imbued with power relations. In other words, the world Alice (our former empiricist) once knew no longer 'exists' in concrete and fixed ways as it once did. It is our aim to guide researchers who, like Alice, are unfamiliar with the new terrain they are in. (Wigginton&Lafrance, 16)

In the same way as well as with uniqueness of indulging Indian writing in English is elucidated in this writing. Egalitarianism is introduced by John Locke to the world of human epistemologies. Later it gets many dimensions. Egalitarian thoughts are one among them. Analysing literary characters with egalitarian ideas of gender equality is significant by many researchers and critics. Gender equality has discussed in all time periods in various circumstances. It brought waves of feminism and feminism-based writing. In the field of literature, it brought many literary productions with innumerable dimensions. Bharati Mukherjee provides it in diasporic magnitudes. Bharati Mukherjee's *Leave It to Me*(1997) has unique storyline about the plight of refugee life style and adopted child's longingness and searching of biological parents. Bharati Mukherjee's *Miss New India* (2011) has another distinctiveness in female aspects such as conflict between conventional and modernity. Protagonist Anjali Bose's search for understanding life has turn in the attitude and aspects of dependence and independence.

*Leave It to Me*is a semi real incidents-based novel. Once, Bharati Mukherjee had an opportunity to witness the trialin Indian Court. With that scaffold, she picturized this novel. The protagonist Debby DiMartino becomes Devi in this novel. Mukherjee utilized the Indian Hindu goddess Devi to represent resolution, courage, motherhood, power, equanimity, justice, divinity and mightiness. After experiencing all hurdles and uncertainties Debby eventually gets phenomenal courage and becomes mighty to face and conquer the obstacles like Devi.

Mukherjee took twenty years to pen the novel *Leave It to Me* after witnessing the trail. This novel is a bowl of feminist empirical thoughts, multicultural changes, cross-cultural communications, transnational identities. These elements revolve around the life of Debby DiMartino. Till her twenty Debby couldn't realize about her being brought up by adopted parents. Her biological parents belonged to multi-ethnicity as well as her adopted parents who were also Italian -American cross-cultural identities. This made her understand multiculturalism during her upbringing. Egalitarian ideas which are not only gender equality but also the idea of

culture equality which is elucidated by novelists throughout the novel.

Sense of searching the biological clan got a fire in the consciousness of Debby. It is spirited in her by her situational people's query about her looks and accent. Her journey of finding own offspring leads her to experience the knowledge of humans depends on the circumstances not by the identities. Because her identity research brought her conclusion that self-fulfilment is a realistic thing. Each search leads her to another path; each path leads her to different hypotheses; each hypothesis leads her to various research; each research gives her distinct experiences; each experience leads her to distinguished experiments in life. These arrivals make her Debby to Devi. These empirical ideologies brought her into her egalitarian society. Her biological parents' San Francisco and Vietnam identities, her childhood savior Indian nuns' identities gave her philosophical knowledge about human life.

Debby's multi continental mixture is a twenty years observation on the world by Bharati Mukherjee who utilized the Indian Hindu goddess Devi who can kill Buffalo-Demon to picturize the Debby/ Devi is distinct and perfect feminist empirical ideology. Devigon, the place of goddess Devi symbolically represents the place of Debby where she could be elevated herself from search of identity to creating self- identity. Title *Leave It to Me* criticizes social behaviour of inquiring, kindling, suggesting and concluding others is condemnable. She ensures that they should live their life to lead by themselves. This may bring egalitarian society.

All hurdles and obstacles gave the quality of equanimity in Debby. Circumstances forced her to be a subdue in her search for others. As a young woman she faced many hindrances, she breaks the barriers to find biological identity. Her shock on multi-ethnicity brought her positivism at the apex of her acceptance and adorable self-reliance.

Bharati Mukherjee's *Miss New India* (2011) contains the experiences of conventional ideas, arrival of modernity and acceptance of modernity. The protagonist Anjali Bose represents herself as a life changer of women's attitude from escapism to empiricism. It is exposed by the novelist in the terms,

Her mother could not possibly have ever expected, let alone experienced, conjugal delirium with her father. Angie wished she could ask her mother what shape her dreams of married life had taken before Mr. Bose had become her bridegroom. Her mother had married at seventeen…….. Anjali's mother had hoarded that grievance, polished and buffed it to radiance over the years and brought it out to great effect during domestic squabbles. (MNI, 26)

Gauripur is a represented place for traditionalism. Anjali Bose, who is in her around twenty has great English accent. Her parents wanted to use it in the marriage proposals for reducing dowry. Anjali Bose expected that her marriage would be great escape from dependence of conventionalism. Her thought of escapism to get independence showed her ignorance of life

reality. Through Anjali Bose, Mukherjee portrays the immediate expectations and solutions of adolescence's ignorant behaviourism of escapism. Anjali Bose turned into reality when she and her physique was mocked and harassed by groom chosen by her father. Again, she travelled for Bangalore to get rid of unwanted wedding with obstinate groom. Her travel brought her the perfect vision about dependence and independence. Bharati Mukherjee makes crystal explanation through Anjali Bose about independence which is actual self- making, self-understanding and self-realising throughout pros and cons. Her life in Bangalore also brought obstacles, but she made herself ready to face and overcome it.

Anjali's life in Gauripur, made her to long for egalitarian ideas of equal and depending each other in circumstance. Her understanding about independence and leading a self-reliant life in Bangalore brought her the experience-based positivism. Thus, the way she has become Anjie. Which ironically indicates her transition from common dependent many Anjalis to self-made Anjie.

What did we give him? What do we owe him?..... for whatever sinister or innocent reason, every now and then he conferred special attention on a young man or woman. "You will carry on," he would say. "You have the spark – don't crash and burn. India is starting to wake up. India is a giant still in its bed, but beginning to stir. It's too late for me, but India is catching fire." One such woman is named Anjali Bose. (x)

In *Miss New India,* women from various decades present them as representative of such decade's customs. Mrs. Bose travels throughout the novel with the name "Mrs. Bose" only. Her name is not revealed at any single space. Through this novelist indicates that necessity of women's identity which is needed even for expressing the suggestion. Sonali Bose, young divorced single mother leads a life with simple earning to protect her child and herself. Her parents thought that her divorce brought shame to the name of the family. Though a single mother with many obstacles, Sonali advised Anjali Bose to get married with the groom who is the choice of the parents. She intimates that groom might be wrong but Anjali should get married with him to bring pride her family which is upset already by Sonali's life. This is typical practice that women should tolerate, accept and sacrifice everything for the pride and welfare of the social norms of being submissive. Bharati Mukherjee threads all these typical women characters as a practice of many decades. And threads Anjali Bose alias Anjie as a breakthrough of such practice. When Anjie returns to Gauripur, she witnesses the changes everywhere which is sign of positivism. Her return symbolically represents the women's need of support and acceptance about the self- reliant life.

Anjali's life in Bangalore brought her a lot. In her words, "I have been in Bangalore only three weeks.I have no job, no pay check,and no family here.But I have seen more and learned morein Bangalore than I have from twenty years in Gauripur. Here I feel I can do anything. I feel I can change

my life if that's what I want."(MNI,166). Anjali is the indication of egalitarian needs constantly. Her acceptance of circumstance brought her phenomenal courage to cultivate the things in order to lead a life in her way. Hence, she becomes positivist from escapist.

Though a diasporic writer, Bharati Mukherjee achieved the apex of uniqueness in her novels *Leave It to Me* and *Miss New India* by examining not only diasporic immigrant ideology but also analysing the plight of multicultural identity-based life; realization of self- indulgent and self-reliant life. Debby who becomes Devi is a complete positivist (feminist empirical) at the end of her search. At the beginning of her search, she becomes a cultural equality seeker (egalitarian). In *Miss New India,* peregrination of Anjali Bose seeks gender equality (egalitarian) in the fields of family, social gender norms, education, work place, opportunity, social acceptance of elevation and so on. After the experience of harassment, Anjali 's travel to Bangalore and her experiences in uncertainty of doubtful circumstances make her bold enough to face the phenomenon as well as to lead a passionate life. Her journey from Gauripur to Bangalore made her a seeker of egalitarianism. And her drive from Bangalore to Gauripur made her positivist (Feminist Empiricist).

Works Cited

- Gupta, Anjana. "Identity Crisis on the Native Land in Bharati Mukherjee's Miss New India". *Think India Journal,* 22 (10), Nov. 2019. https://thinkindiaquarterly.org/index.php/think-india/article/view/11222/6913
- Kohlberg, L., & R. Kramer. "Continuities and discontinuities in childhood and adult moral development". *Human Development*, 12(2), 93-120.1969.
- Mukherjee, Bharati. *Leave It to Me.* Fawcett Columbine Book, The Ballantine Publishing Group, 1997.
- Mukherjee, Bharati.*Miss New India.* Rupa Publications, 2012.s
- Smith, D. E.*The everyday world as problematic*: *A feminist sociology*. Toronto: ON: University of Toronto Press.1987
- Tandon, Sushma. *Bharati Mukherjee's Fiction: A Perspective.* Sarup & Sons, 2004.
- Wigginton, Britta., &Michelle N. Lafrance. *Learning Critical Feminist Research: A brief introduction to feminist epistemologies and methodologies*.The University of Queensland, Australia, 2019. https://espace.library.uq.edu.au/view/UQ:70d1f65

●

Measuring the Gaps with their Scale : An Analysis of Indo-Anglian Women Literature

Prof. (Dr.) Anupam Soni*

Literature, in all languages, is an art of expressing and conveying the essence of life. It plays a major role in crusading against the evil forces that try to disturb the harmony and balance of society by violating the human rights of liberty, equality and fraternity. Post-independence, it has emerged as a protest literature of commitment literature with marginalized communities as its core theme. These communities introduced themselves in an outburst of suppressed emotions and passions transforming reactive minds into creative geniuses. Feminist literature is also a part of that reactive literature which expresses, in a volcanic vent, women's anger and anguish over the existing faulty socio-political system wheeling on gender discrimination. It articulates relentlessly its demand for an identity and an equal position, not a subservient one, for women in a male-dominated society. *'Right to Live with Dignity',* is the core demand. The patriarchal ideology can be termed as androcentric as most of the classical literary writings came from the pens of men. In these works, male writers usually narrate female characters by using their values, emotions and thinking. Hence, the female readers always act as an alien or stranger. *Lisa Tuttle* remarks: The final goal of feminist criticism is "to develop and uncover a female tradition of writing," and "to interpret the symbolism of women's writing so that it will not be lost or ignored by the male point of view" "to resist sexism in literature and to increase awareness of the sexual politics of language and style." (Lisa Tuttle:1986,184)

After independence, women writers like *Arundhati Roy, Anita Nair, Anita Desai, Jhumpa Lahiri, Shashi Deshpande, Nayantara Sehgal, Rama Mehta, Kamala Das* etc. have been using English as a medium to express women's perspectives, their silent sufferings, gender inequality and issues related to violation of women's right. Their writings reveal repressive forces like patriarchal mindset, sexual politics in marital relationships, effacement of their identities, second-rate position in society and family, and their revolt against these forces. Through their works, they are drawing the attention of the world audience towards the miserable plight of women in Indian society, and, thus compelling the higher authorities to form laws in favour of the weaker sex which, in turn, is and will accentuate the over-all-development of our society They picture the pathetic and terrible existential plight of their female protagonists haunted by the 'terror of facing single-handed, the ferocious assaults of existence.' *Mary*

* Deptt. of English- Bundelkhand College, Jhansi, U.P.

Wollstonecraft in her work, *A Vindication of the Rights of Women* (1792) argues "The association of our ideas is either habitual or instantaneous, and the latter mode seems rather dependent on the original temperature of the mind than on the will."

Kamala Markandaya focuses on the double yoke an Indian woman is subjected to, between her desire to have her identity and recognition and her thankless duties as a daughter, wife and mother in the family and society. *Nayantara Sehgal,* with delicate sensitivity, exposes the prejudices women face in this society. She shows her female protagonists refuse to remain shackled to their subordinate roles and defy traditional norms in search of self-emancipation. Caught between tradition and modernity, *Anita Desai's* women suffer while balancing homely duties and emotional fulfilment. *Cry the Peacock, Voices in the City, Fasting and Feasting* etc. are studies of the predicament of sensitive women characters. In *Fasting and Feasting* Anamika, a brilliant girl, wins a scholarship from Oxford. But being a girl, she is not allowed to go to Oxford. Her promising future is crushed after her marriage, she is beaten up by her mother-in-law, forced to spend her whole time in the kitchen and not allowed to go out of the house except to the temple. Another victim, Uma, is deceived twice in the sphere of marriage by the chauvinistic male society. So she confines herself to her paternal home. Though she is offered a job by Dr. Dutt at the nurses' dormitory, a chance to be independent, her overbearing father strongly opposes this idea: "The frown was filled with everything he thought of working women, of women who dared presume to step into the world he occupied."

Kamala Das, a confessional and bold poet, voyages into the inner world of women's psyche, and strongly focuses on the critiques of marriage, motherhood, women's relations to their bodies and the various stereotyped roles they have to play in their lives. She fights for women's independence of mind and body in *Summer in Calcutta and Alphabet of Lust* and *The Old Playhouse*. In *Summer in Calcutta,* she says: "Here in my husband's home, I am a trained circus dog, jumping my routine loop each day." She tried to give a satisfying position to women in family and society by presenting, without inhibition, a clear picture of hidden trauma and hurts they have received from this malevolent man-made world.

Arundhati Roy, another social activist, created ripples in the egoistical complacency of our responsible authorities by writing *The God of Small Things,* She confronts boldly the chauvinistic attitude of man and registers her poignant protest that a woman is not a mere toy or object to be manipulated by a man as and when he likes. Chacko, a hypocritical male brother of Ammu, was sent to study abroad because he was a man. Ammu was not sent to the college as "college studies corrupt a woman". This

hypocrisy and biased attitude is brought about poignantly by *Anees Jung* in her work *Unveiling India*. Chacko after his estrangement with his wife is greeted warmly by the Ipe household. In his sadistic and cynical tone, he tells Ammu "What's yours is mine, what's mine is also mine". This is because of the simple reason that Ammu at that time had no right on the property. The irony is projected when Ammu estranged from her husband is not greeted well along with her children in her own home. The daughter who divorced her husband is tortured in her home whereas the son who divorced her wife is gifted the whole house and becomes the rightful heir of the family's fortune His flirtatious advances towards a lowly woman are encouraged by Mammachi by saying it is only Man's needs" (p.268) whereas Ammu estranged by everybody goes in search of love and when she finds some it is termed as illicit, sinful and untraditional. She is locked and beaten up. What is legal for a man, is illegal for a woman. The writer attacks the prevailing hypocrisy of society which builds a great barrier between a man and a woman. Man by being a male fails to understand the gravity of a woman's existence, her deep sensitivity and her dedication to the house whom she loves dearly. Thus, *Roy* successfully and effectively raises the question of gender discrimination.

Manju Kapur, another famous feminist writer, opposes the dominant sexist ideology in her novels. She highlights and condemns the inequalities and injustices in the treatment of women and the disadvantages women have to bear on account of their gender. In her novel, *Custody,* Ishita, like Ira of *Nectar in a Sieve* (*Kamala Markandays*) is thrown out of the in-law's house because of her inability to inherit the family. She is divorced for no fault of her own. In-Home*, Manju Kapur* criticizes in-laws' house because of her inability to give an heir to the family. She is divorced for no fault of her own. In 'Home' Manju Kapur criticizes people's lust for dowry, their opposition to inter-caste marriages, the child sexual abuse and she laments that it is always the woman who bears the burnt.

Shashi Deshpande, a strong feminist woman writer, has also stirred the sensibilities of the people by presenting, through her literary ventures, a realistic picture of women in this hostile and entirely insensitive male-dominated society. She has laid bare those longings, aspirations, hopes, frustrations and the complex working of a woman's inner self which were hitherto not so well realized or understood. Her heroines protest against the hollowness of their survival, lack of identity and the pathetic plight of their existence. Urmi in *The Binding Vine* feels that her mother-in-law Mira is introduced to her as 'Kishore'r mother, Kartik's grandmother', not by her name but by a relative identity according to her relations with her. This agony is even mentioned by Mira in her poems describing the occasion when, after marriage, her name is changed from Mira to Nirmala. A

glittering ring glided on her finger with the name 'Nirmala' engraved on it.

Who is this? None but I,

My name hence, bestowed upon Me

Can they make me Nirmala? I am Mira.

It reflects an age-old tragedy of imposition of an alien identity on the real self, a torture of one's self. Shashi Deshpande, through Mira, also draws our attention towards the secret feeling felt by a lady in the darkness of the night-a kind of molestation, even rape, in marriage which hurts her psychologically and which a woman can not talk about for the fear of being snickered at. Mira fears the 'coming of the dark-clouded, engulfing night'. Like Maya in *Cry the Peacock (Anita Desai) Sita, too, in 'Where Shall We Go This Summer?'* points to this insensitive attitude of men in general: "They are nothing -nothing but appetite and sex. Only food, sex and money matters Animals." (p.p. 31-32).

Besides this, Mira is discouraged from publishing her poems by Venu who tries to silence her voice saying, "Why do you need to write poetry? It is enough for a young woman like you to give birth to children. That is your poetry. Leave the other poetry to us men." (p.127, The Binding Vine)

Shashi Deshpande also highlights the most detestable act of man i.e. rape where the victim and her family face all the stigma and ignominy for no fault of their own. Kalpana's mother does not report it (rape of Kalpana) to the police for fear of being defamed: "Why to report it? The only thing that will happen is that our name will be mud. I have these two girls ——————" *(p.62, The Binding Vine)* She has the abominable mentality of men who, instead of sympathizing with the victim and accusing the victimizer, say.

——————there can be no rape because it

can't be done unless the woman is willing?

——————forgive the rapist for he knows not

what he is doing!——————Rape happens

because women go about exposing themselves————(p.182, *The Binding Vine)*

Besides these writers, many feminist publishing houses i.e. *Kali For Women* in Delhi are strongly dedicated to mouthpiece women's issues through their print by providing forums to women writers like *Radha Kumar, Vandana Shiva Maria Miles* and many others to increase the body of knowledge on women's special needs, desires and their struggles. Key issues such as rape, dowry, environment, and work questions of identity have been taken up by these writers in their books like *The History of Doing: An Illustrated Account of Movement for Women's Rights and Feminism in India 1800-1990 (Radha Kumar, 1993).* These feminist Press and others have reflected on the link between publishing and social

changes. Women's issues discussed in the light of the changing needs of time have fostered change in social justice and politics for the upliftment of women folk.

These Indo-Anglian women writers spoke the natural language of their hearts without any constraints. The content of this genre, articulating the existential pressure of women, shocked the traditional patriarchs who, in turn, declared it to be bold and indecent. However, undoubtedly, this movement has been moving relentlessly, demanding an identity, an equal position and all the rights of human beings for women in this society. More and more women writers are coming forward and fighting for their cause.

This feminist literature uses pen as a weapon to jerk the average Indian readers out of their typical Indian complacency regarding gender issues. It has grappled with complex issues such as sexuality, servility, subjugation and education of women in India. Women-centric themes upheld by them have stimulated the slumbering national sensibility towards the miserable condition of women. Their efforts are not going in vain. Many more laws have been made in favour of weaker sex and are being made for their honourable and meaningful existence. It is encouraging to observe the attitudinal change, though slow, that is appearing in the mindset of Indian men who have learnt to respect the weaker sex and are being made for their honourable and meaningful existence. It is encouraging to observe the attitudinal change, though slow, that is appearing in the mindset of Indian men who have learnt to respect women as individuals with great potential. We all should work to initiate a gender equation where both genders live blissfully and enjoy their rightful places. *Shashi Deshpande* rightly said in *Why I am A Feminist* "A world without frightened, dependent, trapped, frustrated women is a better world for all of us to live in."

Notes :

1. Dalmia, Yashodhara. *"An Interview with Anita Desai"*. The Times of India. April 29, 1999.
2. Desai, Anita, *Fasting Feasting*. London: Vintage, 2000.
3. Roy, Arundhati. *The God of Small Things*, New Delhi: India Ink Publishing Co. (P) Ltd. 1997.
4. Deshpande, Shashi. *The Binding Vine* New Delhi: Penguin Books, 1993.
5. Desai, Anita. *Where Shall We Go This Summer*, Delhi: Vikas Publishing House, 1975.

   Wollstonecraft, Mary. *A Vindication of the Rights of Women with Structure on Political and Moral Subjects.* J. Johnson, 1792.

   Tuttle, Lisa. *Encyclopaedia of Feminism* [M]. Harlowe: Longman. 1986.

●

Hegemonic Discourse and Identity Politics : *Things Fall Apart* vs. *In Love and Trouble*

Dr. Nipun Chaudhary*

Abstract : This paper is devoted to an understanding of a Hegemonic Discourse and Identity Politics through considering *Things Fall Apart* and *In Love and Trouble*. *Things Fall Apart* answers few relevant questions like 'What are the troubles of an illiterate women?', 'What are the aftereffects of being chained to traditional ways of African society?', and 'How innocence of these characters causes vulnerability in their life?'.It probes deep into the problems of modern African society which is a 'language above the sentence or above the clause'.

Alice Walker, a 'womanist' rather than a 'feminist', is an Afro-American writer. Sheherself said that she wants to use words that describe things correctly, and 'womanism' is a folk term that characterizes boldness, premature adulthood, a spirit of inquiry, capability, responsibility and leadership. Her themes include love in its various forms. In her writings 'love' becomes a motif of regeneration and healing, of empowerment and resistance, of a way of triumphing over convention. She also writes on 'patriarchy and sexism of black men over black women'. *InLove and Trouble*, Walker's famous short story anthology, shows many such characters revolving around the theme of Identity Politics. It also discusses the troubles created due to Biafra movement in the African society and how innocence caused vulnerability in the life of different women characters mentioned here. The images of characters like Roselily and Jerome's wife work in a 'chain' not really a continuum but the chains that bind.

Keywords : black women, inter racial marriage, susceptibility and suspicion, social chains, power and discourse, African American

Introduction : The term Discourse adapts tosome extent diverse meanings in different given circumstances. Discourse in literature means writing and speech that is normally longer than just sentences. The speech and writings mostly deal with a certain subject properly. In other arguments, discourse is the production of language in its whole, though performing an intellectual inquiry in a particular area or field, such as theological discourse or culturaldiscourse. 'Discourse' can be classified into four main classes, that is :

- **Narration :** A type of discourse that mainly relies on stories, folktale or a drama as an authentic medium of communication. The examples of Narrative Discourse are Stage Play, Story and Folklore.
- **Exposition :** The main focus and concern of this type of discourse,

* Associate Professor- Dept. of English, Sikkim University, Sikkim

is to make the viewers attentive about the matter of the conversation. The examples ofdiscourse Exposition are where compared and contrastive parts of conversations or speech are defined which consist different beliefs and ideas.

- **Description :** This particular type of discourse includes describing anything vis-a-vis the intellects (sense). It allows the spectators to improve and think the possibility of mental picture of what is being discussed in front of them. For example, while reading novel, the reader gives the picture of what he is reading. Novel and Essays are the typical examples of Descriptive Discourse.
- **Argument :** This is a type of discourse that is based on lawful logic and how through exact valued reasons the author tries to inspire the audience. Lectures, Essays and Prose are the examples of ArgumentativeDiscourse.

Since communication happens all the time, discourse is a huge part of our everyday lives. It is absolutely vital, especially as part of the language learning process. There are two overarching types of language instruction. The first is explicit or formal instruction. This is probably the type of instruction you think of automatically, that involves vocabulary lists and looking at specific tenses or conjugations. The second is implicit or communication-based instruction. This research paper is analyzing both explicit and implicit discourse in *Things Fall Apart* and *In Love and Trouble*with special emphasis on the aspects of Hegemony and Identity Politics. It also tries to analyze the usage of spoken/written by accepting its language as a system of communication, the system of words, signs, andsounds.

Hegemonic Discourse and Identity Politics : Postcolonialism is a field of study that comprises other fields as sub-fields, like anthropology, history, literature and what is called 'Area Studies'.Writers like Edward Said, Homi K Bhabha and Gayatri Spivak talks about the postcolonial trends in discourse. Political theorists like WillKymlickaemphasizes on the foundations on the bases of double cultural citizenship.Postcolonial Literature is resonant with ambiguities and complexities because it is informed by different cultural experiences. One of the most important and highly studied facets of postcolonial literature is the dissection and analysis of the term 'postcolonial'. Various scholars have viewed post-colonial literature from different angles. Theorists like Homi Bhabha, Edward Said and Gayatri Spivak have postulated diverse forms of postcolonial theory:

This development of meaning has led critics and theorists to shift the terms of debate from a fairly straightforward notion of the postcolonial as a linear historical development towards a much broader and more varied sense of the term as a marker of historical and cultural change. (Walder 8)

The differing views, issues, critiques and debates by different scholars have expanded the meaning of postcolonial literature; it has transcended from the level of being a product of history to being a medium of expressing the cultural transitions that have occurred since independence. It is apt to provide an analysis of some of these theoretical postulations as well as a comparative analysis of two postcolonial texts which have been purposively selected to explore trends spanning the pre-colonial era to the post-independence era. Achebe's *Things Fall Apart* which is one of Nigeria's earliest post-colonial texts which is discussed in this paper. Scholars like Stephen Slemon believe that"Post-colonial Literature is named after a category of literary activity which sprang from a new political energy on what used to be called commonwealth literary studies." (Walder 7)

Post-Colonial Literature functions within the ambits of historical and cultural studies. Dennis Walder contends that a crucial part of recovering the 'true' histories of previously colonized people-another objective at the heart of the postcolonial projectis the constant repeated writing of history. Bill Ashcroft, et. al. significantly state that : All postcolonial societies are still subject to overt or subtle forms of neo-colonial domains and independence hasn't solved the problem…the development of new elites within independent societies…the development of internal divisions based on racial, linguistic or religious discrimination…testify to the fact that post colonialism is a continuing process of resistance and reconstruction. (Ashcroft 5)

A major exponent of Postcolonial theory, Gayatri Spivak, in her essay "Can the Subaltern Speak?" uncovers instances of doubly oppressed native women who are caught between the dominations of native patriarchy and a foreign imperialist ideology. This phenomenon creates 'the absence of a text that can answer back' and seek to speak to the 'historically muted native subject' primarily emblazoned in her writing as the non- elite or the subaltern woman. (Spivak 129-131)

Another prodigious critic and theorist, Homi Bhabha, accounts for a review and discursive situation focusing on the unrelenting occurrences of the transgression performed by the native from within and against colonial discourse. Bhabha's notion of 'hybridity' succeeds in subverting the colonial power by rearticulating the language of postcolonial texts in order to estrange the colonial language. Natives who have come in contact with the colonialists' culture use their tools as a form of preservation for their culture. Bhabha re-emphasizes the fact that postcolonial writers use works of art as defensive tools against the colonial presence.

Hegemonic Discourse and Identity Politics in *Things Fall Apart*

Things Fall Apart delves into the collision of cultures, where the

colonial hegemony of the British disrupts the traditional Igbo way of life. Achebe's portrayal of Okonkwo's struggles with his own identity and the profound transformation of his society serves as a poignant commentary on the corrosive effects of hegemonic discourse. Through Okonkwo's experiences, Achebe invites readers to reflect on the devastating consequences when dominant powers impose their values, beliefs, and language upon indigenous cultures, causing a rupture in identity and societal cohesion. It sought to preserve the African culture and identity and correct prevailing misrepresentation. Writing about his muse for the novel, he states : At the university, I read some appalling novels about Africa (including Joyce Cary's much praised Mister John) and decided that the story we had to tell could not be told for us by anyone else no matter how gifted or well intentioned. (Achebe, *Hopes and Impediments*, 567-75)

Things Fall Apart chronicles the historical experiences in pre-colonial Nigeria It captures the reactions of natives to education and religion succinctly.It depicts a traditional society under pressure to change. The title of the book was adapted from Yeats' "The Second Coming", a poem written in the modernist western tradition lamenting the passing of order and innocence from the world. This pivots his representation of colonialvalues.

Postcolonial feminists believe that women were subjects; defenseless and abused, yet contended with their lots. A man's social standing was determined by the number of women he could "acquire". Like in Achebe's *Thing Fall Apart,* Okonkwo's father, Unoka, was unsuccessful as he had only one wife. Okonkwo, on the other hand, has many wives whom he batters indiscriminately. However, some events in *Things Fall Apart* depict women as resilient and strong. The much-revered position of being a priest for the gods is bestowed on women. Chielo is the priestess for Agbala while Ani is the earth goddess. This empowers and puts them and put them on a high pedestal in the society. Ekwefi is another strong character in the novel; she charts the course of her life as she boldly left her first husband to be with Okonkwo whom she strongly admires. She also defies the gods as she snucks after the priestess of Agbala to ensure that her sick daughter, Ezinma, is duly protected. She is a sharp contrast to Okonkwo, a coward who doesn't only kill his foster son, Ikemefuna, because he didn't want to be termed weak, but also commits suicide in the face of opposition. The character, Uzowulu, suffers in hands of his in-laws because he maltreated his wife; when the case is brought to the Egwugwu judges, the verdict is in favor of his wife. However, the judgment is questionable as the judges' rule that the woman should go back to her husband when he shows penitence without giving her a choice. Achebe uses Uzowulu's story to reveal the fact that the society doesn't totally encourage women battering.

It creates an understanding of a Hegemonic Discourse and Identity Politics visible in *Things Fall Apart*. This work answers few relevant questions like 'What are the troubles of an illiterate women?', 'What are the aftereffects of being chained to traditional ways of African society?', and 'How innocence of these characters causes vulnerability in their life?'.*Things Fall Apart* probes deep into the problems of modern African society which is a 'language above the sentence or above the clause'.

Hegemonic Discourse and Identity Politics in *InLove and Trouble :* Alice Walker's *In Love and Trouble* explores identity politics within the context of gender and race in America. Walker's characters navigate the intersectionality of their identities, grappling with societal expectations, racial discrimination, and the legacy of slavery. Her stories highlight the importance of reclaiming one's narrative and forging a sense of self amidst oppressive hegemonic structures. Through her vivid storytelling, Walker illustrates the power of self-assertion and the reclamation of identity as a means of resistance against systemic oppression.

As a latecomer to the second wave of women liberation movement, Alice Walker is a voice who is celebrated with great respect in modern world. Through the narration of the unique experiences of her community she asserts her claims against white hegemony, white women's racism, and the patriarchy and sexism of black men as well. However, she does not want to be labelled a 'feminist' and instead uses the term 'womanism' which refers to African American feminism or the feminism of women of color. In *In Search of Our Mother's Gardens: Womanist Prose (1983)* she says that she wants to use words that describe things correctly, and 'womanism' is a folk term that characterizes boldness, premature adulthood, a spirit of inquiry, capability, responsibility and leadership. She believes that it is relevant to use her own description in order to understand her particular identity and her particular journey towards achieving it. Gretchen E. Ziegenhals (1990) finds in this term an intention committed to mutuality, sensuality, creativity and freedom to speak up against or in defense of woman's understanding. Walker herself exploits these aspects in her writing and from these focal points tries to raise an awareness of where and how change is needed that will help to shed the burden of subjugation that a woman, especially a black American woman has borne for centuries. As far as her themes are concerned, love in its various forms becomes a motif of regeneration and healing, of empowerment and resistance, of a way of triumphing overconvention.

*InLoveandTrouble,*herfamousshortstory anthology, shows many such characters revolving around this trauma. One of them is "Roselily"whichis about ayoung mother off our children who is about to sacrifice her identity

to marry a Muslim. Although she is from Mississippi and he from Chicago, she overlooks the vast regional dividein order toget for her children the financial security that he offers. She is willing to take on the veiland sacrifice herown Christian identity and the inferior status accorded to women in the Muslimsociety.

The story is beautifully divided into eleven parts, each opening with a phrase from the marriage vows. The first, 'Dearly Beloved', they are gathered in the front porch of her house on highway sixty-one. The whizzing of the speeding cars shows the way that she has 'dragged' herself across her world into a dizzying life. She knows that the people gathered at her weedingare not the kind that he likes, respectable Mississippi folks, God fearing men and women who seem to usurp his Muslim sensibility. As she looks at the preacherand tries to force humility into her eyes,she remembers that he is there in the sight of Godto join this man and this woman. The thought that came to heris : .... of ropes, chains, handcuffs, his religion. His place of worship where she will be required to sit apart with covered head. In Chicago, a word she hears when thinking of smoke, from his description of what a cinder was, which they never had in Panther Burn. She sees hovering over the heads of the clean neighbours in her front yard black specks falling, clinging, from thesky....

What a relief, she thinks. What a vision, a view, from up so high. (Walker 4)

Her last husband was a good man but weak and could not support Roselily and her four children and then she thinks of this man who will be her husband and shies away from him. She is yet not reconciled to how the veil, *Parda*, will change her : She wonders how to make new roots. It is beyond her. She wonders what one does with memories in a brand-new life. This had seemed easy, until she thought of it. 'The reasons why .... the people who'shethinks, and does not wonder where the thought is from. (6)

All of a sudden, she feels old, yoked. An arm seems to reach out from behind her and snatch her backward : Her place will be in the home, he has said repeatedly, promising her rest she had prayed for. But now she wonders. When she is rested, what will she do? They will make babies - she thinks practically about her fine brown body, his strong black one. They will be inevitable. Her hands will be full. Full of what? Babies, she is not comforted. (7)

The thought that the new husband would free her, 'forever hold her', the 'romantic rush, the proposal, the promises for a new life, respectable, reclaimed, renewed' (7), all seem to be washed with a greyness. She thinks she loves the effect he will make to redo her into what he truly wants. His love for her makes her completely conscious of how unloved she was before. This is something; though it makes her unbearably sad. Oscillating

between the black and the white, the grey and the light, she lets herself be married and driven away. In the morning it will be Chicago : She feels ignorant, wrong, backward. She presses her worried fingers into his palm. He is standing in front of her. In the crush of well-wishing people, he does not look back. (9)

All these images work in a 'chain' not really a continuum but the chains that bind. She has sacrificed her freedom in order to get a secure future for herself and her children. The questions that the story raises are - Will the sacrifice really pay off? What are the dividends of being chained to another way of life? and, how will this step in the 'right' direction is going to better the lot ofwomen?

It is something which is expressed in Walker's another story "Her Sweet Jerome". It is a pathetic story of a woman who marries a man ten years younger than herself. She told herself that she shouldn't want him, he was so little and cute and young, but when she took into account that he was a school teacher, well, she just couldn't seem to get any rest until, as she put it, 'I were Mr. and Mrs. Jerome Franklin Washington the third, and that's the truth!' (25) She also knew that she was a big awkward woman and not particularly good to look at either :

.... With big bones and hard rubbery flesh. Her short arms ended in harm hands, and her neck was a squat roll of fat that protruded behind her head as a big bump. Her skin was rough and puffy, with plump mole like freckles down her cheeks. Her eyes glowered from under the mountain of her brow and were circled with expensive mauve shadow. (25)

But she ran a small beauty shop and made good money. Jerome was a dapper, every inch a gentleman who wants his wife to be equally so. Jealousy was, therefore, an emotion that was bound to creep in. The only consolation was that Jerome was absolutely given to his books. And then one day the giggling, gossip and smirks began, 'Your cute little man is sticking his finger into somebody else's pie' (28). Although she said she was not surprised and such gossip was malicious and mean, she started going to whorehouses and to prayer meetings, through parks and outside the city limits buying axes and pistols and knives alongside. They turned the whole town upside down looking at white girls, black women, brown beauties, ugly hags of all shades but found nothing. Her sweet Jerome went on reading as she had taken to grinding her teeth and tearing at her hair as she walked along. Meanwhile she stopped operating the beauty shop and her patrons were happy because she had developed the unnerving habit of asking everyone - 'you the one ain't you?' She steadily careened downhill and Jerome advanced in the opposite direction. He was known to be a scholar and anintellectual : He had friends among the educated, whose talk she found unusually trying, not that she was ever invited to listen to any of

it. His closest friend was the head of the school he taught in and had migrated south from some famous university in the North. He was a small slender man with a ferociously unruly beard and large mournful eyes. He called Jerome 'brother'. The women in Jerome's group wore short kinky hair and large hoop earrings. They stuck together, calling themselves by what they termed their 'African' names and never went to church. (31)

Then one night there was a meeting in the principal's house and she drunk pounced upon a group of friends he was sitting with. 'She heard 'slave trade' and 'violent overthrow' and 'off de pig', an expression she'd never heard before. One of the women, the only one of this group to acknowledge her, laughingly asked if she had 'come to join the revolution' (32). This revolution for her meant otherwise and now she left not a spec unturned in the house looking for that 'something' that would baretestimonytohersuspicion.Sherakedand raked, panting and sweating, 'her ashen face slowly colouring, with the belated rush of doomed comprehension' (33). And then it happened. A sizable pile of paperback books, which she had seen in his hands a little earlier, came to the forefront. 'Black' was the cone word that appeared, consistently on each cover:

Black Rage, Black Fire, Black Anger, Black Revenge, Black Vengeance, Black Hatred, Black Beauty, Black Revolution. Then the word 'revolution' took over. Revolution in the streets, Revolution from the Rooftops, Revolution in the hills, Revolution and Rebellion, Revolution and Black people in the United States, Revolution and Death. She looked with wonder at the books that were her husband's preoccupation, enraged that the obvious was what she had never guessed before. (34)

How many times had he laughed at her when she went looking for 'his' woman? With a sob she realized that she did not even know what the word revolution meant. With quiet care she kept the book neatly on his pillow, stabbed and ripped them with her knife and with a drought of kerosene, set her marriage bed on fire.

Another such rebel is the daughter in "The Child who Favored Daughter", who takes a white lover and suffers. The girl here has a father who is enraged when he comes to know through her letter to him that she loves a white man. He sits waiting for her on the porch with his shotgun leaning against the banister within his reach. He feels that if he cannot frighten her into chastity with his voice, he will threaten her with the gun. He waits tensely and then he remembers that once he had a sister called 'Daughter' who would give him anything she had, give anybody anything she had. She too had chosen to give her love to that cruel man for whom he had worked. She had been tied to the bed post and had given herself to the lord because of her misery. He had not forgiven her for the love she gave that knew nothing of master and slave. That hurt had slowly poisoned him:

The women in his life faced a sullen barrier of distrust and hateful mockery. He could not seem to help hating even the ones who loved him, and laughed loudest at the tones who cared for him, as if they were fools. His own wife, beaten into a cripple to prevent her from returning the imaginary overtures of the white landlord, killed herself while she was still young enough and strong enough to escape him. But she left a child, a girl, a daughter; a replica of Daughter, his dead sister. A replica in every way. (40)

Now when his own daughter did not relent marrying a white man, and did not deny that letter which she had written owning her love, he could only strike her :

She gazes up at him over her bruises and he sees her blouse, wet and slippery from the rain, has slipped completely off her shoulders and her high young breasts are bare. He gathers their fullness in his fingers and begins a slow twisting. The barking of the dogs creates frenzy in his ears and he is suddenly burning with unnamable desire. (45)

Such brazen acts of frenzy are engendered by racist fervor and in the days about which Walker was writing this seemed the most potent of the beliefs. Such vulnerability of the semi-literate, unknown to anything beyond the physical needs becomes a constant theme in Walker's stories. Ironically, the motive is not to expose but raise awareness of the ways of the world in which, especially women, black, rural should be ingrained. Rebels abound in Walker's fiction, rebels of all shapes and sizes, of all acumen and understanding. Black women's writing in general is shaped by history in that it involves reconstructing thedevelopmentofthecharacter's individual personality in relation to the historical forces that have shaped the migrations of their race and the struggles of their community. The idea of culture gives substance to this writing for it is a body of work given to the retrieval of the African American tradition - the language, songs, stories, dance, cuisine and all the age-old practices like quilt making, baking and gardening. Their texts are different from those of white women writers because they share a collective legacy of racist and sexist domination in addition to an engrained awareness of historical continuities. They speak out, speak up, and speak against or in defense of whatever is crucial for their being and becoming. Walker lends her willing voice to this community agenda and extends its politics by her distinct contribution of the 'color purple' - purple rage, purple royalty, purple blossoming wild in the open fields (Sinha30). She explores the oppressions, the insanity, the loyalties and the triumphs of black women. Deborah Rosenfelt (1991) says of the likes of themthat:

Their characteristic structure encompasses mythic progress from oppression, suffering, victimization, through various stages of awakening

sensuousness to active resistance and finally some form of victory, transformation or transcendence of despair. Feminist novels privilege woman's bonding and female friendships, reject, marginalize or subvert heterosexual love and passion, and interrogate family and motherhood. Their characteristic modalities are the bildungsroman and the utopia. Their characteristic tone compounds rage at women's oppression and revolutionary optimism about the possibility of change. (Rosenfelt269)

The text answers many concerns related to Hegemonic Discourse and Identity Politics. It defines that Alice Walker is a 'womanist' rather than a 'feminist'. The characters taken from *In Love and Trouble* characterizes boldness, premature adulthood, a spirit of inquiry, capability, responsibility and leadership. This short story anthology also discusseslove in its various forms. 'Love' here becomes a motif of regeneration and healing, of empowerment and resistance, of a way of triumphing over convention. *InLove and Trouble*, shows many such characters revolving around the theme of Hegemonic Discourse and Identity Politics created through Biafra movement in the African society. It also permeates the notion that how innocence caused vulnerability in the life of different women characters mentioned in this short story anthology. The images of characters like Roselily and Jerome's wife work in a 'chain' not really a continuum but the chains that bind.

Conclusion : Thus, we can say that the women characters portrayed in *Things Fall Apart* and *In Love and Trouble* characterize boldness, premature adulthood, a spirit of inquiry, capability, responsibility and leadership through discourse and vulnerability. Love in its various forms is also aptly presented through the dialogues of these women characters. In these two primary texts 'love' becomes a motif of regeneration and healing, of empowerment and resistance, of a way of triumphing over convention. The paper also briefly analyzed the discourse created through description of mental trauma of various women characters mentioned in the two primary texts. Biafra movement in the African society is considered as one major factor behind establishing vulnerability in the life of African women. Innocence visible in the characters like Roselily and Jerome's wife work in a 'chain' not really a continuum but the chains that bind. The discourse analysis given in the paper ignites the troubles of an illiterate women, aftereffects of being chained to traditional ways, and innocence as the cause of vulnerability. The language of modern African society is a 'language above the sentence or above the clause'.Since communication happens all the time, discourse is a huge part of our everyday lives and this paper envisages implicit or communication-based instructions visible in *Things Fall Apart* and*In Love and Trouble.*

In examining the themes of hegemonic discourse and identity politics

in Chinua Achebe's *Things Fall Apart* and Alice Walker's *In Love and Trouble*, it becomes evident that both authors provide unique insights into the complex interplay between culture, power, and individual identity. These two literary works, set in different times and places, share common threads in their exploration of how dominant narratives and structures impact the lives of marginalized individuals and communities. Achebe and Walker, through their respective works, illuminate the enduring relevance of these themes in our contemporary world. Both authors emphasize the significance of understanding and challenging hegemonic discourse as a means of preserving cultural heritage, individuality, and the resilience of marginalized communities. Their stories serve as reminders that the battle for self-determination, agency, and authentic identity continues to be a fundamental aspect of the human experience, transcending time and place.

Works Cited

1. Appiah, K. A. "The Politics of Identity." *Daedalus*, vol. 135, no. 4, 2006, pp. 15-19.
2. Ashcroft, Bill, et al. *The Post-Colonial Studies Reader*. Routledge, 1995.
3. Benhabib, Seyla. *The Claims of Culture: Equality and Diversity in the Global Era*. Princeton University Press, 2002.
4. Bickford, Susan. "Anti-Identity Politics: Feminism, Democracy and the Complexities of Citizenship." *Hypatia*, vol. 12, 1997.
5. Bilgrami, Akeel. "Notes Towards the Definition of Identity." *Daedalus*, vol. 135, no. 4, 2006, p. 5.
6. Butler, Judith. *Excitable Speech: A Politics of the Performative*. Routledge, 1997.
7. Dean, Jodi. *Solidarity of Strangers: Feminism after Identity Politics*. University of California Press, 1996.
8. Dietz, Mary G. *Turning Operation: Feminism, Arendt and Politics*. Routledge, 2002.
9. Du Preez, Marlene. "Coloureds – The Most Authentic SA Citizens." *The Star*, 13 April 2006.
10. Foucault, Michel. "The Ethics for Concern for the Self as a Practice of Freedom." *Ethics: Subjectivity and Truth*, edited by Paul Rabinow, The New Press.
11. Keita, Lansana. "Race, Identity and Africanity: A Reply to EboussiBoulaga." *Codesria Bulletin*, no. 16, 2004.
12. Kruks, Sonia. *Retrieving Experience: Subjectivity and Recognition in Feminist Politics*. Cornell University Press, 2001.
13. Maingueneau, Dominique. "Literature and Discourse Analysis." *Acta LinguisticaHafniensia*, vol. 42, no. 1, 2010, 147 – 158 , DOI: 10.1080/03740463.2010.482325
14. McWhorter, John H. "Why I'm Black, Not African American." *Los*

Angeles Times, 8 Sept. 2004.
15. Nullis, Clare. "Township Tourism Booming in South Africa." *The Associated Press*, London, 2007.
16. Parker, Richard D. "Five Thesis on Identity Politics." *Harvard Journal of Law and Public Policy*, vol. 29, no. 1, 2005, p. 53.
17. Rosenfelt, Deborah. "Feminism, Post Feminism and Contemporary Women's Fiction." *Tradition and the Talents of Women*, edited by Florence Howe, University of Illinois Press, 1991.
18. Said, Edward W. *Orientalism*. W. Ross MacDonald School, Resource Services Library, 2006.
19. Sinha, Nandita. *Alice Walker's The Color Purple: A Reader's Companion*. Asia Book Club, 2002.
20. Spivak, Gayatri. "Can the Subaltern Speak." *Marxism and the Interpretation of Culture*, 1988.
21. Walder, Dennis. *Post-Colonial Literatures in English: History, Language, Theory*. Blackwell, 1998.
22. Walker, Alice. *In Love and Trouble*. The Women's Press, 1984.
23. White, John K. "Barack Obama and the Politics of Race." *New York Times*, 6 Jan. 2005.
24. Whittaker, David. *Chinua Achebe's Things Fall Apart, 1958-2008*. Rodopi: B.V., 2011.
25. Ziegenhals, G. E. Quoted in P. Smith. "Green Lap, Brown Embrace, Blue Body: The Eco-Spirituality of Alice Walker." [https://www.thefreelibrary.com/Green+lap%2c+brown+embrace%2c+blue+body%3a+the+ecospirituality+of+Alice...-a054064296]

●

Humour, Sarcasm and Satire in Meena Kandasamy's *The Gypsy Goddess*

Priyanka Ratnaparkhi*, Dr. Prafulkumar Prakash Vaidhya**

Abstract : MeenaKandasamy is an acclaimed Indian poet, novelist, and activist known for her bold and unapologetic exploration of issues such as caste, gender, and social injustice. Kandasamy is known for her fierce writing style and passion. She is well known as an "angry Dalit" writer.Through her powerful works like The Gypsy Goddess and When I Hit You: Or, A Portrait of the Writer as a Young Wife, she challenges oppressive systems and amplifies marginalized voices with a distinctive blend of lyrical beauty and political urgency.This paper examines how Kandasamy uses sarcasm, dark humour and satire in her writings. This acts as a hidden layer of resistance in her works. She also integrates sarcasm and dark humour which have not been deeply explored in most of her work. All these techniques help her to point out the brutality of the socially prejudiced treatment of marginalised communities. Using humour, she adds depth to her storytelling and strengthens her message which she wants to convey to her readers. Her humour extends to her storytelling methods breaking away the usual way of storytelling arrangement. She directly addresses her readers by asking questions about the effectiveness of literature in conveying real-life struggles. Through this meta-fictional approach, she uses humour and sarcasm to criticise the oppressors. This innovative use of humour helps her to criticise not only caste and gender injustices but also the literary traditions that often exclude the real-life experiences of marginalizedpeople.

Keywords : Meena Kandasamy, The Gypsy Goddess, Humour, Sarcasm, Satire.

Introduction : Meena Kandasamy (hereafter Kandasamy) is an Indian writer, poet, and activist known for her works that explore themes of caste, gender, and social justice, often blending poetry with narrative fiction. Her very first novel "The Gypsy Goddess" (hereafter TGG)is a powerful retelling of the 1969 Kilvenmani massacre located in the districts of Tanjaur, Tamil Nadu. This incident is about a problem which persisted between the upper-caste landlords and the lower-caste agricultural labourers. These agricultural labourers in association with communist

* Research Scholar- Institution of Higher Learning Research and Specialised Studies in English, Sardar Patel Mahavidyalaya, Ganj Ward, Chandrapur, Maharashtra.

** Associate Professor of English- Institution of Higher Learning Research and Specialised Studies in English, Sardar Patel Mahavidyalaya, Ganj Ward, Chandrapur, Maharashtra

parties fought against the landlords asking for a raise in their wages. The labourers believed that the wages they received were insufficient compared to the amount of work they performed.

The poor lower caste labourers did not even ask for a money rise but instead, they asked for an extra measure of rice because the amount of rice they were getting was not sufficient for them to feed their families. However, these rich upper-caste landlords were not happy about the lower-caste people standing in front of them and protesting against them. They even did not like the involvement of the communist party which at that time was not very prevalent. At that time communist people were seen as Naxalites, terrorists, and revolutionary people who were not suitable for society but would affect the peace of the society. These communist people were the only people who supported these agricultural labourers and fought beside them. The upper caste landlords using their power in their hands one day decided to burn the huts of these lower caste labourers, which killed 44 innocent lives mainly women, and children. This massacre occurred in Tamil Nadu in 1968 on the Christmas day. This was the darkest incident that happened in the state. The verdict was given in the favour of landlords. The court precisely stated that people who own cars and have acres of land will not burn the huts of poor agricultural labourers.

This massacre is a brutal example of caste violence in India, which Kandasamy brings to light with intense passion and anger. However, she does not just use anger in her novel but also uses dark humour and satire that attracts the attention of the people to the biased caste rules and patriarchy. Her humour in the novel TGG is delicate, hidden underneath the wrath of her words, adding a lot to what she wants to convey. Her absurdity is often sarcastic, which means she says things in such ways that make people think exactly the opposite of what is being said. It examines how she uses satire and dark humour to show readers how unfair the caste and patriarchal systems are, adding a fresh sheet of wisdom to her criticism of society.

Dark Humour : A Tool to Criticise the Caste and Patriarchal system : Dark humour, also known as black comedy, is a style of humour that makes light of serious, morbid, or taboo subjects such as death, tragedy, or suffering. It often uses irony or satire to highlight the absurdity of grim situations, balancing wit with shock value to provoke laughter while addressing uncomfortable or controversial topics. Kandasamy's humour differs from the type of humour that will make you laugh out loud, instead, it is a darker type of humour often called dark or black humour, which fits fine with the heartbreaking and vicious events she describes. She uses sarcasm to show how people who are in power like upper caste landlords and government bureaucrats act in morally incorrect ways. For

example, many upper caste landlords and government officials in the story talk about being just and virtuous but are the very ones who abuse and exploit Dalits, through satire she shows us the reality of the caste system.

Kandasamy uses dark humour to critique caste violence and systemic oppression in TGG.She mocks the landlords, dehumanization of Dalitlabourers, writing, ''Look, tell me the name of the troublemakers. We will take them one by one. Dead people do not speak or shout in public meetings. They are silent and well behaved, and they serve as a good example toothers"(Kandasamy, 54-55).In TGG, she uses dark humour to show the harshness and cruelty of the ruling class. When the news of a man's death spreads, the landlords "rejoiced and called for grand celebrations" (Kandasamy, 105). This is an example of dark humor, as the celebration of someone's death contrasts sharply with the reality of the violence and injustice behind it. The line "a corpse that has gone to the burning ground does not return" (Kandasamy, 105) suggests that the death is final, and the person is quickly forgotten. The landlords' feasting on the dead man's flesh highlights how they see the oppressed as nothing more than tools to use and discard. Through this dark humour, Kandasamy makes us reflect on how the powerful celebrate and ignore the suffering of the poor and marginalized.

In the novel TGG, Kandasamy makes fun of the noticeable antagonists like the unjust landowners, and points out the silent supporters, the people who do not take part to harm or to do anything to help. Kandasamy's black humour exposes the nonsensicality of the caste-based discrimination that keeps the people divided. She highlights caste-based discrimination as violent and absurd. By using these techniques, she encourages the readers to question why such ill practiced system still exists. Her humour confronts the readers to move past the passive acceptance of societal norms and urges them to critically examine the flaws of the systems that upholddiscrimination.

Irony in storytelling : Kandasamy's way of storytelling in The Gypsy Goddess is exclusive. She deviates from a typical novel arrangement; but as an alternative, she voices out directly to the readers. This style of writing is known as "breaking the fourth wall," which means she directly reaches out to the readers telling them how hard it is to tell such a violent story of the past in words. She uses irony to show readers how regular storytelling does not do justice to conveying the terror of the real world. In other words, we can say that Kandasamy's storytelling style is a part of her critique.

She wants to say that by the traditional storytelling method, she cannot show the cruel truth of caste discrimination; this ironic storytelling

method makes readers ask questions about the caste system as well as the role of literature in picturing inequality. Kandasamy through this point explains that literature fails to do justice to the lives of marginalised people. In TGG, Kandasamy uses irony masterfully to show the real faces of caste oppression, patriarchal structures, and societal indifferences, adding layers to her storytelling.In TGG, Kandasamy critiques the systemic oppression embedded in the legal and political frameworks of society. The novel demonstrates how laws, which are meant to provide justice and equality, instead serve the interests of powerful. As she narrates "All the laws have been framed by the government only to protect the ruling classes and to safeguard their political and economic interests" (Kandasamy, 94).

This statement embodies situational irony—while laws are supposed to ensure fairness and protection for all citizens, they are, in reality, crafted to maintain the dominance of the ruling classes. This contrast between the intended and actual purpose of laws exposes the deep-rooted inequalities in the political system and critiques the way power structures manipulate legal frameworks to perpetuate their control over marginalized communities.

Satire as a form of Power : Kandasamy uses satire to gain power over the oppressive system which she is criticising. She uses humour and sarcasm to mock the dictators and take away their authority. In TGG, the people who support caste and patriarchy she makes them look unwise and weak by her satirical comments. By using humour, she turns the power dynamic reversed. Instead of permitting the upper caste people to look powerful or intimidating, she makes them look foolish, which gives a sense of happiness and justice to the readers and the victims of caste violence. Her humour helps her to connect with her audience. Kandasamy deals with extremely difficult topics in this particular novel but her use of humour draws readers in, allowing the readers to understand the issues and understand them without feeling overwhelmed. She invites readers to engage with the story more enthusiastically by making her audience laugh at the illogic caste system and patriarchal attitudes. All this makes the readers aware of the problems harmful social norms. In such a way Kandasamy's satire strengthens not only her voice but empowers her readers too.

She uses satire to showcase the excessive reach of government control in the novel, highlighting the absurdity of policies that exploit the most basic aspects of life. One character sarcastically remarks, "They tax land, they tax water, will the party of the rising sun next tax light?" (Kandasamy, 50). This rhetorical question is an example of satire, where the exaggerated suggestion of taxing light—something essential for survival—serves to mock the overreach of governmental authority. Through this humorous exaggeration, she exposes the exploitation of natural resources and critiques a system that prioritizes profit over the welfare of the people,

especially the marginalized. The satire also underscores the absurdity of how far the ruling class is willing to go to maintain control, making a pointed commentary onthe unjust systems of power that persist in society.

Finally, power lies in the satire and its ability to provoke thoughts of change. By over stressing the flaws of the caste and patriarchal system, she engages the readers critically to find solutions to the social structures around them. In The Gypsy Goddess, satire becomes a weapon of resistance.

Humour in Resistance Literature : Kandasamy's usage of humour is part of a tradition known as "resistance literature". Humour plays a significant role in resistance literature. While resistance literature often tackles thoughtful issues example injustice, discrimination, and violence, humour introduces a new layer of difficulty that intensifies its impact. Many writers from oppressed communities use this type of writing to challenge and fight against caste discrimination. They use humour, satire and irony as tools to criticise unjust beliefs. Kandasamy incorporates dark humour and sarcasm to expand the conversation on various caste issues and the patriarchal system. In this way, she reaches a broader audience, not just the scholars but the ordinary readers too who can relate humour and understand the injustice behind it. In most of the stories about lower caste communities, characters are often depicted as helpless, weak, powerless victims.

Humour as resistance is a powerful tool used by characters to cope with, defy, and expose the injustices they face in TGG. Humour allows them to navigate the brutality of their circumstances and resist the dehumanizing forces of caste, patriarchy, and power. Through dark humour, sarcasm, and irony, the characters express their defiance, often challenging the absurdity and cruelty of the systems that oppress them. Below are some key examples of humour as resistance in the novel:"When the fire was set, the landlords were the first to hide in their homes. They knew the consequences of what they had done, but they were unwilling to face the wrath of the people. Their resistance was in silence." (Kandasamy130).The humour here lies in the ironic situation where the powerful landlords, who have caused immense harm, react to the revolt with fear and retreat. The idea that the oppressors are "hiding" rather than confronting the uprising is a form of dark humour. It reflects how, even though they are the cause of suffering, they now face the threat of retaliation from those they have oppressed, undermining their previous dominance.

In Kandasamy's story, the characters do not just suffer, they resist too, and the resistance of the characters is portrayed through sarcasm. Her characters laugh at their oppressors and the entire government system that looks them down, this shows they are not just victims, they are a strong agency. In resistance literature, humour is more than a stylish device-it is a rebellion. It changes the power dynamics, encourages the marginalised,

and fosters critical awareness.Combining all this humour in literature Kandasamy ensures that the message of rebelliousness and hope echoes long even after the last word is read.

Conclusion : Kandasamy, in her novel The Gypssy Goddess, uses humour and satire which reveal the brutality, unkindness, and irrationality of caste and gender-based discrimination. Her dark humour is a powerful tool that criticises as well as challenges social norms and consent practices of injustice. Her use of sarcasm allows her to add complexity to the story but also helps readers see the caste and patriarchal system as harmful and deeply irrational. By elaborating on the use of satire in resistance literature, she shows that even when people face harsh oppression, humour can act as a valuable form of protest and a way to demand change.

She masterfully employs humour, sarcasm, and satire as potent tools of resistance against the oppressive social and political systems that the characters endure in the novel. Through sharp wit and biting irony, she critiques the deeply entrenched caste discrimination, class disparities, and the corrupt nature of power. Humour, often dark and sardonic, allows the marginalized to reclaim agency and resist the dehumanizing forces around them. It underscores the absurdity of their situations, revealing the hypocrisy of the ruling classes and the brutal inequalities they perpetuate. By using satire, she not only exposes the flaws and contradictions in society but also offers a space for defiance, showing that even in the face of violence and oppression, laughter can be a form of survival and protest. Ultimately, her humour, sarcasm, satire as an act of defiance is a way to reclaim power and dignity in the face of systemic violence. It disrupts traditional narratives of victimhood, portraying the oppressed not as passive sufferers but as individuals capable of resistance, resilience, and agency. Through her sharp wit and unflinching critique, she proves that even in the face of extreme injustice, humour can be a radical act of rebellion and a powerful catalyst for social change.

Works Cited

- Batra, M. “Satire in Contemporary Indian Literature: Perspectives on Gender and Caste”.Journal of South Asian Studies, Vol. 42, Issue 1, pp. 55-71, 2020.
- Gajarawala, T. J. Untouchable Fictions: Literary Realism and the Crisis of Caste. Fordham University Press, 2013.
- Kandasamy, Meena. *The Gypsy Goddess.* Atlantic Books, 2014.
- Nayar, P. K. *Postcolonial Literature: An Introduction.* Pearson, 2013.
- Rao, A. “Dalit Writing as Resistance: The Power of Humour and Irony.” Indian Journal of Social Work, Vol. 79, Issue 3, pp. 367-381, 2018.

●

The Adoption and Transformation of Technology in Education to Empower Learners : NEP-2020 Initiatives

Khushboo Verma*, Raj Kumar Prajapati**

Abstract : Education can be transformed when teachers and students synthesise information from diverse disciplines and experiences, critically weigh dramatically different perspectives, and incorporate varied inquiry. The advancement of technology has resulted in significant changes in practically every aspect of existence. Technology has also had an impact on the educational process, and face-to-face learning has evolved significantly over the previous decade. Now online education has traditionally been seen as an alternative route, especially suitable for young learners seeking educational opportunities. Due to the growing popularity of online learning and video conferencing tools, even educational institutions are beginning to see the value of digital transformation in education. As a result, this is the right time to implement technological tools that will improve the way students learn since innovative teaching methods foster students' critical and creative thinking. Therefore, we need to comprehend how technology can assist students in discovering new ways of learning.This research paper briefly discusses the major development of digital technology to empower both teachers and students, as well as the opportunities and obstacles of technology in education.

Keywords : Digital Education, Technology, NEP 2020, Teaching and Learning

INTRODUCTION : The landscape of education today has irrevocably changed due to technological advancement over the last two decades. Information and communications technology (ICT) has made revolutionary advancements, notably in computers, mobile devices, and the Internet fields. This has sparked a renaissance in education technology, which we use to describe any ICT application that aspires to enhance education. Families, governments, and educational institutions are beginning to recognize the importance of technology in education and making the necessary investments. The impact of these technologies is expected to be amplified in the upcoming years by new domains such as artificial intelligence, big data, and machine learning. This will accelerate the learning and adjustment cycles and increase the already bewildering array of educational products available.

* Research Scholar- Department of Education, Indira Gandhi National Tribal University, Amarkantak, Madhya Pradesh

** Research Scholar- Department of Education Indira Gandhi National Tribal University Amarkantak Madhya Pradesh

There are several ways in which technology can transform education. Delivering tailored and interactive information that takes into account different learners' learning styles and paces, can improve the educational experience. Geographical barriers to education are removed and education becomes more accessible to all students through online platforms and e-learning tools. Technology also makes it possible for students to collaborate on projects even when they are physically apart, promoting collaborative learning. With the development of augmented and virtual reality, students can participate in immersive, hands-on learning that brings abstract ideas to life. Data analytics can also assist educators in evaluating student development and adjusting their teaching methods as necessary. In general, technology improves education by increasing accessibility while simultaneously improving its quality, making it more dynamic, adaptable, and efficient.

OBJECTIVES :

1. To Study the importance of Technology in Education.
2. To Discuss the role of Technology in the digitalization of education.
3. To know the major steps taken by the NEP2020 to promote technology in education.
4. To investigate the opportunities and challenges faced by technology in implementing education.

RESEARCH METHODOLOGY : This research article's title refers to how technology is changing education, and it has been written using secondary data. Important findings have been developed throughout this full study paper, which has been constructed using secondary data.

TECHNOLOGY IN EDUCATION : Students' learning and interaction increase when they utilize modern equipment and technological tools and how exactly today's students choose to use technology and how using it affects their learning (Raja and Nagasubramani, 2018). When technology is involved, students perceive it as far more engaging and packed with fascinating opportunities. It is possible to impart knowledge in an effective and practical method. Our minds today tend to work faster when helped by modern technology in every area of life, including education. These days, it is impossible to resist relying on such an innovation, which merely makes life easier and seamless, even in schools, universities, and colleges. Today's students have access to technological resources in several ways:

1. Internet access and 24/7 connectivity : Not only are the lives of common people changing due to advancements in internet connectivity, but corporate practices are also altering. The interconnection of computing equipment embedded in ordinary things through the Internet, known as the Internet of Things, allows them to share data and has, among other benefits,

greatly increased efficiency (Morning Studio editors, 2022). Everything being connected allows for easier access to information and the ability to predict and fix many issues before they arise.

2. Using projectors and visuals : Teachers can utilize projectors in the classroom in a variety of ways that are interesting, enjoyable, and improve interactive learning. Projectors range from conventional classroom projectors attached to the ceiling to ultraportable digital projectors (Groenewald, 2023). On the other hand, technology is revolutionizing classrooms and helping teachers create engaging learning environments. A regular classroom can be instantly transformed into a real-time digital classroom with interactive projectors. Even a traditional overhead projector can improve class time by reducing the instructor's time and making note-taking easier for the students.

3. Digital footprint in the education sector : When you use the internet, you leave behind a trail of personal data that is collected and stored. According to Buitrago-Ropero et al. (2020), among other things, digital footprints (DF) provide pertinent information about educational activities and processes related to strategies of academic assessment, identification of students' skills and psychological traits, prediction of the actions of the various educational actors, and trends of permanence and dropout. The collection of personal information you leave online, such as your email address, things you purchase, and place of residence, is known as your "digital footprint." It includes data that businesses gather about you via cookies and tracking scripts, as well as information you voluntarily offer through online forms, blog profiles, and social network posts (Nordli, 2022).

4. Technology-assisted online degrees : The ability to get a bachelor's, master's, or doctorate online is one of the good consequences of technology on education, but this is not the only benefit. Learning online comes naturally to small children, as they are already familiar with using computers and iPads. Younger age groups can benefit from learning through interactive digital games that provide feedback on their accuracy.

HOW TECHNOLOGY DIGITALIZED EDUCATION : Technology has four roles in the field of education: it can be used to give teaching, integrate it into the curriculum, teach itself, and improve the learning process as a whole (Raja and Nagasubramani, 2018). Technology has caused education to shift from being passive and reactive to becoming dedicated and participatory. Education is essential in both industrial and academic settings. In the former, personnel receive training or instruction to help them modify the way they carry out duties. In the latter case, teaching should aim to stimulate students' curiosity. In any case, students' conceptual understanding and retention can be enhanced by the use of

technology. The way teachers and students teach and learn has been profoundly altered by technology, which has helped to digitalize education. Below is a summary of how technology has digitalized education.

1. Online learning platforms : Coursera, edX, and Swayam are just a few examples of the platforms that have been made possible by technology. According to Hew, and Cheung, (2014), these platforms give a large selection of courses, many of which are offered by prestigious collegesandinstitutes.

2. Digital Textbooks & E-books : These increasingly popular resources are replacing conventional books in many situations. According to Dahlstrom, Brooks, and Bischel (2015), the ease of digital formats is the motivation for this change.

3. Virtual Classrooms and Webinars : Webinars and virtual classes have been made possible by programs like Zoom, Google Meet, and Microsoft Teams. They are now necessary for remote learning, enabling teachers to deliver lessons and engage with students in real time (Gallagher, & Sbar, 2016).

4. Interactive Multimedia Content : Technology has made it possible to create interactive multimedia content, such as gamified learning modules, simulations, and movies. These improve knowledge and involvement (Mayer, 2014).

5. Personalization and Artificial Intelligence (AI) : Educational software with AI capabilities can adjust to each student's unique learning preferences. According to Beck and Schmidt (2016), these systems offer individualized learning experiences through the use of data analytics.

6. Massive Open Online Courses (MOOCs) : MOOCs provide a global audience with free or inexpensive courses. With well-known colleges and organizations offering courses, they have democratized access to education (Daniel, 2012).

7. Learning Management Systems (LMS) : Moodle and Blackboard, among other LMS, have grown to be essential components of numerous educational institutions. They offer a platform for material distribution, assessment, and course management (Chen, et al., 2010).

8. Digital Assessment and Feedback : Automated grading, digital feedback tools, and online tests simplify the assessment process, saving teachers time and enabling students to receive feedback on time.

9. Cloud computing : Students and teachers can easily access and share resources through cloud-based storage and collaboration technologies like Dropbox and Google Drive.

10. Mobile Learning : With the increasing use of smartphones and tablets, learning is now possible from any location. Students may study on the go with the help of mobile apps and flexible websites.

Online learning environments, digital materials, virtual classrooms, artificial intelligence, and personalized learning have all come about as a result of technology. The way education is provided and accessed in the current world has undergone a substantial transformation because of these advancements.

NEP2020 PROMOTES TECHNOLOGY IN EDUCATION : In an age of swift technological advancement, the education sector is set to see a momentous transformation. Integration of digital technology into education is evolving from a trend to a need that could fundamentally alter how we teach and learn. Acknowledging the significance of this digital revolution, the National Education Policy (NEP) of 2020, an all-encompassing structure for the advancement of education in India, has initiated several innovative efforts to use technology to empower students. This significant turning point in the history of education is paving the way for an exciting journey towards more accessible, inclusive, and customized learning experiences that better match education with the opportunities and needs of the twenty-first century. In India, the National Education Policy (NEP) 2020 seeks to encourage the use of technology in the classroom at all levels, from elementary school to university education. Several significant points about the use of technology in education are included in National Education Policy 2020 (NEP 2020). Among the most important points in this context are as follows :

1. Online Education : The policy encourages the growth of online learning, particularly in the higher education sector. Through online and mixed learning, it aims to raise the Gross Enrollment Ratio (GER) by giving students access to courses from different universities.

2. Digital material and Resources : To make learning more dynamic and interesting, the policy promotes the creation and utilization of digital material and resources. In addition to traditional textbooks, this also covers e-textbooks, e-learning materials, and open educational resources (OER).

3. Online Learning Platforms : NEP 2020 encourages the use of MOOCs and online learning platforms to give a larger audience access to high-quality education. Students can now access a wide variety of courses and learn at their own pace.

4. Virtual Labs : NEP 2020 encourages the creation of virtual labs, which give students the chance to carry out experiments and pick up useful skills in a virtual setting. This aids in getting around physical infrastructure constraints.

5. Digital Infrastructure : The development of digital infrastructure and connection in educational institutions, including schools, is emphasized under NEP 2020. It aims to guarantee that all colleges, institutions, and schools have access to the required hardware and high-

speed internet.

6. National Educational Technology Forum (NETF) : As part of its recommendations for best practices and ideas exchange about the use of technology in education, the NEP suggests creating a National Educational Technology Forum.

7. E-Content in Regional Languages : The creation of e-content in regional languages is emphasized as a means of improving accessibility and inclusivity in education for linguistically varied populations.

8. Blended Learning : To enable a more flexible and individualized learning experience, the policy promotes a combination of traditional and online learning modalities. It acknowledges how technology may help all students, especially those with disabilities, have access to education.

9. Teacher Education : NEP 2020 highlights the significance of providing educators with the necessary training to use technology in the classroom. Pre-service and in-service teacher training programs are included in this to develop pedagogical and digital literacy.

10. Assessment and Evaluation : Fair and open assessment and evaluation procedures are promoted by the policy through the use of technology. Digital portfolios, online coursework, and computer-based assessment can all fall under this category.

11. Research and Innovation : To create new tools, platforms, and techniques that can improve the teaching and learning process, the policy promotes research and innovation in the field of educational technology.

12. Integration of Artificial Intelligence : NEP 2020 encourages the integration of artificial intelligence (AI) to offer analytics, adaptive assessments, and personalized learning experiences. It acknowledges the potential of AI in education.

India's National Education Policy 2020 seeks to use technology to enhance the standard, accessibility, and inclusivity of education throughout the nation while also acknowledging its transformative potential. The initiative aims to integrate technology into India's education system by supporting teacher training, digital content creation, digital infrastructure, and research.

OPPORTUNITIES OF TECHNOLOGY IN EDUCATION

1. Ensuring that students with limited resources have fair access to digital tools and internet connectivity can enable them to access educational materials and opportunities that were previouslyunaffordable. Regardless of location, technology offers access to a variety of educational resources, such as multimedia content, online courses, simulations, and e-books (Hew and Cheung, 2013).

2. By including instruction in digital literacy, curriculum can enable students to acquire the critical thinking, problem-solving, and digital

citizenship skills needed to succeed in the digital age. Also, Digital tools promote interaction and knowledge sharing by facilitating global collaboration between experts, educators, and students (Roschelle and Teasley, 1995).

3. By practicing mindful technology use and teaching students how to manage digital distractions, educators may help students maximize the positive effects of technology on their education while reducing its detrimental effects.

4. According to Prince (2004), interactive technologies encourage students to actively participate, engage, and collaborate, which leads to a higher knowledge and recall of topics.

5. Teaching students about best practices for digital privacy and security can enable them to safeguard their data and use the internet responsibly and safely.

6. By imparting critical assessment skills and offering direction on identifying reliable sources, educators may enable students to access and assess internet content with ease.

7. Technology enhances student learning outcomes by supporting creative assessment methods and prompt, constructive feedback systems (Black and Wiliam, 2009).

8. By utilizing free or inexpensive digital technologies and open educational resources (OER), instructors and students can gain access to top-notch resources and cutting-edge learning experiences without having to make a substantial financial commitment.

9. Personalized learning experiences that are catered to each student's requirements, preferences, and learning style are made possible by technology (Pane, et al., 2014).

Education has undergone a technological revolution, with a multitude of potential for improved learning outcomes. These sources offer a thorough grasp of the effects of technology on teaching and learning techniques, as well as insights into the benefits and effectiveness of integrating it into the classroom.

CHALLENGES OF ICT IN EDUCATION : Technology integration in the classroom has many advantages, but it also has drawbacks and challenges of its own. The following are some common issues related to technology in the classroom :

1. Equity and Access : There is a digital divide that widens the already existing gaps in educational opportunities by preventing some students from having equal access to technology and the internet.

2. Digital Literacy and Skills Gap : The insufficiency of digital literacy abilities among students and teachers prevents them from utilizing technology for teaching and learning in effective ways.

3. Distraction and Overload : Students' capacity to concentrate and

learn successfully might be negatively impacted by technology when it comes to distractions and information overload in the classroom.

4. Privacy and Security Issues : Using technology increases your risk of cyberattacks, data breaches, and unwanted access to private information.

5. Quality of Online Content : Teachers may find it difficult to properly select and assess digital content since not all online resources are of good quality.

6. Cost and Sustainability : Using and maintaining technology in the classroom can be expensive, particularly for institutions or schools with limited funding.

By exploring these points, educators and policymakers can learn more about the difficulties that technology in education presents and try to find solutions.Top of Form

CONCLUSION : Overall, the integration of technology into the educational system is a significant development that has the potential to change the way that people think about learning and provide both teachers and students more power. Education is now more interactive, individualized, and accessible than it has ever been possible because of the integration of digital tools and platforms. Large information libraries are now readily available to students, allowing them to explore and study on their own outside of typical classroom settings. In addition, technology has made it easier to create immersive and captivating learning environments by utilizing virtual reality, simulations, and multimedia materials to improve comprehension and memory.

Technology has also democratized education by removing obstacles to participation and allowing people from a variety of backgrounds access to learning possibilities that were previously unattainable. People can now learn new skills and information at their own pace and convenience thanks to online courses, educational applications, and open educational materials, which have created opportunities for lifelong learning. Furthermore, technology has made it possible for people to collaborate and interact on a global scale, which has promoted cross-cultural interchange and cooperation between students and educators around the world.

REFERENCES

- Beck, J. E., & Schmidt, E. A. (2016). The Virtual Teaching Assistant: Using Natural Language Processing to Monitor and Support Online Learning. *Journal of Learning Analytics, 3*(2), 157-178.
- Black, P., & Wiliam, D. (2009). Developing the Theory of Formative Assessment. *Educational Assessment, Evaluation and Accountability, 21*(1), 5-31.
- Buitrago-Ropero, M. E., Ramírez-Montoya, M. S., & Laverde, A. C. (2020). Digital footprints (2005-2019): a systematic mapping of studies in education. *Interactive Learning Environments*, *28*(7), 1-14. https://

doi.org/10.1080/10494820.2020.1814821
- Chen, P. S., Lambert, A. D., & Guidry, K. R. (2010). Engaging online learners: The impact of Web-based learning technology on college student engagement. *Computers & Education, 54*(4), 1222-1232.
- Dahlstrom, E., Brooks, D. C., & Bischel, J. (2015). *The Current Ecosystem of Learning Management Systems in Higher Education: Student, Faculty, and IT Perspectives.* Research report, EDUCAUSE Center for Analysis and Research.
- Daniel, J. S. (2012). Making sense of MOOCs: Musings in a maze of myth, paradox and possibility. *Journal of Interactive Media in Education, 3*(1), 18.
- Gallagher, D. J., & Sbar, A. E. (2016). An Exploration of Pre-Service Teachers' Expectations of Virtual Schools: Is This the Future of Education? *Journal of Research on Technology in Education*, *48*(4), 297-311.
- Groenewald, R. (2023, October 16). *How To Use A Projector in the Classroom.* Fractus Learning. Https://Www.fractuslearning.com/. https://www.fractuslearning.com/how-to-use-classroom-projector/
- Hew, K. F., & Cheung, W. S. (2014). Students' and instructors' use of massive open online courses (MOOCs): Motivations and challenges. *Educational Research Review*, *12*, 45-58.
- Hew, K. F., & Cheung, W. S. (2013). Use of Web 2.0 Technologies in K-12 and Higher Education: The Search for Evidence-Based Practice. Educational Research Review, 9, 47–64.
- Mayer, R. E. (2014). *Cognitive theory of multimedia learning.* The Cambridge Handbook of Multimedia Learning, 43-71.
- Ministry of Human Resources Development (2020). National Education Policy 2020. Government of India. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
- Morning Studio Editors (2022, January 13). *How innovative, high-speed connectivity will help businesses raise their game.* South China Morning Post. https://www.scmp.com/presented/tech/topics/ucloudlink/article/3162782/how-innovative-high-speed-connectivity-will-help
- Nordli, B. (2022, July 28). *What Is A Digital Footprint? Built-In*. Builtin.com. https://builtin.com/cybersecurity/digital-footprint
- Pane, J. F., Griffin, B. A., McCaffrey, D. F., & Karam, R. (2014). Effectiveness of Cognitive Tutor Algebra I at Scale. Educational Evaluation and Policy Analysis, 36(2), 127-144.
- Prince, M. (2004). Does Active Learning Work? A Review of the Research. Journal of Engineering Education, 93(3), 223–231.
- Raja, R., &Nagasubramani, P. C. (2018). Impact of modern technology in education. *Journal of Applied and Advanced Research*, *3*(1), 33-35. https://doi.org/10.21839/jaar.2018.v3is1.165
- Roschelle, J., & Teasley, S. D. (1995). The Construction of Shared Knowledge in Collaborative Problem Solving. Computer Supported Collaborative Learning, 22-36.

●

The Influence of Emotional Regulation on Mindfulness Among Prospective Teachers : An Empirical Study

Bini T V*, Dr. Seema Menon K P**

Abstract : This study explores the influence of emotional regulation on mindfulness among prospective teachers, emphasizing its significance in teacher preparation and professional development. Emotional regulation, the ability to manage emotional responses adaptively, is essential for handling classroom challenges and maintaining professional well-being. Mindfulness, the practice of present-moment awareness, further enhances emotional resilience and stress management. Given the unique challenges faced by prospective teachers, understanding the interplay between these competencies is crucial.

The study employs a descriptive survey design, examining 150 prospective teachers from ICFAI University and IASE Agartala, Tripura. Two self-developed Likert-scale questionnaires measured emotional regulation and mindfulness across multiple dimensions. Descriptive statistics, the Shapiro-Wilk test for normality, one-way ANOVA, and Tukey HSD post-hoc tests were used for data analysis.

Findings reveal a significant relationship between emotional regulation and mindfulness. Higher emotional regulation levels correspond to greater mindfulness, with significant differences observed across most groups. However, no significant difference was found between Exceptional and Advanced Emotional Regulation or between Moderate and Developing levels. These results highlight the necessity of integrating emotional regulation and mindfulness training into teacher education programs to enhance resilience and teaching efficacy.

Keywords : Emotional regulation, mindfulness, prospective teachers, teacher training.

Introduction : Teaching is a profession that requires a high degree of emotional intelligence, resilience, and self-regulation. For prospective teachers, who are still in the process of developing their professional identity and pedagogical skills, emotional regulation and mindfulness play a crucial role in shaping their effectiveness and well-being.

Emotional regulation refers to the ability to manage and control one's emotional responses to different situations in a socially acceptable and adaptive manner. It involves recognizing, understanding, and modulating

* Research Scholar- NCERT Doctoral Fellow, Department of Education, NSS Training College, Ottapalam, Kerala.

** Professor- Department of Education, NSS Training College, Ottapalam, Kerala.

emotions to achieve desired outcomes. Mindfulness is the ability to be fully present and aware of one's thoughts, emotions, and surroundings without being overwhelmed or overly reactive. It helps individuals enhance their emotional resilience, reduce stress, and improve overall well-being. In the context of teacher training, mindfulness practices can support prospective teachers in maintaining composure, fostering positive student relationships, and managing their workload effectively.

While both in-service and preservice teachers benefit from emotional regulation and mindfulness, these competencies are particularly critical for prospective teachers. Unlike experienced educators, prospective teachers face unique challenges such as adapting to classroom dynamics, handling student behaviour, and managing self-doubt. They are in the early stages of their teaching careers, where emotional distress, anxiety, and self-regulation difficulties can impact their confidence and teaching efficacy. In-service teachers, through years of experience, often develop coping mechanisms, whereas preservice teachers require structured support and training to cultivate these skills.

Emotional regulation and mindfulness are deeply interconnected, especially in the context of teacher preparation. Mindfulness enables prospective teachers to develop greater self-awareness, which in turn enhances their emotional regulation abilities. By practicing mindfulness, preservice teachers can observe their emotions without immediate reaction, allowing them to apply appropriate emotional regulation strategies. This intersection is crucial in fostering resilience, reducing burnout, and enhancing teaching effectiveness.

Need for the Study : Given the growing emphasis on teacher well-being and effectiveness, it is essential to examine how emotional regulation influences mindfulness among prospective teachers. Understanding this relationship can help in designing teacher education programs that integrate emotional intelligence training and mindfulness practices. This study aims to provide empirical insights into how emotional regulation affects mindfulness, contributing to the broader discourse on teacher preparation and professional development. By addressing this gap, the study seeks to enhance the emotional and psychological readiness of future educators, ensuring they enter the profession with the necessary skills to thrive.

Review of Related Literature : Emotional regulation and mindfulness are crucial components for preservice teachers, as they significantly impact their teaching effectiveness and personal well-being. Mindfulness training has been shown to improve emotion regulation and mood among future schoolteachers, suggesting that these skills are essential for managing the emotional demands of teaching (Wimmer et al.,

2019). The relationship between mindfulness and emotional regulation is well-documented, with mindfulness practices facilitating adaptive emotion regulation strategies. This includes reducing the intensity of distress and enhancing emotional recovery, which are vital for maintaining a positive teaching environment (Roemer et al., 2015) and (Guendelman et al., 2017).

There exists a significant relationship between emotional regulation and mindfulness. Mindfulness is associated with healthy emotion regulation, as it helps individuals engage in goal-directed behaviours and reduces negative self-referential processing (Roemer et al., 2015). This relationship is further supported by neurobiological studies, which show that mindfulness practices lead to functional and structural changes in brain regions involved in emotion regulation, such as the prefrontal cortex and amygdala (Wheeler, 2017) and (Guendelman et al., 2017).These changes enhance the ability to manage emotions effectively, which is crucial for preservice teachers who face various stressors in their professional environment.

Emotional regulation influences mindfulness by providing a framework through which mindfulness can enhance cognitive appraisals and emotional responses. Mindfulness broadens awareness and builds eudaimonic meaning, allowing individuals to reappraise adversity and positive experiences, thus deepening their capacity for meaning making and engagement with life.This process is facilitated by mindfulness's ability to introduce flexibility in cognitive appraisals, enhancing interoceptive attention and expanding the scope of cognition (Garland, 2015). Mindfulness-based interventions have been shown to improve emotion regulation by promoting adaptive strategies such as reappraisal and acceptance, while reducing maladaptive strategies like rumination (Iani et al., 2018) and (Prakash et al., 2015). These findings underscore the importance of integrating mindfulness and emotional regulation training in preservice teacher education to foster resilience and improve teaching practices (Hirshberg et al., 2020) and (Leyland et al., 2019).

Emotional regulation and mindfulness are interrelated constructs that play a vital role in the professional development of preservice teachers. Mindfulness enhances emotional regulation, which in turn supports mindfulness practices, creating a positive feedback loop that benefits both personal well-being and professional effectiveness.

Design of the Study : The study employs a descriptive survey design to examine the influence of emotional regulation on the mindfulness of prospective teachers. The hypothesis states that there is no significant difference among different levels of emotional regulation of prospective

teachers in relation to their mindfulness. The independent variable is the levels of emotional regulation, while the dependent variable is the mindfulness of prospective teachers. A sample of 150 prospective teachers was selected from ICFAI University and IASE Agartala in Tripura.

To measure the variables, two self-developed Likert-scale questionnaires were used. The Emotional Regulation Scale consists of 35 items assessing seven dimensions: emotional awareness, clarity, acceptance, cognitive reappraisal, impulse control, stress tolerance, and emotional expression. The Mindfulness Scale consists of 25 items measuring five dimensions: observing, describing, acting with awareness, non-judging of inner experience, and non-reactivity.

For data analysis, descriptive statistics such as mean, median, mode, standard deviation, skewness, and kurtosis were computed. The Shapiro-Wilk test was conducted to assess the normality of the data distribution. Based on the mean and standard deviation, the emotional regulation scores were categorized into four levels: Exceptional, Advanced, Moderate, and Developing. The one-way ANOVA test was applied to analyze differences in mindfulness scores across these emotional regulation levels. To further investigate significant group differences, the Tukey HSD post-hoc test was used for multiple comparisons.

Objective : To examine the influence of emotional regulation on the mindfulness of prospective teachers.

Hypothesis : There is no significant deference among Different levels of Emotional Regulation of prospective teachers in relation to their Mindfulness.

Analysis and Interpretation of Data.

Descriptive	Emotional Regulation Score	Mindfulness Score
N	150	150
Mean	104	74.3
Median	105	75
Mode	101	75
Standard deviation	8.15	6.42
Skewness	-0.377	-0.232
Kurtosis	0.0907	0.379
Shapiro-Wilk W	0.983	0.988
Shapiro-Wilk p	0.065	0.219

Table 1. The descriptive analysis of the Emotional Regulation Score and Mindfulness Score of Prospective Teachers.

The descriptive analysis of Emotional Regulation and Mindfulness Scores reveals key insights into their distribution and variability. With a sample size of 150, the Emotional Regulation Score has a mean of 104, a median of 105, and a mode of 101, suggesting a slight left skew, while the

Mindfulness Score, with a mean of 74.3, a median of 75.0, and a mode of 75.0, appears symmetric. Their standard deviations of 8.15 and 6.42, respectively, indicate a moderate spread. Skewness values (-0.377 for Emotional Regulation and -0.232 for Mindfulness) and kurtosis values (0.0907 and 0.379, respectively) fall within acceptable ranges, suggesting no significant asymmetry or extreme peakedness. The Shapiro-Wilk test results (p-values > 0.05) further confirm that both distributions do not significantly deviate from normality. Given these characteristics, parametric tests such as t-tests, ANOVAs, and Pearson correlations can be reliably applied without concerns regarding normality violations.

Group	Emotional Regulation Level	Range	Score Range	Frequency
1	Exceptional Emotional Regulation	More than mean + SD	More than 112	34
2	Advanced Emotional Regulation	Mean to More than mean + SD	104 to 112	42
3	Moderate Emotional Regulation	Less than mean – SD to mean	95 to 104	51
4	Developing Emotional Regulation	Less than mean - SD	Less than 95	23

Table 2. The categorization of prospective teachers based on their emotional regulation levels

The categorization of prospective teachers based on their emotional regulation levels follows a statistical approach using the mean (M) and standard deviation (SD) as benchmarks. The classification is divided into four categories: Exceptional, Advanced, Moderate, and Developing Emotional Regulation, based on their score distribution.

Emotional Regulation Level	N	Mean	Std. Deviation
Exceptional Emotional Regulation	34	78.24	6.204
Advanced Emotional Regulation	42	77.60	8.361
Moderate Emotional Regulation	51	71.31	7.084
Developing Emotional Regulation	23	71.00	6.310

Table 3. Descriptives of Mindfulness Score of prospective teachers in each level of their Emotional Regulation

Table 3 presents the descriptive statistics of mindfulness among prospective teachers at different levels of emotional regulation. A clear pattern emerges, showing that higher emotional regulation is associated with higher mindfulness scores. The Exceptional Emotional Regulation group (N=34) has the highest mean mindfulness score of 78.24 (SD = 6.204), indicating superior emotional regulation corresponds with high mindfulness and low variability. The Advanced Emotional Regulation

group (N=42) follows closely with a mean score of 77.60 (SD = 8.361), showing a strong association but with greater variability. The Moderate Emotional Regulation group (N=51) experiences a notable drop, with a mean of 71.31 (SD = 7.084), suggesting lower mindfulness levels among individuals with average emotional regulation. The Developing Emotional Regulation group (N=23) has the lowest mindfulness score at 71.00 (SD = 6.310), reinforcing the trend that weaker emotional regulation aligns with lower mindfulness. This pattern highlights the positive relationship between emotional regulation and mindfulness, with greater regulation skills corresponding to higher mindfulness levels.

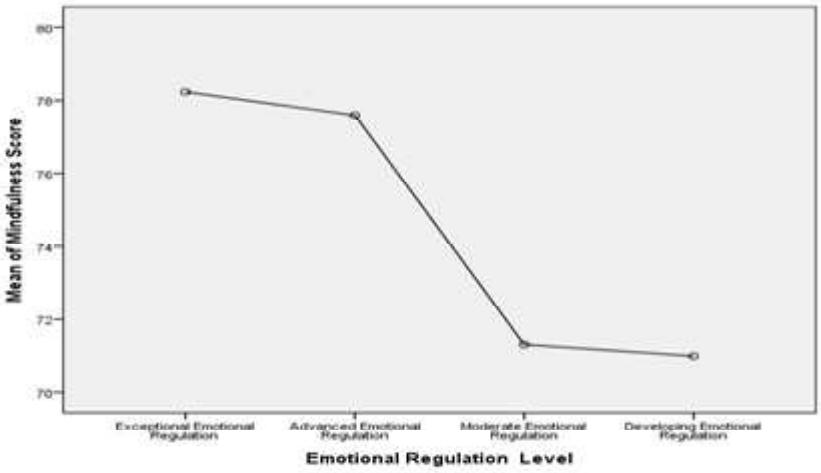

(Source : Output 1[Document1]-IBM SPSS Statistics Viewer)

Testing of Hypothesis

Hypothesis : There is no significant deference among Different levels of Emotional Regulation of prospective teachers in relation to their Mindfulness.

	Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
Between Groups	1674.976	3	558.325	10.838	.000
Within Groups	7521.217	146	51.515		

Table 4. ANOVA of Mindfulness score of prospective teachers in relation to Different levels of Emotional Regulation

Multiple Comparisons (Tukey HSD)
Dependent Variable: Mindfulness Score

Emotional Regulation Level		MeanDifference (I-J)	Std. Error	Sig.
Exceptional Emotional Regulation	Advanced Emotional Regulation	.640	1.656	.980
	Moderate Emotional Regulation	6.922*	1.589	.000
	Developing Emotional Regulation	7.235*	1.938	.002
Advanced Emotional Regulation	Moderate Emotional Regulation	6.282*	1.496	.000
	Developing Emotional Regulation	6.595*	1.862	.003
Moderate Emotional Regulation	Developing Emotional Regulation	.314	1.803	.998

*. The mean difference is significant at the 0.05 level.

Table 5. Multiple Comparisons with Tukey HSD;
Dependent variable Mindfulness score of prospective teachers.

The hypothesis stated that there is no significant difference among different levels of Emotional Regulation of prospective teachers in relation to their Mindfulness. However, the results of the one-way ANOVA test indicate otherwise. The ANOVA table shows that the F-value is 10.838, and the p-value (Sig.) is 0.000, which is less than the 0.05 significance level. This result leads to the rejection of the null hypothesis, confirming that there is a significant difference in Mindfulness scores among different levels of Emotional Regulation.

To determine where these differences lie, a post hoc Tukey HSD test was conducted. The results reveal significant differences between multiple pairs of Emotional Regulation levels. Specifically, the mean difference between Exceptional and Moderate Emotional Regulation is 6.922 ($p = 0.000$), and between Exceptional and Developing Emotional Regulation, it is 7.235 ($p = 0.002$). Similarly, the mean difference between Advanced and Moderate Emotional Regulation is 6.282 ($p = 0.000$), and between Advanced and Developing Emotional Regulation, it is 6.595 ($p = 0.003$). All these comparisons show statistically significant differences, suggesting that teachers with higher levels of Emotional Regulation exhibit significantly greater Mindfulness.

On the other hand, some comparisons were found to be not significant. The difference between Exceptional and Advanced Emotional Regulation (Mean Difference = 0.640, $p = 0.980$) is not statistically significant, indicating that these two groups have similar levels of Mindfulness. Additionally, the comparison between Moderate and Developing Emotional Regulation (Mean Difference = 0.314, $p = 0.998$) also fails to reach statistical significance, implying that prospective teachers with Moderate and Developing Emotional Regulation do not differ significantly in their Mindfulness scores.

Findings

- The study found a significant difference in Mindfulness scores among different levels of Emotional Regulation, as confirmed by the ANOVA test ($F = 10.838$, $p = 0.000$).
- Higher Emotional Regulation is associated with greater Mindfulness, with Exceptional and Advanced Emotional Regulation groups scoring significantly higher than those with Moderate and Developing Emotional Regulation.
- Post hoc analysis revealed significant differences between most Emotional Regulation levels, except between Exceptional and Advanced Emotional Regulation and between Moderate and Developing Emotional Regulation, which showed no significant

differences.

- These findings emphasize the critical role of Emotional Regulation in enhancing Mindfulness among prospective teachers, highlighting the need for targeted interventions in teacher training programs.

Discussion : The findings of this study align with existing research, highlighting the connection between mindfulness and emotional regulation. Prior studies indicate that mindfulness enhances adaptive emotional regulation strategies, reducing distress and fostering psychological resilience (Roemer et al., 2015; Guendelman et al., 2017). This study builds on these insights by showing that preservice teachers with stronger emotional regulation also exhibit heightened mindfulness, reinforcing the role of emotional regulation in developing mindfulness skills.

Neuroscientific evidence supports these findings, demonstrating that mindfulness practices lead to structural and functional changes in brain regions involved in emotional regulation, such as the prefrontal cortex and amygdala (Wheeler, 2017; Guendelman et al., 2017). These neurological adaptations improve cognitive flexibility and emotional control, essential for managing the challenges of teaching. The present study supports this by indicating that individuals with stronger emotional regulation are more capable of sustaining mindfulness.

Research suggests that mindfulness-based interventions improve emotional regulation by encouraging strategies like reappraisal and acceptance while reducing maladaptive tendencies such as rumination (Iani et al., 2018; Prakash et al., 2015). This study supports the importance of integrating mindfulness training into teacher education programs to enhance emotional resilience and teaching effectiveness.

Prior research highlights mindfulness's role in broadening awareness and promoting positive cognitive appraisals (Garland, 2015). The study aligns with this perspective, suggesting that emotional regulation provides a foundation for mindfulness to strengthen cognitive flexibility and emotional responses. By developing mindfulness skills, preservice teachers can better navigate professional challenges, engage in meaningful growth, and maintain well-being in demanding educational environments.

Conclusion

This study explored the influence of emotional regulation on the mindfulness of prospective teachers, highlighting the importance of emotional regulation in developing mindfulness skills. The findings confirmed that higher levels of emotional regulation are associated with greater mindfulness, reinforcing the role of emotional awareness, cognitive reappraisal, and impulse control in fostering mindfulness among preservice teachers. The significant differences observed in mindfulness scores across

varying levels of emotional regulation suggest that targeted interventions in teacher education programs can enhance both emotional resilience and mindfulness, preparing future educators for the demands of the profession.

The statistical analysis demonstrated that prospective teachers with exceptional and advanced emotional regulation exhibited significantly higher mindfulness scores compared to those with moderate or developing emotional regulation. This suggests that individuals with strong emotional regulation skills are better equipped to manage stress, remain present in challenging situations, and engage in self-reflective practices that enhance their professional and personal well-being. The study also established that emotional regulation supports mindfulness development by enabling individuals to process emotions constructively, avoid impulsive reactions, and maintain a balanced mental state.

The results align with existing literature, which emphasizes the bidirectional relationship between mindfulness and emotional regulation. Prior research highlights that mindfulness training enhances emotional regulation strategies, while neurobiological studies indicate that mindfulness-based practices lead to structural and functional changes in brain regions responsible for emotional control (Wheeler, 2017; Guendelman et al., 2017). These findings further validate the study's argument that emotional regulation serves as a foundation for mindfulness, reinforcing the need to integrate both components into teacher education programs.

Given these findings, teacher preparation programs should consider incorporating structured mindfulness and emotional regulation training to equip preservice teachers with the necessary skills to handle classroom challenges, student interactions, and personal stressors. Strategies such as mindfulness-based stress reduction (MBSR), emotion-focused workshops, and self-reflection exercises could support prospective teachers in developing both competencies. By fostering emotional regulation and mindfulness, teacher education programs can contribute to a more resilient and effective teaching workforce.

This study provides valuable insights into the connection between emotional regulation and mindfulness; however, it is not without limitations. The study was limited to a specific sample of 150 prospective teachers from two institutions, which may restrict the generalizability of the findings. Future research could expand the sample size, include diverse educational contexts, and explore longitudinal effects to provide a more comprehensive understanding of how emotional regulation influences mindfulness over time. Additionally, qualitative research methods, such as interviews and case studies, could offer deeper insights into how preservice teachers experience and apply emotional regulation and mindfulness in

their daily lives.

References

- Garland, E., Farb, N., Goldin, P., & Fredrickson, B. (2015). Mindfulness Broadens Awareness and Builds Eudaimonic Meaning: A Process Model of Mindful Positive Emotion Regulation. *Psychological Inquiry*, 26, 293 - 314. https://doi.org/10.1080/1047840X.2015.1064294.
- Guendelman, S., Medeiros, S., & Rampes, H. (2017). Mindfulness and Emotion Regulation: Insights from Neurobiological, Psychological, and Clinical Studies. *Frontiers in Psychology*,8. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2017.00220.
- Hirshberg, M., Flook, L., Enright, R., & Davidson, R. (2020). Integrating mindfulness and connection practices into preservice teacher education improves classroom practices. *Learning and Instruction*, 66, 101298. https://doi.org/10.1016/j.learninstruc.2019.101298.
- IBM Corp. (n.d.). IBM SPSS Statistics (Version 29.0) [Computer software]. IBM. https://www.ibm.com/products/spss-statistics
- Iani, L., Lauriola, M., Chiesa, A., & Cafaro, V. (2018). Associations Between Mindfulness and Emotion Regulation: the Key Role of Describing and Nonreactivity. Mindfulness, 10, 366-375. https://doi.org/10.1007/S12671-018-0981-5.
- Leyland, A., Rowse, G., & Emerson, L. (2019). Experimental Effects of Mindfulness Inductions on Self-Regulation: Systematic Review and Meta-Analysis. *Emotion*, 19, 108–122. https://doi.org/10.1037/emo0000425.
- Prakash, R., Hussain, M., &Schirda, B. (2015). The role of emotion regulation and cognitive control in the association between mindfulness disposition and stress.. *Psychology and aging*, 30 1, 160-171. https://doi.org/10.1037/a0038544.
- R Core Team (2022). R: A Language and environment for statistical computing. (Version 4.1) [Computer software]. Retrieved from https://cran.r-project.org. (R packages retrieved from CRAN snapshot 2023-04-07).
- Roemer, L., Williston, S., & Rollins, L. (2015). Mindfulness and emotion regulation. *Current opinion in psychology*, 3, 52-57. https://doi.org/10.1016/J.COPSYC.2015.02.006.
- The jamovi project (2023). jamovi. (Version 2.4) [Computer Software]. Retrieved from https://www.jamovi.org.
- Wheeler, M., Arnkoff, D., & Glass, C. (2017). The Neuroscience of Mindfulness: How Mindfulness Alters the Brain and Facilitates Emotion Regulation. Mindfulness, 8, 1471-1487. https://doi.org/10.1007/S12671-017-0742-X.
- Wimmer, L., Von Stockhausen, L., &Bellingrath, S. (2019). Improving emotion regulation and mood in teacher trainees: Effectiveness of two mindfulness trainings. *Brain and Behavior*, 9. https://doi.org/10.1002/brb3.1390.

●

Exploring Rationale of Existence of Informal Finance in Contemporary Indian Society

Dr. Vinod Kumar Yadav*, Prof. Digambar Madhavrao Tangalwad**

Abstract : India is a country where majority of population is engaged in the unorganized sector. Unorganized sector is recognized by theacute absence of security in terms of work, working conditions, wage rate, and amenities to be provided to the workers. Thus, a significant proportion of Indian workforce is far away from the guaranteed earnings and social security measures. On the other hand, cost of living is getting very costly day by day. Therefore, it has become very difficult for the common masses to get livelihood tocover the day to day cost of living and making enough provisions for the future uncertainties. Informal finance is the last resort for the poor and marginalized sections to address their day to day financial issues as when arise. Formal finance has its own procedural and systematic limitations. Furthermore, its outreach and volume are limited that is inadequate to cater the vast financial needs of the most populous and diverse country. Therefore, it is inaccessible to the common masses. That is why informal finance has become an integral part of Indian society. And it has been a very popular source of fund among the marginalized people, and micro and small entrepreneurs. Informal finance has also its strengths and weaknesses thatsuit the under developed and developing economies. As weak financial literacy, skewed development and expansion of formal financial institution, widespread poverty and agrarian society are hallmarks of emerging economies of the world that pave the wayfor expansion and outreach of informal finance across society.

Key Words : *Unorganized Sector, Informal Finance, Formal Finance, Marginalized, and Emerging Economy.*

Introduction : Developmental economists have realized the inherent complexities in delivering credit to rural masses in giant agrarian countries like China and India. The establishment and maintenance of rural financial institutions is a very complex and costly affair. The operational difficulties of rural financial intermediation have been accelerated by the state developmental strategies that attempts to ensure industrialization and urbanization at the cost of agricultural production. The well-established rural households prefer informal credit to formal credit. The emerging economies of the world have taken informal finance as a strong indicator of deficiencies in the formal financial system. The marginalized section is

* Assistant Professor- Department of Commerce, Rajiv Gandhi (Central) University, Arunachal Pradesh

** Professor and Dean- Faculty of Culture, Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi University, Wardha, Maharashtra

badly exploited by loan sharks and different illegal curb market operators when it is beyond their limit to approach and access to formal credit. Therefore, state needs to take initiatives to end informal finance by expanding the outreach of state run financial intermediaries. However, small business operators and farmers will continue to have strong faith in informal credit in India and China. The fundamental underlying reason behind the ever presence of informal finance in the contemporary society is that the formal finance is incapable of serving the financial needs of society. Thus, informal finance is not just the signal of weakness and inefficiency in the formal financial system but also an outcome of local political, institutional, and market interactions. Furthermore, informal finance exists even in advanced industrialized economies of the world. The ever presence of informal finance in India can be attributed to a large number of factors, including incompetency of formal financial system to fulfil the demand for the credit (Tsai, 2004).

Informal financing refers to the financing that happens in the absence of a formal financial intermediary between lenders [surplus or supply side] and borrowers [deficit or demand side]. Informal financing channels operate within grey area or beyond legal boundaries that is loan sharks. Informal financing is very much popular in newly established, smaller, and less audited or unaudited firms. Informal financing can be classified into constructive informal financing and underground informal financing. Constructive informal financing is related to the growth of firms. Informal financing is the most preferred source of fund when formal finance is unavailable. Informal financing sources include rotating savings, moneylenders, interpersonal lending, trade credits, loan sharks, private money house, pawnshops, credit organizations, etc. Trade credit and interpersonal lending are constructive informal financing sources. Constructive informal credit sources like family borrowing and trade credit based on relationship. Loan sharks and private money houses charge interest at higher rates. Credit cooperatives consists of rotating savings, credit organizations, rural cooperative foundations, mutual funds, etc. Trade credit is positively associated with good progress in firm when size of firm is large and number of competitors is negligible. Formal and informal financing are substitutes and complements as one boosts and backs economy in the absence of other (Allen et al., 2019).

Review of Literature : India banking system does not seem to be successful in expanding financial inclusion. The Invest India Foundation [IIF] has analysed data on borrowers with bank accounts who borrowed from sources other than banks. It has been observed that roughly one-third non-bank borrowers borrowed from the local moneylenders, and around half of them borrowed from friends and relatives. Two-thirds of all

borrowers were rural borrowers. Banks are still today facing stiff competition from the informal credit sources. Thus, local moneylenders continue to hold a significant share in rural and urban loan or credit space. Majority of loans taken outside the banking system are consumer loans, i.e. non-productive loans. Financial exigency and medical treatment are two major reasons in half of the non-banking borrowings. Non-bank borrowings are preferred to bank borrowings because of the availability of fund at a very short notice and no compulsion of collateral. According to a survey report of Boston Consultancy Group [BCG], the condition of financial exclusion is very pathetic in Indian scenario that is evidenced by the fact that around one-third population of the country is engaged in formal banking system ("Informal lenders", 2007).

Most of the citizens in developing economies of the world have almost negligible access to formal credit sources and hence, they solely depend on informal credit sources. Usually it has been observed that lending rates are higher than that of deposit rates within the same geographical area. Deposit rates range between 10-20 percent and lending rates range between 40-80 percent per annum. There has been observed a huge gap in lending rates within the same local credit markets. The rich borrow more funds at relatively lower interest rates. Gap in interest rates is not associated with default by borrowers. Under informal sector credit sources, default is almost non-existent. Access to reasonably priced credit sources is a major issue for the poor (Banarjee & Duflo, 2010).

The concept of informal finance is very old, and its regulation and supervision are beyond the control of the central bank or any other financial authority. According to a study, it has been observed that a large population of the emerging economies is involved in informal finance. The informal financial institutions have not lost their significance despite of ongoing expansion of formal financial institutions. Noticeable changes have been observed in informal finance during the last hundred years. Informal finance is not just an age old conventional practice, but a deliberate attempt to address the needs and demands of contemporary society. Informal financial institutions are expected to exist alongside banks and micro financial institutions, even when access to formal finance improves substantially (Seibel, 2014).

Informal finance mechanisms are heterogeneous and omnipresent. It includes rotating savings and credit associations (ROSCAs), accumulated savings and credit associations (ASCAs), money lender, loan brokers, indigenous bankers, etc. These informal finance mechanisms may be conventional or non-conventional, ranging from lucid to complex; and driven by diverse needs like consumption, entrepreneurial, saving and investment, etc. The core characteristic of informal finance is intimate

relationship between client and informal financial institution. There are different approaches to define informal finance. Informal finance can be defined as 'non-institutional finance'. In another approach, it can be defined as 'unregulated finance'. Informal finance can also be observed as a type of finance which is personal relationship oriented. Informal financial is not very popular in developed economies of the world, where the development of formal financial institutions has reached its zenith. The coexistence of formal and informal financial institutions is not an exception. Players of informal economy depend on informal finance to finance their entrepreneurial activities (Aliber, 2015).

Majority of Indians looking for the financial assistance have no option to avail credit without willingness to pay interest at higher rates. No workers engaged in the informal sector have access to formal credit. As a matter of fact, the access to credit is very much restricted in India that is evidenced by the fact that hardly one-tenth citizens of India have access to formal credit. It can be easily inferred that roughly one billion people do not have access to formal credit in India, i.e., around one-third population of the country. Therefore, informal financing is very much popular in Indian society to fill the gap in availability of formal credit. A substantial population is out of the coverage of formal credit system because of two major reasons. Majority of population does not have formal credit history and hence, banks do not have enough information about their creditworthiness. Therefore, they are asked for collateral while applying for the loan. Moreover, majority of people are not in position to pledge something against loan. Thus, most of the people are unable to access and afford formal loans, and hence, informal loans are getting popular in the society (Sen, 2017).

Finance has a substantial place in the current economic scenario of the world. Indian economic reform had been driven by the elimination of unnecessary and unreasonable restrictions on markets. The underlying objective of the economic reform in India was to let the market discover the price and demand of products and services in the market. International trade and industrial activity have been major outcomes of the idea of economic reform. The most visible and worth mentioning economic reform in the financial sector was the modernization of stock market that paved the way for open access to capital market. Management of household finance is the building block of improving business finance. There has been high level of informal and unsecured debt [including loans from local moneylenders and other informal credit sources] in India. The levels of life insurance and non-life insurance penetration are extremely low. There are numerous explicit and implicit challenges in the expansion and development of formal financial institution coverage in India. Strong

leadership, coordination and cooperation of stakeholders, and introduction of new players are inevitable to address the prevailing inefficiencies of the formal financial institutions. Moreover, shift from informal to formal credit needs proper development of formal financial institutions and financial products (Singh, 2017).

It has become a well-established fact that investment slowdown is delaying recovery in Indian economy. Private investment that is the main engine of growth, has become inactive. The investment slowdown is so high that it has surpassed the government's macroeconomic stimulus in the form of increased public investments. The private investment slowdown is noticeable in the informal sector of the economy. Corporate sector is not the basis of downfall. The private investment slowdown can be attributed to slowdown in the household sector investment. Corporate savings are growing whereas household savings are declining. On the one hand, household consumers are net savers; on the other hand, government, corporates, and unincorporated enterprises are net spenders. The savings are primarily stored in banks and insurance companies, and net spenders raise funds from these sources. Corporate sector can borrow from overseas and raise funds from capital markets. Informal sector depends on domestic savings, largely through banks loans, to finance its investment. Government macroeconomic stimulus may not be the right policy prescription to tackle slowdown in private investments. Fiscal deficit reduction, immediate clean-up of the bank loans mess, and restoration of banks' health may play role crucial in reviving private investments (Mehra, 2018).

State government's decision to waive the farm loans taken by the farmers from the nationalized banks was undoubtedly a big relief to the farmers. According to a study of RBI, it is possible that farmers may shift from formal sources of credit to informal sources of credit because of absence of formal institution initiatives to extend them credit ahead. Loan waiver schemes launched in many states as a debt relief measure has a substantial role in curbing household debt. However, this scheme has no documentary proof of growth in investment and productivity of the beneficiaries of loan waiver scheme (Prabhu, 2018).

According to a report of Dun and Bradstreet, Two-thirds financial needs of micro, small and medium enterprises (MSMEs) are met by informal credit sources like local money lenders, friends, and family members, relatives, etc. Remaining one-third financial needs of MSMSEs are fulfilled through equity finance and institutional finance. There is an urgent need of expansion of formal credit sources. The government has been running many schemes to address the financial requirements of MSMEs. Micro and small enterprises are fighting with the prevailing

financial crisis scenario across the country. However, final call and crucial steps have to be taken by the government and private players so as to address the financial problems of the MSMEs (Soni, 2019).

According to National Bureau of Economic Research, promotion to formal sector does not bring significant improvement in business outcomes. Formalization is a developmental process whereby small and informal enterprises develop capabilities required to operate in a more formal, global economy. But informal sector cannot be forced to formalize. It is convenient for the state to supervise and to tax the firms falling under formal sector. However, forced formalization for the benefit of the state can adversely impact society. The informal sector offers large employment opportunities in the country like India, where unemployment is a major concern. Therefore, it becomes inevitable to look into the drawbacks of formalization. The current scenario of job, income and growth in India makes reorientation of government policies towards informal sector (Maira, 2020).

The formal credit system of India is uncongenial to the informal sector workers and micro entrepreneurs. It is very difficult for micro entrepreneurs to obtain a small size personal loan to address the cash flow requirement of their businesses as they do not have papers and collateral securities that are essential to obtain formal credit. Thus, they are deprived of the formal credit system. The vicious cycle of financial exclusion can be destroyed through the newly evolved financial instrument called returnable grant [RG]. Under the returnable grant, there is an expectation to repay the grant, either in lump sum or in EMIs over a predetermined time period. However, there is no legal obligation to repay the grant. It is interest free and there is no provision for the financial penalty. Repayment rate is higher under the returnable grant. The returnable grant can be helpful in making the way for formal credit to the informal sector workers and entrepreneurs (Nooruddin, 2020).

India needs to learn about the provision of interest free banking window in the financial system of the country. This can be understood very well from the experience of United Kingdom, Malaysia and other countries having such provision in place. The major side effects of overlooking this arrangement may be observed in two forms. Firstly, the major financial resources may flow into the informal channels. Secondly, finance can be denied to those who need it most. Financial inclusion has been the most significant goal of the government policy. A large Muslim population in the country follows the Shariat Law that states that interest is strictly forbidden. Therefore, it is possible that Muslims adhering to the Shariat Law do not subscribe to interest bearing banking products that may lead them to financial exclusion. It has been observed that many countries have

followed Islamic banking system in their traditional banking system. However, India has not taken any such an initiative so far. It has been observed that the deposit account density in high proportion Muslim population districts is substantially lower. Faith based financial exclusion is significant in Kerala, West Bengal, Jharkhand, Rajasthan and Maharashtra. An insignificant private initiative has been taken to offer interest free banking services to the concerned population via cooperative societies ("The need", 2020).

Farmers have to deal with ever growing natural calamities like floods and droughts every year that ruin crops. Joblessness and loss of crops forced the poor and marginal farmers to obtain credit from local moneylenders during the pandemic. Normally farmers running in financial crisis take loans from the local moneylenders and non-government organizations in order to offset their agricultural losses and for fulfilling their household expenditure. This informal credit is very costly because of extraordinary interest rates. Informal credit is excessively popular among farmers as its procedure is easier than formal credit. Relatives, friends and non-government organizations are the most common sources of informal credit for agriculturist community. Knowledge gap and systematic barriers are major roadblocks for farmers in obtaining credit from formal sources. It has been observed that non-government organizations and micro financial institutions are better sources of agricultural credit. Credit needs of farmers are abrupt that have to be addressed instantly. Therefore, their credit needs do not allow much waiting time. Farmers need training on financial literacy and digital technology in order to facilitate the use of mobile financial services to smoothen disbursement and repayment of loans (Anowar, 2021).

Loans taken for the purpose of personal consumption should be avoided. However, loans intending to accelerate income generation capacity [i.e. production loan, house loan, and education loan] are usually preferred. On the one hand, majority of Indians do not have regular source of income and severely suffer from income instability; and on the other hand, their consumption expenditure is uniform and ever growing. Larger portion of the consumption expenditure is met by debt. The salient features of Indian household debt are that Indians are gradually getting over indebted and inefficient, informal and expensive credit sources are on the verge of replacing formal and economic credit sources from the society. Indian household debt in terms of percentage of GDP has increased to more than three times from 2011 to 2021. Mortgage loans and gold loans are two most preferred categories of Indian household debt. Mortgage loans and gold loans account for the one-third Indian household debt. Ever growing demand for the education and healthcare services and extraordinary hike in

their costs are major determinants of increase in Indian household debt. Stability in income and good credit score are prerequisite to avail institutional and affordable credit. However, irregular income and no or unsatisfactory repayment record compel majority of Indians to fulfil their basic consumption needs through the informal and expensive credit sources. Household debt is not absolutely disadvantageous to the society. The main issue of Indian household debt is that the major source of household debt is informal credit that is very costly and unaffordable but easily accessible to common people of the society. Therefore, the poor and needy people have limited access to formal and affordable credit sources. Thus, institutional credit has a greater opportunity to ensure its outreach to a larger population of the country (Chakrabarty, 2022).

Objective of Study : This research article is focused on two major objectives:

- To highlight the concept and characteristics of informal finance.
- To figure out the underlying reasons behind the existence of informal finance in contemporary society.

Research Methodology : This research article is exploratory cum descriptive by nature. It is primarily based on secondary sources of facts and figures, which includeresearch journal articles, newspaper articles and editorials, magazine articles, and related articles available on different websites.

Informal Finance: Concept and Characteristics : It is very difficult to present a universally acceptable definition of informal finance due to its worldwide presence and inherent cross cultural variations. Therefore, no universally acceptable definition of informal finance is available in the contemporary world. Informal finance is also known as non-bank on non-institutional finance (Aliber, 2015). Informal finance refers to the fund procured through personal contacts and relationships (Allen et al., 2019). It may be for commercial and non-commercial (i.e., personal or consumption needs oriented) activities. It is mostly unsecured by nature and short term in terms of duration. Informal finance is usually offered in small denominations for short period and at higher interest rates (Anowar, 2021). This type of finance is largely accessed by the poor, marginalized people, and small and medium sized firms. It is financed by individual moneylenders, friends, and relatives, who are economically very sound and strong("Informal lenders", 2007). Under this category of finance, personal relationship between client and creditor is of prime significance, and formalities are nominal against the formal finance (Aliber, 2015).

As far as characteristics of Informal finance are concerned, they are personal contact based, instant need driven, nominal formality, security or collateral free, financial illiteracy induced, higher interest rate driven,

government regulation and control free, economically vulnerable and marginalized client based, commercial or consumption need oriented, etc.There is a great role of personal contact or relationship in the process of obtaining informal finance as usually informal credit is offered to the well-known individuals only. Thus, good personal relationship between creditor and client plays a pivotal role in the informal finance (Aliber, 2015). It is used for the fulfilment of immediate personal and business needs wherein not much time is available to the debtor to plan for the fund procurement. There is almost no or nominal formality because of intimate relationship between debtor and creditor, and absence of security in the informal financing process.The lack of financial literacy among people paves the way for more demand to informal finance in the society. Informal finance is beyond the government control and its users are from the economically weaker and marginalized sections of the society (Allen et al., 2019). Therefore, informal finance is normally provided at unreasonably high interest rates.Informal finance is very much popular among economically weaker and marginalized people for consumption and constructive purposes(Aliber, 2015). However, business class people use the same for constructive and commercial purposes.

Existence of Informal Finance in Contemporary Indian Society: Underlying Rationale

Informal finance is very much popular in emerging economies. However, it is notas prevalent among the developed economies of the world as in case of developing economies (Banarjee & Duflo, 2010). It is worth mentioning fact that formal and informal sources of finance coexist in both developing and developed economies of the world but their degree of prevalence varies depending on the level of development and penetration of formal financial system. Formal finance isa well-developed, regulated and government controlled institutional finance but informal finance is an undeveloped, unregulated and non-institutional finance (Aliber, 2015). Government has taken numerous initiatives to bring everyone under the umbrella of formal financial system in order to protect the poor and marginalized people from the exploitation of private moneylenders.The twenty first century formal financial system has been developed very much as compared to the formal financial system in the past. The modern development of formal financial system could not make informal financial system irrelevant and insignificant because of the inherent weaknesses and incompetencies of the formal financial system and some demographic attributes of Indian society, which include lengthy formalities, time consuming and complex procedure, inconvenient process, irregular development of formal financial system, lower financial inclusion, poor financial literacy, regular and instant financial needs, limited access and availability of funds, etc. (Tsai, 2004).

To raise funds through formal sources of finance is a very difficult and cumbersome task because of underlying rigorous formalities, complex procedures, lower financial literacy, etc. Formal finance has its own inherent limitations that are evidenced by its limited accessibility and availability(Chakrabarty, 2022). A substantial population of the country is engaged in the unorganized sector that depends on informal finance to meet up its diverse financial needs (Seibel, 2014). Lower financial inclusion and weak financial literacy in the country result in greater dependence of society on informal finance. The poor financial literacy and irregular development of formal financial system have disabled the formal financial system to serve the society to their capacity (Tsai, 2004).Moreover, widespread poverty and relatively poor financial awareness in the country have made informal finance a universal phenomenon. Poverty led frequent and immediate financial needs of the masses have made informal finance very significant in the current scenario of the society (Banarjee & Duflo, 2010).Thus, infrastructural, demographic and systematic issues are the main underlying reasons behind the omnipresence of informal finance in Indian society.

Conclusion and Way Forward : Informal finance is an age old mechanism of providing financial support to the members of society by the members of society, i.e., interpersonal finance mechanism. It is primarily based on personal contact and intimate relationship, and it does not involve lengthy formality and complex procedure. However, informal finance has its inherent advantages and disadvantages. India is such a country where majority of population is economically vulnerable because of widespread poverty and unemployment. A large population of the country is involved in the unorganized sector where future is full of uncertainties. Healthcare, education, food, etc. are getting very expensive and unaffordable for the larger population of the country. Thus, cost of living has exponentially gone up because of ever growing price levels. Government has taken multiple initiatives to ensure the outreach of formal financial institutions to every citizen of the country. However, formal financial institutions are incapable of addressing the diverse financial needs of the large heterogeneous population of the country due to its inherent constraints. Therefore, informal finance seems to be the most vital source of finance as it backs and boosts economy when formal finance is unable to drive economy properly. Thus, informal finance is an unavoidable component of developing economy, where formal financial institutions are not in position to fulfil the diverse financial needs of the economy. The role of informal finance in an economy depends on the status of formal financial institutions in the economy as informal finance is crucial when formal financial institution is week and vice versa.

Informal finance is a universal phenomenon, however, its significance depends on the positioning of formal financial institutions in the economy. Informal finance is supplementary to formal finance in the current economic scenario of the world as informal finance steers and supports economy in the absence of formal finance. This the fundamental reason behind the coexistence of informal and formal finance worldwide. The noticeable presence of informal finance in the contemporary Indian society despite of record development in the modern banking system and consistent improvement in financial inclusion is an important issue deserves to be analyzed minutely and thoroughly. There are many factors responsible for the strong presence of informal finance in the twenty first century society, including ever growing poverty and unemployment, increasing price levels, poor financial literacy, infrastructural gap, developmental disparity, etc. It seems to be next to impossible to think of an emerging economyin the absence of informal finance in the current economic scenario. Thus, informal finance has become an inevitable and integral element of an economic system. Therefore, on one hand, government must focus on the development of formal financial institutions and financial inclusion in the country; on the other hand, it should harness the inherent potential of informal finance in the interest of economy and its citizens by having reasonable control through close surveillance on informal finance related activities. Informal finance is the cornerstone of an emerging economy like India. So, it should be preserved and promoted until and unless it adversely affects economy and goes beyond the legal framework of the country.

Conflict of Interest : This research article is not a part of any ongoing or submitted project work. There is no involvement of any kind of financial assistance in this work.

Acknowledgement : We are grateful to all our friends and colleagues who shared their noteworthy views and academic experiences on the issue of informal finance. Furthermore, sincere thanks are also due to the online newspapers, magazines, journals, and websites for uploading and publishing relevant articles on the topics related to the current research article.

References

1. Sen, R. (2017, November Financial Inclusion in India: Providing Credit Access Through Technology. *London School of Economics and Political Science*. https://blogs.lse.ac.uk/southasia/2017/11/06/financial-inclusion-in-india-providing-credit-access-through-technology/
2. Noorudddin, I. (2022, December 5). From a vicious cycle to virtuous cycle. *The Hindu*. https://www.thehindu.com/opinion/op-ed/from-a-vicious-cycle-to-a-virtuous-cycle/article66222686.ece
3. *The need to make room for interest free banking*. (2020, October 30). *The*

Hindu. https://www.thehindu.com/news/national/kerala/the-need-to-make-room-for-interest-free-banking/article32986120.ece

4. *Informal lenders giving bank a runs for their loans*. (2007, November 20). *The Economic Times*. https://economictimes.indiatimes.com/industry/banking/finance/banking/informal-lenders-are-giving-banks-a-run-for-their-loans/articleshow/2554678.cms?from=mdr
5. Chakrabarty, A. (2022, April 29). Taking loans to cover volatile income creates debt trap for many. *Financial Express*. https://www.financialexpress.com/money/taking-loans-to-cover-volatile-income-creates-debt-trap-for-many/2508284/
6. Singh, N. (2017, September 18). Household finance in India: what a shift from informal to formal sector borrowing requires. *Financial Express*. https://www.financialexpress.com/opinion/household-finance-in-india-what-a-shift-from-informal-to-formal-sector-borrowing-requires/859816/
7. Soni, S. (2019, November 26). Moneylenders, friends, family, not banks the lifeblood for SMEs. *Financial Express*. https://www.financialexpress.com/industry/sme/msme-fin-informal-channel-financing-formal-financing-bank-loan-government-scheme-for-msmes-small-business-finance-nitin-gadkari/1775597/
8. Anowar, M. S. (2021, November 17). Financial access for farmers: formal vs. informal. *Financial Express*. https://thefinancialexpress.com.bd/views/views/financial-access-for-farmers-formal-vs-informal-1637073717
9. Prabhu, N. (2018, August 26). Loan waiver beneficiaries may shift to informal sources of credit: RBI study. *The Hindu*. https://www.thehindu.com/news/national/karnataka/loan-waiver-beneficiaries-may-shift-to-informal-sources-of-credit-rbi-study/article24786864.ece
10. Banarjee, A. V., & Duflo, E. (2010). Giving Credit Where It Is Due. *Journal of Economic Perspective*, 24(3), 61-80. https://doi.or/10.1257/jep.24.3.61
11. Allen, F., Meijun, Q., & Jing, X. (2018). Understanding Informal Financing. *Journal of Financial Intermediation*, 39, 19-33. https://doi.org/10.1016/j.jfi.2018.06.004
12. Tsai, K. S. (2004). Imperfect Substitutes: The local political economy of informal finance and microfinance in rural China and India. *World Development*, 32(9), 1487-1507. https://doi.org/10.1016/j.jworlddev.2004.06.0041
13. Aliber, M. (2015). The importance of informal finance in promoting decent work among informal operators: A comparative study of Uganda and India. *Internation Labour Organisation*. https://www.ilo.org/wcmsp5/groups/public/—ed_emp/documents/publication/wcms_497344.pdf
14. Seibel, H. D. (2014, July 1). The continued relevance of informal finance in development. *World Politics Review*. https://www.worldpoliticsreview.com/the-continued-relevance-of-informal-finance-in-development/?one-time-read-code=30785170403905010104 8
15. Maira, A. (2020, February 7). Listening to the call of the informal. *The Hindu*. https://www.thehindu.com/opinion/lead/listening-to-the-call-of-the-informal/article30755107.ece
16. Mehra, P. (2018, February 8). The formal-informal divide. *The Hindu*. https://www.thehindu.com/opinion/op-ed/the-formal-informal-divide/article62112008.ece

Study of Cottage Industries Contribution in Pushing the Utter Pradesh States Economy Under the MSME Sector with Special Reference Kaushambi

Shweta kushwaha*, Dr. Rajendra Kumar Mishra**

Abstract : Absolutely, MSMEs (Micro, Small and Medium Enterprises) are pivotal in advancing the Small Scale Industries (SSI) are characterized by their relatively moderate investment limits and annual turnover, making them smaller in scale compared to larger industrial operations. In India, for instance, the investment limit for these industries is typically up to Rs. 5 crore, with an annual turnover of up to Rs. 10 crore. On the other hand, Cottage Industries are even smaller in scale, often run from homes or cottages, hence the name. They are typically very localized and involve traditional skills and crafts. The Khadi and Village Industries Commission (KVIC) in India plays a significant role in promoting and developing these industries, which include various cottage industries. KVIC aims to support rural employment and sustainable development through these traditional and small-scale industries.Sustainable Development Goals (SDGs) outlined in the 2030 Agenda.

MSMEs are crucial in reducing poverty by creating jobs and fostering economic growth. They serve as significant drivers of employment, providing opportunities for women, youth, and vulnerable groups. Moreover, MSMEs play a vital role in food production globally and contribute to closing the gender gap by promoting women's economic participation. MSMEs have been severely affected by the covid- 19. Lockdowns, disruptions in supply chains, reduced consumer demand, and financial constraints have posed significant challenges to their operations. Recognizing the critical need to support MSMEs during these challenging times, resilience is essential for building back better and fostering inclusive economic growth worldwi**de.**

Keyword- MSME, sustainable development, small scale industries, economic growth.

Introduction : The short name of Msme is micro small medium enterprises. Msme is broughtin act, 2006, it is used for manufacturing and services. Under msme, the investment and turnover of small is known. In this, how much rupees our company invests. It isdetermined. MSME is a divided into two part services and manufacturing enterprises.

As per the revised guidelines, MSMEs (Micro, Small, and Medium

* Research Scholar- Commerce Department, NGBDU, (Deemed to be University), Prayagraj, Uttar Pradesh

** Associate Professor- Faculty of Commerce Department, Nehru Gram Bharati prayagraj, U.P.

Enterprises) in India are categorized based on two criteria: investment in plant and machinery or equipment, and turnover. **Here are the classifications :**

ENTERPRISES	INVESTMENT	TURNOVER
Micro Enterprises	Up to Rs 1 crore	Up to Rs 5 crore
Small Enterprises	Up to Rs 10 crore	Up to Rs 50 crore
Medium Enterprises	Up to Rs 50 crore	Up to Rs 250 crore

MSME, Act was introduced in 2006, under it all types of small and large enterprises were included. Under this, the limit how much investment and how much turnover we can make in any small and large business has been defined.Following the package's announcement on May 13, 2020, a number of representations were made arguing that the announced revision should be revised upwards because it is still out of line with current market and pricing conditions. The Prime Minister made the decision to raise the medium unit limit even further in light of these representations. This has been done to facilitate business transactions, create an objective classification system, and be realistic with time.

Cottage industries come under MSME. Most of the women in villages and towns earn money by doing small scale industries. To further their employment, the government had launched MSME Act so that business can be started even with less investment and help people.

Ministry of MSME

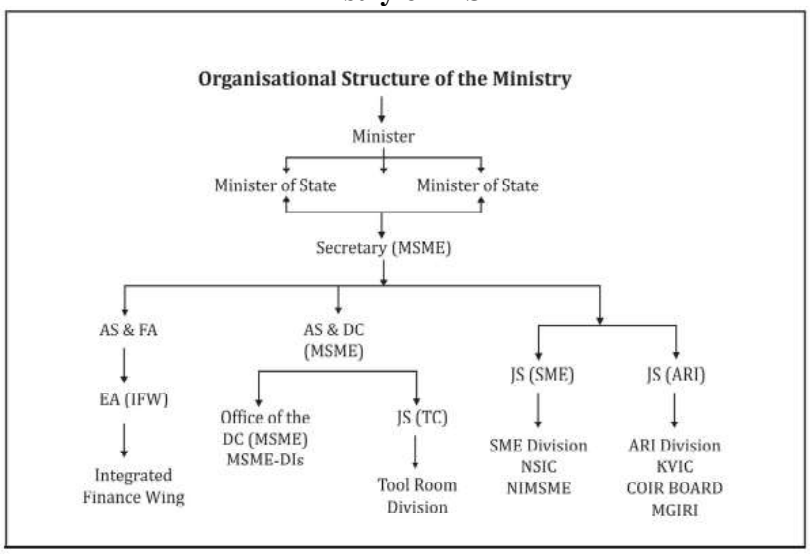

Cottage industries : India is a country with a mixed economy. Organizing capital by setting up small domestic industries is called cottage industries. Like handicraft, beedi making , sewing , embroidery , pickle making etc., all these cottage industries are the backbone of the economy of many rural people of the country. Even with less money and less people, we can run a good home business by family members. Khadi and Village Industries Commission (KVIC) is a statutory organization which promotes cottage industries.

Overall, while the cottage industry continues to evolve amidst global economic shifts and technological advancements, its role as a vital component of rural economies remains crucial. Its ability to preserve cultural heritage, create local employment opportunities, and contribute to sustainable development underscores its enduring significance in today's globalized world.

This flow chart are shows the gem polishing industry with the types of injuries likely to occurs-

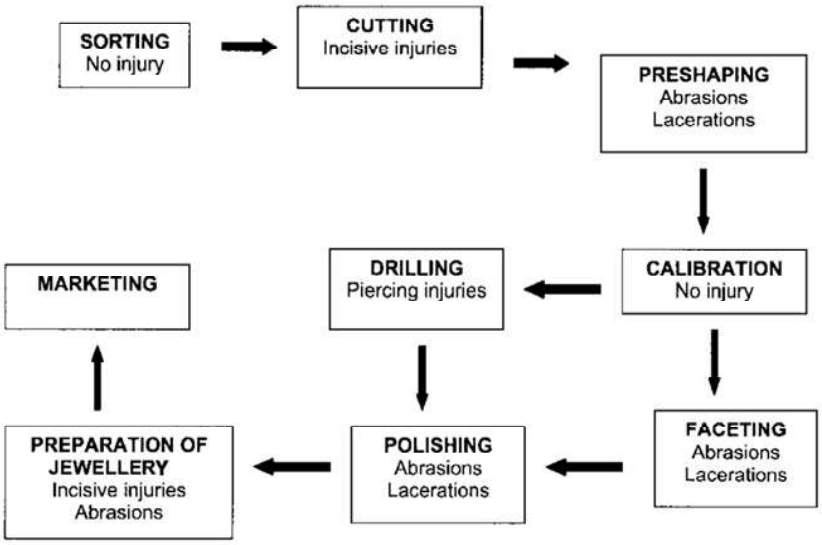

Nevertheless, small industries may encounter issues such as :

- Not being able to obtain credit
- Ineffective leadership
- Absence of infrastructure
- Technological obsolescence
- restricted raw material availability
- issues with marketing
- Competition from imports and large-scale enterprises high municipal taxes

Literature review-

Professor, sanjeev bhatnager Dept. of Management, and

Economic growth of India: - An Empherical Study E-mail – sanjeevbhatnagar03@gmail.comthe growth of micro, small, and medium enterprises is often hindered by financial challenges. The lower and middle classes have the potential to lift themselves out of poverty. Several operational factors contribute to impeding growth, such as lack of access to finance, inadequate power supply for running the plant, difficulties in obtaining raw materials in a timely and cost-effective manner, shortage of technical workers and production staff, unavailability of affordable machinery, inefficient material consumption, and limited ability to upgrade technology due to insufficient capital for investing in new equipment and skilled personnel. Marketing is also a significant challenge faced by many enterprises.

Dr. Shripathi Kalluraya2 Research Professor, Institute of Social Science and Humanities, Srinivas University, Mangalore, Karnataka, India-575001the Indian economy has a sizable cottage sector. It plays a major role in the current economic boom in the United States. It powers the economy by generating goods, jobs, and as well as services. Supporting and advancing this sector is crucial, but more is required. Collaboration between the public and private sectors is crucial for creating cutting-edge technological solutions. As the demand for investments rises, funding must be made available to keep up with these technological advancements. To help this industry grow faster than the GDP is currently growing and adapt to the shifting economic landscape, the government needs to lay out a comprehensive plan. To address this issue, this sector needs to take the lead.

Swatee Biswas, Maulana abul kalam azad university of technology,Arunangshu Giri, Debasish Biswas, Vidyasagar University January 2017 January 20173(1A):21 It is commonly acknowledged that MSMEs, or micro, small, and medium enterprises, are the primary drivers of global economic growth. Every nation has its own standards for defining what makes an industry small-scale, and no universally recognized definition exists. The majority of definitions of a micro, small, or medium enterprise business focus on the workforce, then total assets and yearly revenue. MSMEs are categorized in India according to their investment and turnover levels.

Prof. S. M. jawed Akhtar ,Professor, Department of Economics, Aligarh Muslim University, the performance of small scale industries in up : An overview

Anoverview of Uttar Pradesh's Micro, Small, and Medium-Sized Enterprise (MSME) sector has been given by this study. Regarding the quantity of MSMEs, businesses put Uttar Pradesh at the top. Its sophisticated infrastructure and sizable labor force offer it significant

potential for the growth and development of the medium and large enterprises. We can observe that the number of units, employment, investment, and production have all increased over time by examining the sector's performance in each census, with the last two exhibiting especially robust growth. According to the Udyog Aadhaar Memorandum and Udyam Registrations, recent trends in the MSME sector in Uttar Pradesh show that MSME registration has grown at a compound annual growth rate.Recent changes in the MSME sector in Uttar Pradesh, as indicated by Udyog Aadhaar Memorandums and Udyam Registrations, show that from 2015 to 2016, the Compound Annual Growth Rate (CAGR) of MSME registration increased by 0.45%. The MSME sector in Uttar Pradesh has been a significant contributor to the state's job growth. The CAGR of small enterprises managed by men is 1.04, whereas the CAGR of businesses owned by women is 0.99%. The CAGR for women-owned medium-sized firms is 1.03.

Objective-

- To examine the recent trends in cottage industries contribution in the economy of kaushambi district.
- To evaluate the performance of MSME sector in Kaushambi.
- To monitor the latest trends in MSME sector of selected area.
- To outline various schemes aided and supported by district government for economic upliftment of cottage industry.

Hypothesis-

Ho1 (Null): There is no generation of employment through small and cottage industries.

H11 (Alternative): There is generation of employment through small and cottage industries.

Ho2 (Null): There is no improvement in economic condition of society due to small and cottage industries.

H12 (Alternative): There is improvement in economic condition of society due to small and cottage industries.

Cottage industry in kaushambi district –

General characteristics : On April 4, 1997, the Allahabad district was divided to become the current Kaushambi district. Manjhanpur, the district headquarters, is located around 55 kilometers southwest of Allahabad on the Yamuna River's north bank. The district of Kaushambi is situated in Uttar Pradesh's southern region. Kaushambi District covers a total area of 1903.17 square kilometers.

● The district is an old town about 55 kilometers west of Allahabad (now Praygraj), on the northern bank of the Yamuna River. In the Kaushambi district, there are 897 people per square kilometer. In the ten years between 2001 and 2011,the population density of Kaushambi district

is 897 inhabitants per square kilometer. Over the decade from 2001 to 2011, the district experienced a population growth rate of 23.49%. The sex ratio in Kaushambi is 905 females for every 1000 males, indicating a slight female predominance. The literacy rate in the district is 48.2%.

Potential for New Manufacturing Enterprises

There are many potential manufacturing areas in the district are listed below –

- Aataachakki
- Rice mill
- Dall mill
- Milk dairy
- Vegetable and fruit cold storage
- Clothes shops
- Exercise book
- Gate gill ,shutter
- Canvas bags ,biodegradable carry bag
- Vermin compost
- Bee keeping
- Poultry
- Organic food
- Poultry feed
- Dry spice packing
- Floriculture
- Tissue culture
- Agriculture implements
- Nylon ropes
- Cement jail
- Phenyl
- Leather goods
- Bone mill
- Piggery
- Ayurvadeic medicine plants processing
- Telephone equipment
- Automobiles shops
- Agricultural machinery
- Earth moving machinery
- Photographic raw film and paper

DETAILS OF EXISTING MICRO & SMALL ENTERPRISES AND ARTISAN UNITS IN THE DISTRICT

NIC CODE	TYPE OF INDUSTRY	NUMBER OF UNITS	INVESTMENT (Lakh Rs.)	EMPLOYMENT
20	Agro based	970	3474	1880
22	Soda water			
23	Cotton textile	07	24.50	74
24.	Woolen, silk & artificial Thread based clothes.	04	6.9	42
25.	Jute & jute based	13	8.63	56
26.	Ready-made garments & embroidery	186	1650	498
27.	Wood/wooden based furniture	204	2450	720
28.	Paper & Paper products	09	24.5	40
29.	Leather based			
31.	Chemical/Chemical based	80	820.87	589
30.	Rubber, Plastic & petro based			
32.	Mineral based	12	46.4	120
33.	Metal based (Steel Fab.)	200	810.0	610
35.	Engineering units	172	610	380
36.	Electrical machinery and	14	28.2	60
97.	Repairing & servicing	202	995.2	507
01.	Others	163	596.15	508
	TOTAL	**2231**	**11555.35**	**6084**

Source: DIC Kaushambi

Sl. No	Head	Unit	Particulars
1.	Registered Industrial Unit	Nos.	2231
2.	Total Industrial Unit	Nos.	3852
3.	Registered Medium & Large Unit	Nos.	NIL
4.	Estimated avg. no. of Daily Worker Employed in Small Scale Industries	Nos.	04
5.	Employment in Large and Medium Industries	Nos.	NIL
6.	No. of Industrial Area	Nos.	02
7.	Turnover of Small Scale Industries	In Lacs	180
8.	Turnover of Medium & Large Scale Industries	In Lacs	NIL

Large Scale Industries and Public Sector Industries are in Kaushambi-

List of the Praygraj – Nil

Major exportable things and growth trend are – Not registered

Medium Scale Industries -

List of the Praygraj – Nil

Major Exportable item - Not Registered

Research Methodology-

Major industries in utter Pradesh.After studying kaushambi, I come to know that kaushambi is a manufacturing district. There are many small and medium employment opportunities available here due to which people's daily routine is going on easily.

This research engages qualitative and qualitative approach for data analysis. To achieve the objectives of study, secondary data was collected and analyzed. Source of secondary data were: Academic Literature, Textbook, website, Newspaper, Business journals, Business journals.

Details of Manufacturing sector Establishment

S.N	Type of Industry	Number Of Units	Employments	Investment (In Cr.)
1	Food processing	50	450	10.07
2	Tobacco Products	4	62	01.2
3	Textile	2	23	4.05
4	Chemical/Chemical based	5	32	0.63
5	Metal based	4	33	0.53
6	Paper Product and Printing	4	37	0.37
7	Nonmetallic Mineral Product	18	623	4.39
8	Others	48	337	5.65
	Total	135	1597	26.89

Source: - DIC Kaushambi

Finding and Conclusion : While researching this topic, I found that along with the development of people in cottage industries, the need of people is also increasing day by day due to which demand is increasing. But according to my secondary data, there is a still lack of large and medium industries in Kaushambi district. The enterprises under MSME have still not been developed in the district, due to which the main activity here is still farming and agriculture. Weakness of kaushambi -

- There is no registered in any medium and large industries in kaushambi city and no any employees for medium and large industries.
- The employee for small industries in this city are also very less.

I suggest that One state -One product should be systematically developed in all the districts so that our lower and middle class can get employment. With the help of MSME, we can make small businesses big and we can take advantage of government schemes. Can get employment. Focusing more on Micro and Small Enterprises (MSMEs) in government policies and schemes can indeed be crucial for economic growth and empowerment. MSMEs are typically rooted in local communities. Strengthening these enterprises can stimulate economic development at the grassroots level, leading to overall regional development. MSMEs often face challenges in accessing finance. Government schemes targeted at MSMEs can improve their access to credit, enabling them to expand operations, invest in technology, and grow their businesses.

Therefore, focusing on MSMEs in government policies and schemes not only supports economic growth but also empowers individuals to become self-reliant, positively mind growth to their society and the economy at growth. It's a strategy that can lead to broad-based and sustainable development.

References :

1. Census. India . Ministry of home affairs 2011
2. ministry of MSME, district of kaushambi, Uttar Pradesh.2016
3. utter Pradesh skill development mission, 2020.
4. Government of UttarPradesh.
5. www.kaushambi.nic.in
6. www.updesh.up.nic.in . "EconomicProfile" Uttar Pradesh, 2018-2019
7. Web- msmediallahabad.gov.in
8. District Industrial Profile of Kaushambi District,(Ministry of MSME, Govt. of India).
9. Financial information for MSMEs -Agra, Firozabad, Mathura and Mainpuri from Regional Manager, UPFC, Agra.
10. Deputy Commissioner, District Industry Centre – Agra, Firozabad, Mathura & Mainpuri for industries verification.
11. State Financial Corporations Act, 1951
12. A study on financial assistance to small and medium enterprises by

KSFC (Journal) — T Srinivas K – Bangalore, Karnataka, India : ISSN – 2320-0073, 2013- Vols. Volume ISSN – 2320-0073 II, November

13. 8. A study on financial assistance to small and medium enterprises by KSFC (Journal) — T Srinivas K : International monthly refereed journal of research in management & technology (ISSN-2320-0073), November 13- volume II.
14. A study on policy and programmer to promote Indian MSMEs (journal) – Dr. Preeti Gupta Ms Shubhra Bhardwa – International journal of multidisciplinary research review vol. 1, issue -10,Dec- 2015
15. Competitiveness strategies of small and medium enterprises in transitional economics – Dr. C.Harvie, Mr. LE Cong Luyen Viet, Dr. Elias Sanidas// uow.eduau-2008.

●

An Analytical Study on Stress of Working Women in Banking and IT Sector

Dr. Taruna*, Dr. Shiwani Singh**

Abstract : In today's cut-throat competition, stress has become a common problem in all organizations.Stress has mostlydemonstrated causingseveral negative impacts on the poor well-being, low morale and job satisfaction which ultimately reduces the performance and productivity of women employees at the work place. This research work attempts to identify the prominent stressors that affect female employees at work.Additionally, this study also tries to compare the organizational role stress between married and unmarried women working in banking and IT sector. The data was collected through structured questionnaireto meet the aforesaid objective. The Descriptive statistics and Independent Sample t-test was utilized for data analysis. Outcomes of the study exhibit that inter-role distance ranks as the prominent stressor followed by role overload and role stagnation.Moreover, it was found that the married women in banking sector experienced higher levels of organizational role stress (ORS).The organizations must manage the stress among female workers effectively because it has a detrimental impact on survival and growth of business. Furthermore, organizations must formulate holistic strategies for stress management as stress-free environment makes employees more productive.

Keywords : *Stress, Inter role distance. Role overload, Role stagnation*

Introduction : Stress of working females has been a foremost area of discussion over the years. Stress is characterized as deleterious physiological and emotional reactions that take place when workplace demands are incompatible with employees' skills, ability, and preferences.It is a global problem that has been linked to several unfavorable consequences.Stress at work causes employees to become pessimistic about their work, which adverselyaffects their morale, efficiency and performance(Low & McCraty, 2018). This may have both long and short-term effects. Long term stress also called as chronic stress is felt over an extended period.It causes an increase in heart rate, blood pressure, andaffects immune system. Acute stress is the term used to describe work-related stress that lasts only for a short period.Work pressures, family issues, and other daily work responsibilities are the short-

* Associate Professor- Department of Management Studies, Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Lucknow, U.P.

** Assistant Professor- Department of Human Resource Management, Galgotias University, Greater Noida, U.P.

term stressors(Pender et al., 2006).The organizations' ability to operate smoothly is hampered by workplace stress.Every organization must figure out the source of employee stress because it directly contributes to higher absenteeism and attrition rate, which will ultimately increase the organization's financial cost (Putri & Syaebani, 2018). If work stress is not properly controlled and managed, it could impede corporate growth and survival. Although stress is still an unavoidable phenomenon, it is vital for theorganizations to implement some stress-relieving measuresto lessen workplace stressand improve employee's ability to handle stress effectively and efficiently.Udai Pareek has categorized role stressors into ten broad types, which encompass various sources of stress within roles. These categories provide insight into the different aspects of role-related stress:

I. Inter-role distance (IRD) : It refers friction between the various roles.

II. Role stagnation (RS) : It is a perception of job stagnation and a lack of advancement.

III. Role expectation conflict (REC) : Different organization members have various competing roleexpectations.

IV. Role erosion(RE) : The degree of one's responsibility is being diminished.

V. Role overloads(RO) : It deals with excessive work pressure.

VI. Role isolation(RI) : Having little access to new source of information and low involvement in activities.

VII. Personal inadequacy (PIn) : Not having the knowledge, skills, or training required to succeed in a particular role.

VIII. Self-role distance(SRD) : When a person's own beliefs or interests diverge from role requirement.

IX. Role ambiguity (RA) : Lack of clarity about roles and responsibilities.

X. Resource inadequacy(RIn) : Lack of required resources for performing a role successfully.

Literature Review : In this section, the pertinent studies related to stress were examined so as to identify issues, problems and ideas. (Chaudhary & Lodhwal, 2017) found thatthe stress is a growing concern for both employees and organizations in the contemporary business environment. Selye coined the term stress in the 1950s. According to(Jehangir et al., 2011),stress is "a negative response to situations that are believed to tax or exceed individual coping ability.(Finney et al., 2013) observed Stress as "the psychological strain or distress as a consequence of exposure to abnormal or demanding situations, known as stressors. A person may experience stress from a variety of sources, and these stressors or sources may be personal or organizational.The stressors were

categorized into threebroad categories i.e., organizational stressors,personal stressors and task/role stressors.(Landrum et al., 2012) defined the organizational stress as the psychological and physiological pressure that employees perceive due to the organizational policies, practices,structures and working environment. Employees' stress can be exacerbated by organizational policies like inadequate training,difficult and challenging tasks, job insecurity, limited career options, long working hours and low pay(Mosadeghrad, 2013; Schmitz et al., 2000). Organizational culture, low worker participation in management, job content, work schedule and limited resources are also prime cause for the stress at the workplace (Leka, S. et al., 2003).It has often been noted that the organizational stress has the potential to reduce performance, limit productivity, and have deleteriousresult on an individual's health and well-being (Cooper et al., 2001).Organizational climate is one of the predicator of employee stress and burnout. Organizational climate can be defined asemployees' collective perceptions about their work environment. The organizational climate factors that have been proven to play significant roles in causing psychological burnout are role conflict, role ambiguity, role overload, and emotional exhaustion(Armon, 2009; Gayman & Bradley, 2013; Shultz et al., 2010).The study of (Dhanabhakyam, M and Malarvizhi, 2014; Pratibha, 2009) depicts that personal factors such as one's personal life, children's health and education, work-family conflict, lack of family support, social obligations, and work-life imbalance are prominent sources of stress on individual basis.Role conflict and role ambiguity are the principal elements of task/ role stressor, which have drawn considerable attention of researchers and practitioners(Mohamed, 2015).Initially, Kahn defined role stress as the strain experienced by people while they are not able to grasp or comprehend pertinent rights and obligations associated with the employment and to fulfill their roles effectively(Wu et al., 2019).(Eatough et al., 2011) reported that role ambiguity can be defined as the lack of complete work-related knowledge attached with employees' job responsibilities. Work- related information consists of performance expectations, tasks, dutiesand obligations (Bowling et al., 2017). Study of (Kim et al., 2015)also indicated that role ambiguity normally arises when employees are unclear about the organization's objectives, goals, rules, regulations, and guidelines.Earlier studies have found that role ambiguity leads to a number of dysfunctional job-related outcomes such as decreased levels of self-efficacy, job satisfaction, performance and increased levels of social loafing and task conflict(Bowling et al., 2017; Kawai & Mohr, 2015; Li & Bagger, 2008). Role conflict occurs when an employee is confronted with conflicting role expectations.The inability of employees to fulfill two or more roles

simultaneously is known as role conflict(Peiró et al., 2001). Higher degree of role conflict results in emotional exhaustion, depersonalization and job burnout (Shin et al., 2014).

Objectives : The objectives of our study are given as under:

- To explore prominentrole stressors of working women in banking and IT sector.
- To compare the mean scores of organizational role stress between married and unmarried women.
- To compare the mean scores of organizational role stress between banking and IT sector employees.

Hypotheses

H0 : There is no significant difference in mean scores of organizational role stress between married and unmarried women.

H1 : There is significant difference in mean scores of organizational role stress between married and unmarried women.

H0 : There is no significant difference in mean scores of organizational role stress between banking and IT sector employees.

H1 : There is significant difference in mean scores of organizational role stress between banking and IT sector employees.

Methodology : Data was collected from women employees employed in IT and banking sectors located in Delhi.Only women employees were included in the study to eliminate gender-based response variations.A standardized questionnaire was employedfor the collection of the data from working women to identify the leadingrole stressors at workplace. A total of 300 questionnaireswere distributed, 162 of them were appropriate for the further study. The response rate was 54%. Conveniencesampling; a non-probability sampling technique was employed to obtain the response from respondents. The Independent Sample t-test was applied for analysis of the data. Independent Sample t-test is a parametric technique, basically used for comparing the means of two independent groups. Normality of data and homogeneity of variance assumptions must be satisfied before performing an Independent Sample t-test. Therefore, to check the normality of data Shapiro –Wilk test was applied; the p-value of Shapiro – Wilk test is more than 0.05 which confirms that data is normally distributed.Further, Levene's test was employedto examine the homogeneity of variance between two groups.

Measures : The prior validation was used for the study.A questionnaire designed by Udai Pareek, with 50 items separated into 10 components, was used to quantify organizational role stress (ORS).In the year 1983, this scale was created.There are 10 role stresses that are measured using the ORS scale.A total of 50 statements were included on a 5-point scale (0–4) with five items for each role stressor.The ORS scale is

an extensively used scale to assess role stressors.

Analysis

Table 1: Demographic Profile

Sr.No.	Demographic	Categories	Frequency	Percentage
1	Age	25-30	40	24.69
		31-35	30	18.52
		36-40	51	31.48
		Above 40 Years	41	25.32
2	Educational Qualification	Undergraduate	71	43.82
		Postgraduate	91	56.17
3	Marital status	Married	66	40.74
		Unmarried	96	59.26
4	Experience	0-3 years	29	17.90
		4-7 years	46	28.39
		7-10 years	55	33.95
		Above 10 years	32	19.76
5	Income	Below 30,000	30	18.52
		30,000-50,000	78	48.15
		Above 50,000	54	33.33
6	Industry	Banking	76	46.92
		IT	86	53.08

Table 2 : Reliability Analysis

Sr.No	Stressors	Cronbach's Alpha
1	IRD	.885
2	RS	.841
3	REC	.909
4	RE	.902
5	RO	.905
6	RI	.937
7	PIn	.907
8	SRD	.925
9	RA	.928
10	RIn	.921

Interpretation : Table 2 depicts that all constructs have Cronbach's alpha valuesmore than.80, indicating that all factors have required internal consistency.

Table 3 : Normality Test

Kolmogorov- Smirnov			Shapiro-Wilk			
ORS Mean	Statistic	df	Sig	Statistic	df	Sig
	.057	162	.200	.982	162	.052

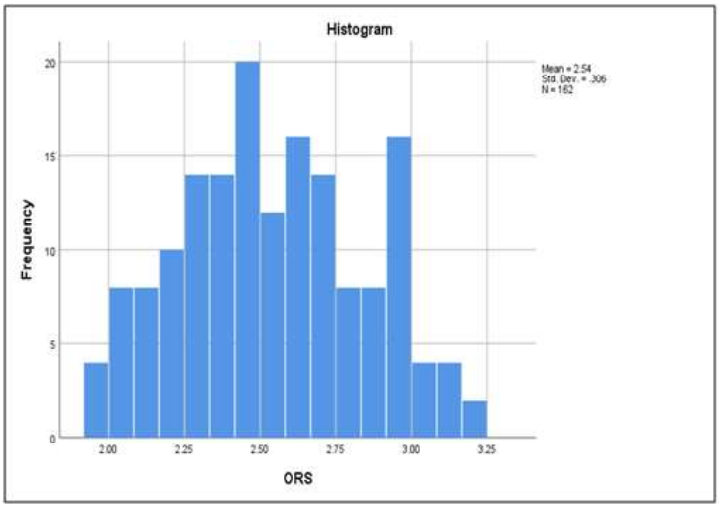

Figure 1: Histogram of Data for Normality Assessment

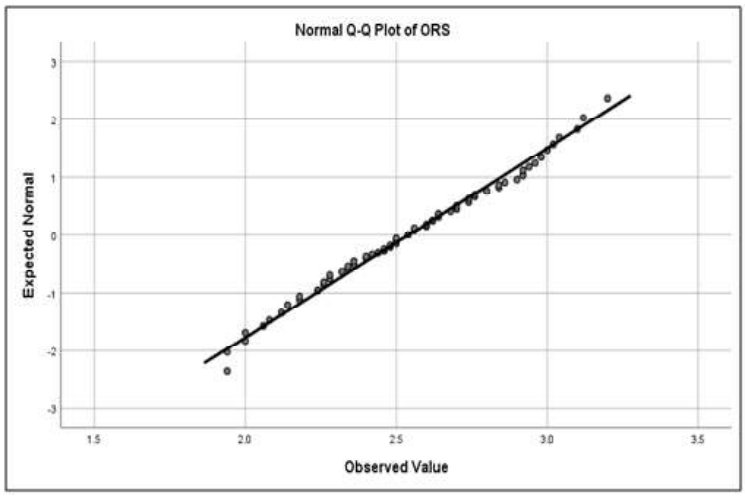

Figure 2 : Q-Q Plot for Normality Assessment

To confirm the normality of data,Shapiro –Wilk test was used. It can be seen from Table 3 that the p-value ofShapiro –Wilk test is larger than 0.05 which confirms that data is normally distributed. Histogram and Q-Q plot also signify normality of data. The p-value of Levene Statistic is greater than .05 which ensures the homogeneity of variance (Table 4).

Table : 4 Test of Homogeneity of Variance

	Based on parameters	Levene Statistic	df1	df2	Sig
ORS Mean	Mean	.176	1	160	.675
	Median	.149	1	160	.700
	Median with adjusted df	.149	1	160	.700
	trimmed mean	.181	1	160	.671

Table : 5 The Most ProminentStressor at Workplace

Sr.No.	Stressor	No. of Items	Sample Size	KMO	Bartlett's Test of Sphericity	Variance (%)	Mean	Standard Deviation
1	IRD	5	162	.823	.000	69.100	2.71	.87
2	RO	5	162	.868	.000	72.651	2.67	.89
3	RS	5	162	.778	.000	62.014	2.66	.80
4	REC	5	162	.845	.000	73.621	2.61	.95
5	PIn	5	162	.867	.000	73.272	2.59	.97
6	RIn	5	162	.856	.000	76.667	2.52	1.03
7	RI	5	162	.835	.000	80.788	2.48	1.07
8	RA	5	162	.810	.000	78.566	2.42	1.04
9	RE	5	162	.767	.000	72.245	2.38	.97
10	SRD	5	162	.834	.000	77.172	2.31	.98

Table 5 explainsthat Inter Role Distance has the highest computed mean value of 2.71 among all other stressors.Hence, it is statistically confirmed that Inter Role Distance is the prominent stressor of working women followed by Role Overload (mean value 2.67) and Role Stagnation(mean value 2.66) respectively. Furthermore, the KMO value for all ten role stressors is greater than .60 which shows sample adequacy and the Bartlett' test result (Sig=.000) displays high correlation among items.

Table : 6 Organizational Role Stressors Scores Classification

Stressors	High		Medium		Low	
	Frequency	Percentage	Frequency	Percentage	Frequency	Percent age
IRD	84	51.86	72	44.44	6	3.70
RS	80	49.39	78	48.15	4	2.46
RES	82	50.62	50	30.86	30	18.52
RE	70	43.20	30	18.52	62	38.28
RO	74	45.68	64	39.50	24	14.82
RI	80	49.39	24	14.81	58	35.80
PIn	82	50.61	48	29.63	32	19.76
SRD	62	38.27	34	20.99	66	40.74
RA	76	46.92	18	11.11	68	41.97
RIn	78	48.15	38	23.46	46	28.39

The organizational role stress scores on various stressors have been divided into 3 categories in order to facilitate future investigation: Low stress group (0–7), medium stress group (8–14), and high stress group (15-20). According to the above Table 6, 51.86 % of respondents rated inter-role distance as high stress, 39.50% rated role overload as medium stress, and 2.46% rated role stagnation as low stress.

Table : 7 Group Statistics

	Marital	**N**	**Mean**	**Std.Deviation**	**Std.Error Mean**
ORS	Unmarried	84	2.3195	.19721	.02152
	Married	78	2.7805	.20460	.02317

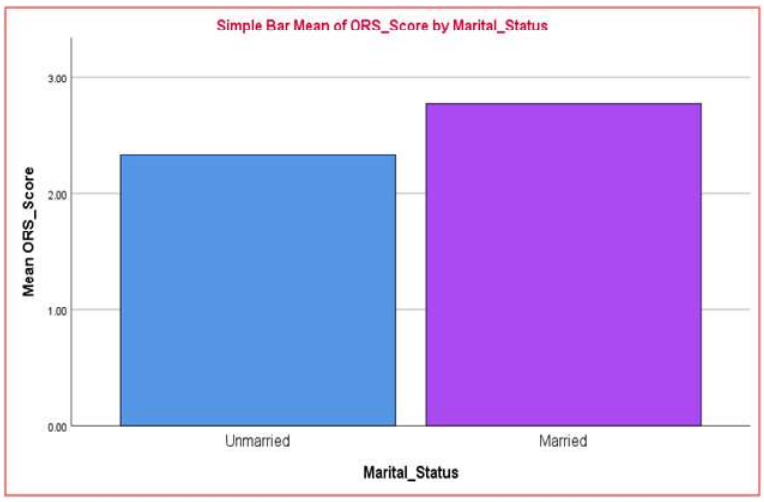

Figure 3 : Mean Value of ORS for Marital Status

Table 8 : Results ofIndependent Sample t-test

		Levene's Test of equality of Variance		t-test for equality of means				
		F	Sig	t	df	Sig (2-tailed	Mean difference	Std.error difference
ORS	Equal Variances assumed	.176	.675	-14.600	160	.000	-.46099	.03157
	Equal Variances not assumed			-14.580	158.043	.000	-.46099	.03162

Note: Since in the Levene's Test for Equality of Variances, the sig value (0.675) is more than 0.05, hence we have used the top row (Equal variances assumed)

From table 7,it can be seen the mean and standard deviation for unmarried women is 2.3195 and .19721,respectively. The mean for married women is 2.7805 and standard deviation is .20460. From table 8, it can be observed that p value is .000 which demonstratestheprominent variation in mean scores of organizational stress between married and unmarried women.So, it can be concluded that married working professionals experience more stress as compared to unmarried women.

Table 9 : **Group Statistics**

	Marital	N	Mean	Std.Deviation	Std.Error Mean
ORS	IT	84	2.2916	.18479	.02120
	Banking	78	2.7523	.20460	.02202

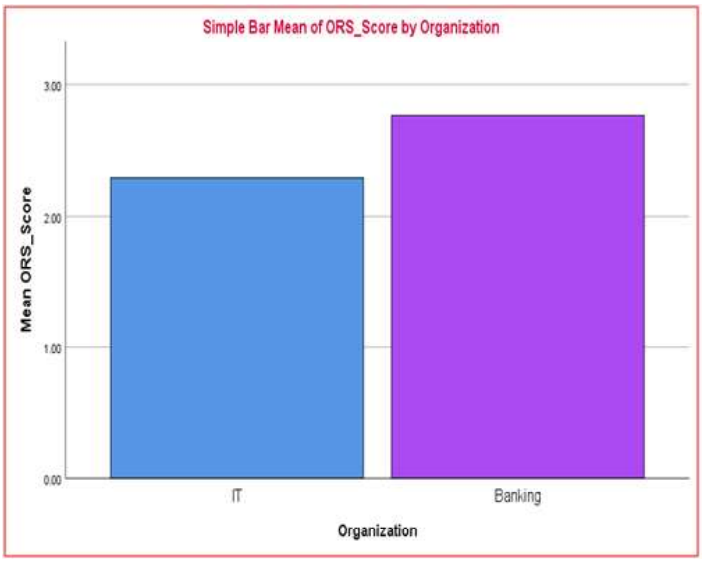

Figure 4 : Mean Value of ORS for Banking and IT Employees

Table : 10 Independent Sample t-test

		Levene's Test of equality of Variance		t-test for equality of means				
		F	Sig	t	df	Sig (2-tailed	Mean difference	Std.error difference
ORS	Equal Variances assumed	1.348	.247	-15.307	160	.000	.47075	.03075
	Equal Variances not assumed			-15.402	159.904	.000	.47075	.03056

Note: Since in the Levene's Test for Equality of Variances, the sig value (0.247) is more than 0.05, hence we have used the top row (Equal variances assumed)

A perusal of table 9 indicates that the mean and standard deviation for IT working women is 2.2916 and .18479 respectively. The mean for banking women is 2.7523 and standard deviation is .20460.According to table 10, the mean scores of organizational role stress for IT and banking women professionals differ significantly as p value is lesser than .01. Hence, banking employees perceive more stress as compared to IT employees.

Discussion : There are number of factors which trigger stress among working women professionals. One of the dominating factors that contribute to stress is the role that working women hold within an organization. Generally organizational role stress arises when employees are unableto adapt to their roles' requirements. Organizational role stress is serious concern among working women as it leads to several undesirable consequences such as low performance, job satisfaction and adverse effect on the physical and psychological wellbeing of employees. The results of our research reveal that employees in the banking industry experience more organizational role stress than those in the IT industry. It is often recognized that banking employees perceive higher level of organizational role stress due to increased customer interaction at different levels and lengthy working hours.The outcome supports the findings of(Chaudhary & Lodhwal, 2017; Giorgi et al., 2017; Kan & Yu, 2016)who suggested that banking professionals perceive higher degree of role stress (role overload, role ambiguity) because of the entrants of private sectors banks, induction of new& advanced technologies, and high work load which results in severe and enduring mental stress that causes chronic diseases.

Moreover, the results of this study also highlight that as compared to unmarried women, married women experience higher degree of role stress.

Higher degree of role stress among the working professionals is positively related with work-family conflict, work-life imbalance which increases the propensity to leave.The results is in line with(Wu et al., 2019)who claimed that role stress (role ambiguity, role conflict) has a significant consequence on job burnout and job performance.

Managerial Implications and Future Directions : The study's findings offer valuable practical insights for managers, especially in the context of addressing inter role distance and work overload. Prioritizing the establishment of transparent communication channels becomes imperative to bridge the gaps between roles and ensure clarity in responsibilities. To mitigate inter role distance, fostering regular interactions and collaboration among diverse teams.This can be achieved through organizing joint meetings and brainstorming sessions. In dealing with work overload, a continuous assessment of workloads is essential to ensure a balanced distribution of tasks, effectively avoiding the pitfalls of excess workload. Encouraging open discussions about challenges and extending necessary support and resources is vital for managing stress associated with heavy workloads.Moreover, introducing adaptable work structures to accommodate individual needs and promoting a harmonious work-life balance contributes significantly to alleviating the negative impacts of both inter role distance and work overload.

Furthermore, providing avenues for skill enhancement and development serves to boost employees' confidence and competence, enabling them to navigate their roles with proficiency, even in the face of these challenges.By diligently implementing these measures, organizations can adeptly address the stressors posed by inter role distance and work overload. This creates an environment conducive to employee well-being and fosters sustainable performance levels, ultimately benefiting both the individual and the organization as a whole.

The current research is cross-sectional, providing an overview of stress levels in the IT and banking sectors at a specific point in time. Future research should consider adopting a longitudinal approach to better understand how stress levels evolve over time in these industries. Moreover, while the study focused on the IT and banking sectors, there is potential to expand this research to encompass a wider range of industries. Investigating stress levels in various sectors, such as healthcare, manufacturing, or education, would enable researchers to assess the generalizability of findings and identify sector-specific stressors and coping mechanisms. Enhancing the sample size has the potential to yield more robust outcomes.Top of FormBottom of Form

Conclusion : The study has identified prominent role stressors that women believe as the causes of their organizational stress. The findings of

the study highlightthat Inter-Role Distance is prominent stressor that is experienced by working women of banking and IT sector. Inter-Role Distance is generally high inworking womenbecause they have to perform multiple roles at work and home.Inter-Role Distance is widely considered as the root cause of both work-family conflict and an unbalanced work-life.The involvement, engagement and commitment of female employees decline as stress levels rise. In order to help the female employees to better manage their stress, the company/organizations' needs to offer them support and multiple counseling sessions,flexi-time schedule and regular stress audit. A stress-free workplace environment is crucial for a business as it lowers turnover, boosts morale and dedication, and aids in the achievement of its goals. A happy and healthy employee is always an asset for the organization.

Conflict of Interest

Authors declare no conflict of interest.

References

- Armon, G. (2009). Do burnout and insomnia predict each other's levels of change over time independently of the job demand control-support (JDC-S) model? *Stress and Health*, *25*(4), 333–342. https://doi.org/10.1002/smi.1266
- Bowling, N. A., Khazon, S., Alarcon, G. M., Blackmore, C. E., Bragg, C. B., Hoepf, M. R., Barelka, A., Kennedy, K., Wang, Q., & Li, H. (2017). Building better measures of role ambiguity and role conflict: The validation of new role stressor scales. *Work and Stress*, *31*(1), 1–23. https://doi.org/10.1080/02678373.2017.1292563
- Chaudhary, P., & Lodhwal, R. K. (2017). An analytical study of organizational role stress (ORS) in employees of nationalized banks: A case of Allahabad Bank. *Journal of Management Development*, *36*(5), 671–680. https://doi.org/10.1108/JMD-09-2015-0137
- Cooper, C. L., Dewe, P. J., & O' Driscoll, M. P. (2001). *Organizational stress: A review and critique of theory, research, and applications*. Sage.
- Dhanabhakyam, M and Malarvizhi, J. (2014). Work-family conflict and work stress among married working women in public and private sector organizations. *International Journal of Business and Management*, *7*(10), 46–52.
- Eatough, E. M., Chang, C. H., Miloslavic, S. A., & Johnson, R. E. (2011). Relationships of role stressors with organizational citizenship behavior: A meta-analysis. *Journal of Applied Psychology*, *96*(3), 619–632. https://doi.org/10.1037/a0021887
- Finney, C., Stergiopoulos, E., Hensel, J., Bonato, S., & Dewa, C. S. (2013). Organizational stressors associated with job stressand burnout in correctional officers: a systematicreview. *BMC Public Health*, *13*(1), 1–13.
- Gayman, M. D., & Bradley, M. S. (2013). Organizational climate, work

stress, and depressive symptoms among probation and parole officers. *Criminal Justice Studies*, *26*(3), 326–346. https://doi.org/10.1080/1478601X.2012.742436

- Giorgi, G., Arcangeli, G., Perminiene, M., Lorini, C., Ariza-Montes, A., Fiz-Perez, J., Di Fabio, A., & Mucci, N. (2017). Work-related stress in the banking sector: A review of incidence, correlated factors, and major consequences. *Frontiers in Psychology*, *8*, 1–17. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2017.02166
- Kan, D., & Yu, X. (2016). Occupational stress,work-family conflict and depressive symptoms among Chinese Bank employees: The role of psychological capital. *International Journal of Environmental Research and Public Health*, *13*(1). https://doi.org/10.3390/ijerph13010134
- Kawai, N., & Mohr, A. (2015). The contingent effects of role ambiguity and role novelty on expatriates' work-related outcomes. *British Journal of Management*, *26*(2), 163–181. https://doi.org/10.1111/1467-8551.12089
- Kim, S. S., Im, J., & Hwang, J. (2015). The effects of mentoring on role stress, job attitude, and turnover intention in the hotel industry. *International Journal of Hospitality Management*, *48*, 68–82. https://doi.org/10.1016/j.ijhm.2015.04.006
- Landrum, B., Knight, D. K., & Flynn, P. M. (2012). The impact of organizational stress and burnout on client engagement. *Journal of Substance Abuse Treatment*, *42*(2), 222–230. https://doi.org/10.1016/j.jsat.2011.10.011
- Leka, S., Griffiths, A., & Cox, T. (2003). *Work organisation and stress: Systematic problemApproaches for employers,managers and trade union representatives*. World Health Organization.
- Li, A., & Bagger, J. (2008). Role ambiguity and self-efficacy: The moderating effects of goal orientation and procedural justice. *Journal of Vocational Behavior*, *73*(3), 368–375. https://doi.org/10.1016/j.jvb.2008.07.008
- Low, A., & McCraty, R. (2018). Emerging dynamics of workplace stress of employees in a large organization in Hong Kong. *Public Administration and Policy*, *21*(2), 134–151. https://doi.org/10.1108/PAP-10-2018-008
- Mohamed, L. M. (2015). An exploratory study on the perceived work stress by individual characteristics: The case of Egyptian hotels. *Journal of Hospitality and Tourism Management*, *25*, 11–18. https://doi.org/10.1016/j.jhtm.2015.08.001
- Mosadeghrad, A. M. (2013). Occupational stress and turnover intention: Implications for nursing management. *International Journal of Health Policy and Management*, *1*(2), 169–176. https://doi.org/doi:10.15171/ijhpm.2013.30
- Peiró, J. M., González-Romá, V., Tordera, N., & Mañas, M. A. (2001). Does role stress predict burnout over time among health care

professionals? *Psychology and Health*, *16*(5), 511–525. https://doi.org/10.1080/08870440108405524

- Pender, N. J. ., Murdaugh, C. L., & Parsons, M. A. (2006). *Health Promotion in Nursing Practice* (5th ed.). Pearson-Prentice Hall, Upper Saddle River, NJ.
- Pratibha, P. K. (2009). Stress causing psychosomatic illness among nurses. *Indian Indian Journal of Occupational and Environmental Medicine,13*(1), 28–32. https://doi.org/10.4103/0019-5278.50721
- Putri, L. A., & Syaebani, M. I. (2018). Employees work stress level in the Hospital. *International Research Journal of Business Studies*, *11*(3), 231–243. https://doi.org/10.21632/irjbs.11.3.231-243
- Schmitz, N., Neumann, W., & Oppermann, R. (2000). Stress, burnout and locus of control in German nurses. *International Journal of Nursing Studies*, *37*(2), 95–99. https://doi.org/10.1016/S0020-7489(99)00069-3
- Shin, H., Park, Y. M., Ying, J. Y., Kim, B., Noh, H., & Lee, S. M. (2014). Relationships between coping strategies and burnout symptoms: A meta-analytic approach. *Professional Psychology: Research and Practice*, *45*(1), 44–56. https://doi.org/10.1037/a0035220
- Shultz, K. S., Wang, M., & Olson, D. A. (2010). Role overload and underload in relation to occupational stress and health. *Stress and Health*, *26*(2), 99–111. https://doi.org/10.1002/smi.1268
- Wu, G., Hu, Z., & Zheng, J. (2019). Role stress, job burnout, and job performance in construction project managers: The moderating role of career calling. *International Journal of Environmental Research and Public Health*, *16*(13). https://doi.org/10.3390/ijerph16132394

●

Rural Social Structure and Fictive Kinship : A Special Reference to Hathiganha Village in Prayagraj

Prof. Erum Farid Usmani*, Prof. Lalima Singh**

Abstract : In the Indian rural structure, family, caste, and kinship are the basic components that bind the economic and social life of people. In the social fabric of Hathiganha Village located in the Prayagraj district, fictive kinship also plays an important role in maintaining the village's social fabric. Fictive kinship refers to those bonds that develop among different members of society who are not related biologically or through marriage relationships. This bond goes beyond familial ties and has two important dimensions: Relatedness and Utility. Relatedness refers to those relationships that develop due to face-to-face interaction and living in close proximity. The dimension of utility was also reported by the respondents; such ties develop when individuals support one another in times of need. In the realm of fictive relationships, respondents share food, residence, festivities, friendship bonds, and other socio-cultural rituals. Hence it results in cultivating social capital. Fictive kin are accorded many of the same rights and statuses as family members and are expected to participate in the duties of the extended family. A sample of 20 Hindu female respondents from Hathiganha village was selected for the study. Primary data was gathered through observations, interviews, and narratives from the rural area. Findings reveal that rural social structure stays intact with solidarity with fictive kinship. Fictive kinship relations might sometimes supersede biological kinship as people develop trust-based relationships. Thus, they gain access to resources through their social capital. The respondents also reported that fictive kinship is not as strong as it was found 20 years back.

Key words : Fictive kinship, kinship systems, social capital and cultural practices.

Introduction : According to the 2011 Census of India, approximately 69% of the country's population resides in rural areas, highlighting the significance of rural communities in the socio-economic fabric of India. These villages form the backbone of the agrarian economy and reflect the traditional values and practices that continue to shape rural social structures. Robert Redfield has tried to explain the internal and external structure of rural society and has distinguished between peasants and farmers. He has defined peasants as those who practice agriculture as their livelihood. and a way of life, not a business for profit. He reiterates that

* Department Of Sociology- Hamidia Girls' Degree College, Prayagraj, U.P.
** Principal- S.S. Khanna Girls' Degree College, Prayagraj, U.P.

those agriculturalists who carry on agriculture for reinvestment and business, looking at the land as capital and commodity, are not peasants but farmers. While M.N. Srinivas (1961) who did his fieldwork in Indian villages writes “In sum, the village is a community that commands loyalty from all who live in it, irrespective of caste affiliation. Some are first-class members of the village community, and others are second-class members. Still, all are members”. André Béteille(1974) explained Firstly, Peasants are internally subdivided in terms of income and size of holding into, let us say, poor, middle, and rich peasants; Indian peasants, might, in addition, be divided into different castes. But what is more important is that they form only one stratum or class in a complex system of classes and strata; no understanding of the peasants can be complete unless we see them as non-working landowners on the one hand and landless workers on the other Oscar Lewis (1966) who explains the concept of a culture of poverty opined that people solve their problems to come up with a design for living, a ready-made set of solutions for human problems, and serves a significant adaptive function. Similarly, in kinship fictive kinship, this design of living plays an instrumental role in problem-solving, building social solidarity, cohesion, and gaining social capital. Fictive kinship runs on a similar pattern but has an edge. While building fictive kinship people trust one another at a higher pedestal on account of relatedness and utility. This design of living thus facilitates day-to-day activity and enhances their level of trust. This way of life transcends national boundaries and regional and rural-urban differences within nations.

The kinship system is found in all human societies, whether primitive or modern, rural or urban. Kinship and marriage are the basic goals of life. Sexual desire gives birth to marriage and marriage develops the family and kinship system. From the beginning of creation, two things have played an important role in motivating people to live in groups. First, economic interest, and second, social security. As a result, there was a feeling of forming small and big associations from family to nation, but a person lives most safely among his relatives. A person can change everything like nationality, religion, region, etc., but not kinship. The way we behave with our relatives differs significantly from the way we interact with others.

Without understanding kinship, we cannot understand the nature and social interactions of any society properly and without understanding social interactions, we cannot understand any society. Thinkers such as McLennan, Henryman, Louis Morgan, Radcliffe Brown, Malinowski, Evans Pritchard, Murdock, Levi Strauss, Louis Dumas, etc. have done notable studies on the kinship system The term "kinship" has multiple meanings and is used in various contexts, including biological, behavioural, and linguistic relationships. To understand kinship, we need to distinguish between these three contexts. Biological relationships can be

categorized into two types: those related to heredity and those related to sexual relationships. Kinship can be broadly categorized into three types:1. Affinal Kinship 2. Consanguineous kinship 3. Fictive Kinship.

Affinal Kinship is based on the sexual relationship between husband and wife. Not only husband and wife are related by marriage, but many relatives of both the families of husband and wife are also related by marriage. For example, mother-in-law, father-in-law, sister-in-law, sister-in-law, brother-in-law, sister-in-law, brother-in-law, uncle, sister-in-law, daughter-in-law etc.

Consanguineous kinship is also called blood relations. The relationship between parents and their children is blood relations. There is also blood relation between brothers and sisters. In this, the classical aspect is more important than the social aspect. Parents who are husband and wife have a marital relationship, but the children born to them have a blood relation with their parents. In this way, parents, brothers and sisters, grandparents, maternal uncles, maternal aunts, maternal grandparents, paternal uncles, paternal aunts, paternal aunts, etc. are blood relatives.

Fictive Kinship is based on non-blood ties, such as adoption or foster care. Fictive' relation means relations that are not real and different from pure/real kinship (blood and marriage). The term was used by Janet Carsten in her work, Culture of Relatedness in which she argued that kinship could not be understood only by referring to biology and reproduction. Rather kinship is more social as the relations are constructed through relatedness. Available literature concerning fictive kinship includes studies made in Latin America (Mintz and Wolfe, 1950; Foster, 1953; Sayres, 1956; and Deshon, 1963), Japan (Norbeck and Befu, 1958), and the United States (Liebow, 1967; Ballweg, 1968, 1969). Vatuk, Sylvia (1969) explains that Fictive kinship is much stronger in traditional rural areas as compared to urban mohallas(neighborhood).

In northern Indian villages, fictive kinship is not established through religious rituals but it is built automatically. As people of the village interact with each other almost daily, they are socialized to use fictive kinship terminology with those who are not related. The people of the village built and maintained relationships based on relatedness and utility.

Research Questions :

• How doesfictive kinship influence social cohesion and economic exchanges in the rural social structure of Hathiganha Village, Prayagraj?

• What are the key factors (e.g., age, caste, gender) that shape and sustain fictive kinship in Hathiganha Village, and how have these factors evolved?

Research Objectives :

• To analyze the role of fictive kinship in fostering social solidarity and bridging castebased divisions in Hathiganha Village.

• To examine the socio-economic and cultural dynamics of fictive kinship in the context of rural social structures, focusing on changes over the past two decades.

Methodology : To achieve this, the researcher aims to capture the nuances of cultural values and their impact on the attitudes and behaviours of the villagers of Hathinganha toward environmental conservation and resource management. For this, a multifaceted approach incorporating qualitative and quantitative methods, such as interviews and observations, is employed. This study was conducted in Hathinganha Village in the Allahabad District of Uttar Pradesh. To gather in-depth information for this study, a sample of 20 respondents has been selected. The random sampling method was employed for selecting this sample. Data has been collected through both primary and secondary sources. Primary sources include observations, in-depth interviews and case studies. Secondary sources include books, journals, and reports.

Data analysis : The village Hathiganha is located on the Allahabad-Lucknow Road and is 23 km away from the city of Allahabad. The village is divided into four purva such as Merai ka pura, Aajidpur, Hathiganha khaas, and Champatpur. (source: khatouni of tehsil soraon 2013). Hathiganha village had its own village panchayat which incorporates seven other villages including Rampur and Tikri village panchayat. The population of the village is 7800 with 2700 males and 2600 females, 1310 boys and 1190 girls. The village is dominated by 97 percent Hindus and 3 percent Muslims. Thirteen Hindu castes are represented in the village with the following distribution: Brahmans, Rajpoot, Maurya (Kurmi), Nai (Barber), Dhobi (washer man), Baniya (merchant), Darji (tailor), Gareria (shepherd), Lohar (blacksmith), Aheer (cattle harder), kahar(waterman), Pasi and Chamar (leather worker). Muslims in the village predominantly belong to the Churihaar (bangle seller) caste. The village is dominated by Mouryas (OBC) constituting 36% of the total population. Among other castes in the village 16 % yadava, Brahman 9%, Rajpoot 7%, Baniya 7%, Chamar 8% and Pasi are 9 % and in 8 % remaining castes. Despite caste diversity, the fictive kinship structure of the Hathiganha village remains intact. People of different castes share a bond by participating in festivities that result in fostering unity.

The case studies reveal different aspects like the role of age and caste, gender and social cohesion, building social capital, the economic impact, and, the role of cultural practices in fictive kinship.

The Role of Age and Caste in Fictive Kinship : Rita, a 55-year-old respondent, held the view that gender and caste play a vital role in effective kinship networks. She said that she shares a strong bond with an elderly lady whom she calls Chachi. Chachi belongs to her caste (Yadav)but is not biologically related to her. She visits her home and shares food and

festivities. She said that one day, while cooking, she realized, she was running out of ingredients like haldi (turmeric) or mirchi (chili). She goes to Chachi and borrows it from her. While she is cooking, she goes to Chachi and asks her to give it to her. Rita also said that one day, Chachi was experiencing pain in her leg so she boiled sarson ka tel (mustard oil), put some ajwain(Carom seeds) in it, and massaged her leg. Chachi said to her, "You are better than my daughter-in-law. I am blessed to have you. "Both Rita and the elderly lady belong to the same caste. The relationship getsstrengthened as both share the same cultural values. They do not have any taboos or prohibitions related to their activities as they belong to the same caste. In Hathiganha village, caste has an important role to play. People of the same caste have networks that foster social bonds.

Thus, it is evident that fictive kinship builds a strong bond between individuals of the same gender, irrespective of their age. The fictive relationship facilitates in day-to-day functioning nurturing and emotional bonding.

The Role of Cultural Practices in Fictive Kinship : Cultural practices play a significant role in fostering fictive kinship by shaping social relationships and providing a sense of belonging in rural society. Cultural practices such as rituals, festivals and communal activities provide opportunities for members of the community to share memorable experiences, these shared experiences strengthen social ties, contributing to the formation of fictive kinship. In times of need these fictive kin often provide financial and emotional support which reinforces social cohesion and solidarity within the community.

Another respondent Sonia (32 years old) shared her experience of how these practices helped her develop a strong bond with a woman in her neighbourhood. She said that when she moved to Hathiganha village after marrying Raghu she was 18 years old. As a daughter-in-law of a joint family she had immense household responsibilities, due to this she couldn't take out the time to visit her Mayka (parental home), even during festivals. In her neighbourhood lived Shanti's family, with whom she gradually developed a close bond through food exchanges and daily interactions.

Sonia referred to Shanti as 'Mausi' (Maternal aunt) and respected and treated her like her own biological Mausi. Shanti has two sons Ramesh and Suresh. Since Sonia could not find the time to visit her Mayka (parent home), she visited the Shanti Mausi house during Raksha Bandhan (a festival known as thread of protection) as it was right next to her house. Suresh and Ramesh treated her like their sister, and Sonia tied Rakhi—a bracelet of red and yellow threads—on their wrists, reinforcing their brotherly relationship.

Apart from making festive kinship during festivals like Raksha Bandhan and Bhai Dooj, Sonia would often visit their house and often

regarded it as her Mayka (parent home). Shanti Mausi also supported her during times of financial difficulty. When Sonia's son fell ill and the couple did not have enough money to take him to the doctor in the city, she confided in Shanti Mausi, who without hesitation gave her the required amount of money for the treatment. This act of generosity further solidified their fictive kinship.

Exchanging gifts and tying the rakhi transcends biological relations, allowing individuals to strengthen ties and reaffirm solidarity through shared cultural practices. Sonia's participation in these rituals highlights the role of shared cultural practices in maintaining fictive kinship.

This case study shows how rituals and cultural traditions help maintain fictive kin relationships. By participating in the festivals, individuals reaffirm their commitment to one another. These shared cultural practices strengthen community ties and reinforces social cohesion within the rural communities.

Gender in Fictive Kinship : Gender plays a crucial role in the development of fictive kinship especially amongst women in rural communities, as in these communities, social interaction and responsibilities are structured along gender lines. The significance of gender in fictive kinship could also be due to the fact that women find solace and a sense of security amongst other women in similar circumstances. Since women are often the primary caregivers and active participants in communal activities, they cultivate strong fictive kinship bonds through shared rituals, religious gatherings, and reciprocal labour. This not only creates a network of mutual support but also helps women to increase mobility and access to resources.

Another respondent, Radhika, a 30-year-old woman, shared how gender influences fictive kinship and the development of a strong network. To reinforce her fictive kinship bonds, Radhika uses kinship terms like "bhabhi" (sister-in-law) and "mausi" (aunt) when referring to women of her village with whom she shares a strong relationship. She emphasized that interacting with men is considered taboo, as a result, she observes traditional customs, such as wearing a ghunghat (veil) in front of male members of the village, these customs reduce her mobility. She explained that when she needs to visit places like a mela (fair) or a Grameen Bank (rural bank), it is her Mausi or Bhabhi who accompany her, as her family does not allow her to go alone. Over the years, she has cultivated these relationships, which provide her with both social and emotional support.

Women in her village also meet during religious gatherings, such as the Sankatha Devi 1 Puja (worship of the Goddess of Danger) held on Fridays and the Chatpat Devi Puja held on 1T he Sankata Devi is a Temple in Varanasi is not just a place of worship but a sanctuary where devoteesseek solace and divine assistance. Mondays. These religious and

cultural gatherings serve as opportunities for women to strengthen their networks, build trust, and maintain social capital.

Radhika also takes care of her Mausi by assisting her with household activities such as daal darna (manually grinding pulses). In return, they support each other in daily chores, ensuring that they have someone to rely on in times of need. These acts of mutual assistance further reinforce fictive kinship as a source of solace and security.

Radhika's case illustrates how rural women maintain fictive kin relationships to strengthen social ties. Women are often the primary caregivers in their communities, and fictive kinship allows them to rely on a broader network of support beyond their immediate biological family. The close-knit nature of these relationships among women plays a crucial role in preserving cultural practices and sustaining community values. By fostering trust and cooperation, these relationships not only strengthen social capital but also ensure the cohesion of rural communities.

Economic Impact of Fictive Kinship and Social Capital : Social capital refers to the networks and relationships that individuals or groups establish through interaction and corporation, which helps them develop a relationship of trust and mutual support. Fictive kinship plays a significant role in building social capital, particularly in rural communities where interpersonal bonds strengthen social cohesion.

Hathiganha Village in Prayagraj is a stratified society where people of different castes and classes coexist. They depend on each other for their basic needs, with lower-caste individuals often relying on upper-caste members for economic support. It has been observed that Brahmins and Rajputs are the primary landholders, while some Pasi and Chamar castes contribute to manual agricultural labor. Most Pasi and Chamar community members are landless laborers, and only a few own small plots of land. Many seek employment in the city of Allahabad. A few Scheduled Caste (SC) men operate horse carts, transporting vegetables from their village to the Phaphamau market.

Sita, a 42-year-old woman from the Maurya caste, is a landless labourer. She highlighted the economic benefits she gains through fictive kinship. As a landless labourer, she has built close ties with her fictive kin from the Maurya caste, who assist her with agricultural work during the harvest season. In return, she provides them with Dhan (paddy, unhusked rice), Bajra (pearl millet), Gehu (wheat), and other grains. By offering these grains, she contributes to their sustenance, reinforcing the mutual support system.

Sita also considers Teju Singh, a member of the Yadav caste, as part of her fictive kin network. He is a respected figure in the village, possessing both economic capital and social influence, as he is financially dominant and regarded as a muscleman (a person with strong influence and power).

Villagers respect him because he provides employment opportunities to many, which, in turn, leads people to offer him gifts and goods.

Sita recalled an incident when her husband suffered a fractured leg in an accident. Without money to take him to a doctor in the city, she sought help from Teju Singh, who not only provided her with financial assistance but also took her husband to the hospital in his jeep. This act ofsupport demonstrated how fictive kinship extends beyond social ties to include economic and emotional support, strengthening trust-based relationships.

Sita emphasized that the trust built through fictive kinship bonds allows her to access resources that would otherwise be unavailable. Her case illustrates how fictive kinship contributes to an individual's social capital, enabling access to economic aid, social recognition, and emotional security. This form of social support is especially crucial in rural India, where community-based support systems often function as the primary safety net for individuals facing crises.

However, she also observed that the nature of fictive kinship is changing over time. She mentioned that in the past, fictive kin bonds were much stronger, whereas today, they are increasingly based on utility. The younger generation, she explained, approaches relationships with a "fayada ya nukssan" (profit or loss) mindset—if a relationship offers benefits, they continue it; otherwise, they do not maintain it.

Findings and Conclusion : The study reveals that in Hathiganha village, fictive kinship plays a significant role in maintaining social solidarity. People in the village show great respect for fictive relations, and in some cases, these relationships are considered even more important than biological kinship.

The village society is broadly divided into two categories: landowners and landless labourers. Landowners provide financial assistance to landless labourers in times of crisis, as these families have coexisted in the village for generations. On the other hand, landless individuals rely on their social capital to access essential resources such as food, money, and employment.

Findings also reveal that cultural practices like Raksha Bandhan[2] and Bhai Dooj[3] play a crucial role in strengthening fictive kinship bonds. As women engage with other women during spiritual ceremonies like pujas, they create networks based on strong emotional connections. These networks not only reinforce their social ties but also enhance their physical mobility. Through these bonds, women gradually expand their social participation, moving beyond their immediate households to visit banks and fairs (melas) independently, without relying on their husbands.

Additionally, it was observed that fictive relationships in the village are often influenced by caste-based networks. However, respondents reported that due to social and economic changes, including migration, there has been a decline in fictive kinship ties. The younger generation,

unlike their predecessors, tends to approach relationships with a profit-and-loss mentality. While the aspect of relatedness still exists, there is now a greater emphasis on utility-based relationships, where social ties are maintained primarily for their practical benefits.

1. The Sankata Devi is a Temple in Varanasi is not just a place of worship but a sanctuary where devoteesseek solace and divine assistance.
2. Raksha Bandhan, joyful family holiday in late summer observed predominantly but not exclusively among Hindus of north India that celebrates the bond between sisters and brothers. In a ceremony, a sister ties a string bracelet or amulet, usually of red or yellow thread, called a rakhi on the right wrist of her brother, and the siblings exchange sweets.
3. Bhai Dooj, also known as Bhaiya Dooj, Bhai Tika, or Bhau Beej, is a festival that celebrates the cherished bond between brothers and sisters.

References

1. Béteille, André. Caste, Class, and Power: Changing Patterns of Stratification in a Tanjore Village. University of California Press, 1965.
2. Béteille, André. Six Essays in Comparative Sociology. Oxford University Press, 1974, p. 22.
3. Bourdieu, Pierre. "The Forms of Capital." Handbook of Theory and Research for the Sociology of Education, edited by J. Richardson, Greenwood, 1985, pp. 241–58.
4. Carsten, Janet, editor. Cultures of Relatedness: New Approaches to the Study of Kinship. Cambridge University Press, 2000.
5. Freed, Stanley A. "Fictive Kinship in a North Indian Village." Ethnology, vol. 2, no. 1, Jan. 1963, pp. 87. JSTOR, www.jstor.org/stable/3772970.
6. Government of India. Census of India 2011: Provisional Population Totals. Office of the Registrar General & Census Commissioner, Ministry of Home Affairs, 2011, www.censusindia.gov.in/2011census population_ enumeration. html.
7. Ibsen, Charles A., and Patricia Klobus. "Fictive Kin Term Use and Social Relationships: Alternative Interpretations." Journal of Marriage and Family, vol. 34, no. 4, 1972, pp. 615-20. JSTOR, https://www.jstor.org/stable/350312.
8. Lewis, Oscar. "The Culture of Poverty." Scientific American, vol. 215, no. 4, Oct. 1966, pp. 19. Scientific American, a division of Nature America, Inc., www.jstor.org/stab e/24931078.
9. Marriott, McKim, editor. Village India: Studies in the Little Community. Asia Publishing House, 1961.
10. Mayer, Adrian C. Caste and Kinship in Central India. University of California Press, 1960, pp. 145.
11. Orenstein, Henry, and Michael Micklin. "The Hindu Joint Family: The Norms and the Numbers." Pacific Affairs, vol. 39, no. 3/4, 1966, pp. 314–25. JSTOR, https://www.jstor.org/stable/2754275.
12. Redfield, Robert. Peasant Society and Culture. University of Chicago Press, 1956, p. 27.
13. Vatuk, Sylvia. "Reference, Address, and Fictive Kinship in Urban North India." Ethnology, vol. 8, no. 3, 1969, pp. 255–72. JSTOR, https://doi.org/10.2307/3772755.

●

Cultivating an Entrepreneurial Mindset : A Study of Engineering Colleges in Uttar Pradesh, India

Dr. Akash Agarwal*

Abstract : India's entrepreneurial ecosystem is evolving, propelled by initiatives like Start-up India and the National Education Policy (NEP) 2020, which advocate embedding entrepreneurship in higher education. However, implementation challenges persist in Tier-2 and Tier-3 regions. This study examines how engineering colleges in Uttar Pradesh (UP) foster entrepreneurial mindsets among students, focusing on curriculum integration and engagement with innovation platforms (e.g., hackathons and incubators). Using a mixed-methods approach—surveys (n=108 students, n=22 faculty), interviews (n=12), and document analysis—the research identifies promising practices and systemic barriers, including limited faculty training and cultural risk aversion. Findings highlight the need for experiential curricula and robust mentorship to bridge policy-practice gaps. Recommendations include mandatory entrepreneurship courses, faculty development programs, and localized ecosystem linkages. This study offers a context-specific perspective on entrepreneurship education in technical institutions, contributing to the discourse on regional innovation ecosystems.

Keywords : Entrepreneurial mindset, entrepreneurship education, engineering colleges, Uttar Pradesh, innovation ecosystems, Start-up India, NEP 2020.

1. Introduction : India's ambition to become a global economic powerhouse relies on nurturing innovation and entrepreneurship, particularly among its youth. Uttar Pradesh (UP), with over 300 engineering colleges, is a critical hub for technical education and a potential driver of entrepreneurial growth. National policies—Start-up India (2016), NEP 2020, and the All India Council for Technical Education's (AICTE) National Innovation and Start-up Policy (NISP) 2019—emphasize embedding entrepreneurial competencies in higher education to foster risk-taking, opportunity recognition, and resilience (AICTE, 2019; Ministry of Education, 2020). However, Tier-2 and Tier-3 cities in UP face challenges such as rigid curricula, inadequate faculty expertise, and socio-cultural risk aversion, which hinder the development of entrepreneurial mindsets (Bhatnagar & Tandon, 2023).

This study investigates how engineering colleges at UP cultivate

* Asst. Professor & HoD- Department of Applied Sciences & Humanities Rajkiya Engineering College, Kannauj, Uttar Pradesh India

entrepreneurial mindsets, which are defined as the cognitive and behavioural orientation toward innovation and opportunity creation (Krueger, 2007). It addresses a central question: How effectively are UP's engineering colleges fostering entrepreneurial mindsets among students through curriculum design and innovation platforms? The research aims to uncover enabling mechanisms, barriers, and actionable strategies to strengthen entrepreneurship education by focusing on two key dimensions- curriculum integration and student engagement with entrepreneurial platforms.

2. Literature Review :

2.1. Entrepreneurship Education in Engineering : Entrepreneurship education (EE) equips students with skills to innovate and create value, blending technical expertise with market-oriented thinking (Daud &Nordin, 2023). EE fosters problem-solving and interdisciplinary collaboration in engineering contexts, yet its integration often lacks depth due to outdated curricula prioritizing rote learning (Browning et al., 2022). Experiential learning through hackathons, incubators, and start-upboot camps is critical but underutilized in resource-constrained settings (Gupta & Sharma, 2024).

2.2. Policy Context in India : India's Start-up India and NEP 2020 initiatives advocate interdisciplinary learning and innovation hubs, while NISP 2019 mandates entrepreneurship cells (E-Cells) and incubators in technical institutions (AICTE, 2019; Ministry of Education, 2020). However, implementation varies, with Tier-2 and Tier-3 colleges facing funding shortages, bureaucratic delays, and weak industry linkages (Kumar & Jain, 2023). Socio-cultural factors, such as risk aversion and preference for stable jobs, further complicate EE adoption in regions like UP.

2.3 Research Gap : While EE has been widely studied in business schools, its application in engineering colleges in emerging regions like UP remains underexplored. Existing research often focuses on urban ecosystems or institutional rankings, overlooking micro-level factors such as curriculum design and student engagement with innovation platforms in Tier-2 and Tier-3 contexts (Bhatnagar & Tandon, 2023). This study addresses this gap by examining how UP's engineering colleges foster entrepreneurial mindsets, offering insights into localized challenges and opportunities.

3. Research Objectives : Two primary objectives guide the study:

1. To evaluate how entrepreneurship is integrated into engineering curricula in UP's Tier-2 and Tier-3 colleges.

2. To assess students' engagement with entrepreneurial platforms (e.g., hackathons,

incubators) and their impact on their entrepreneurial mindset.

These objectives align with the research gap by focusing on curriculum and platform engagement as critical levers for fostering entrepreneurial mindsets in a specific regional context.

4. Research Methodology

4.1 Research Design : A mixed-methods exploratory-descriptive design was adopted to capture quantitative trends and qualitative insights, which is suitable for studying complex educational ecosystems (Creswell & Plano Clark, 2018).

4.2 Population and Sampling : The study targeted final-year engineering students and faculty from eight public and private colleges in UP's Tier-2 (e.g., Kanpur, Varanasi) and Tier-3 (e.g., Gorakhpur, Jhansi) cities.

- Sampling Technique: Purposive sampling selected colleges with active E-Cells or Start-up initiatives. Snowball sampling identified engaged students and faculty.
- Sample Size:
  - o Surveys: 108 students, 22 faculty.

  Interviews: 12 participants (6 faculty mentors, 6 E-Cell coordinators).

4.3 Data Collection

- **Quantitative :** Structured questionnaires (Google Forms) used 5-point Likert scales to assess curriculum integration, platform engagement, and perceived barriers.
- **Qualitative**: Semi-structured interviews explored challenges, motivations, and institutional practices. Open-ended survey questions supplemented interview data.
- **Document Analysis:** Reviewed E-Cell reports, course syllabi, and policy documents (e.g., NISP 2019, UP Start-up Policy).

4.4 Ethical Considerations : Participants provided informed consent, with anonymity ensured. Data were securely stored and used solely for research purposes.

4.5 Data Analysis

- **Quantitative:** Descriptive statistics (means, percentages) and cross-tabulations were analyzed using SPSS.
- **Qualitative**: Thematic analysis of interview transcripts and open-ended responses identified key themes (e.g., curriculum gaps, platform access) using manual coding.
- **Integration:** Quantitative and qualitative findings were triangulated to ensure robustness.

5. Results and Discussion : The findings are structured around the two research objectives, supported by tables and figures for clarity.

5.1 Curriculum Integration : Only 32% of students rated their

curriculum's entrepreneurial focus as strong (4 or 5 on a 5-point scale; see Table 1). Document analysis revealed that just 3 of 8 colleges offered dedicated entrepreneurship courses, often electives without standardized outcomes. Faculty interviews highlighted a reliance on workshops over integrated modules, corroborating Browning et al.'s (2022) findings on pedagogical fragmentation. Students emphasized the need for experiential learning, such as Start-up simulations, to connect theory with practice.

Table 1: Student Perceptions of Curriculum Entrepreneurial Focus

Rating (1=Weak, 5=Strong)	Percentage of Students (%)
1	15
2	25
3	28
4	20
5	12
Source: Survey data (n=108).	

5.2 Engagement with Entrepreneurial Platforms : Sixty-five percent of students participated in entrepreneurial events (e.g., hackathons, boot camps), primarily through E-Cells or external partnerships (see Figure 1). However, only 18% accessed incubation facilities post-event, citing bureaucratic delays and limited mentorship. Due to awareness gaps, faculty noted that state-level initiatives like the UP Start-up Policy were underutilized in Tier-3 cities. These findings align with Gupta and Sharma's (2024) emphasis on sustained support for experiential learning.

Figure 1: Student Participation in Entrepreneurial Platforms

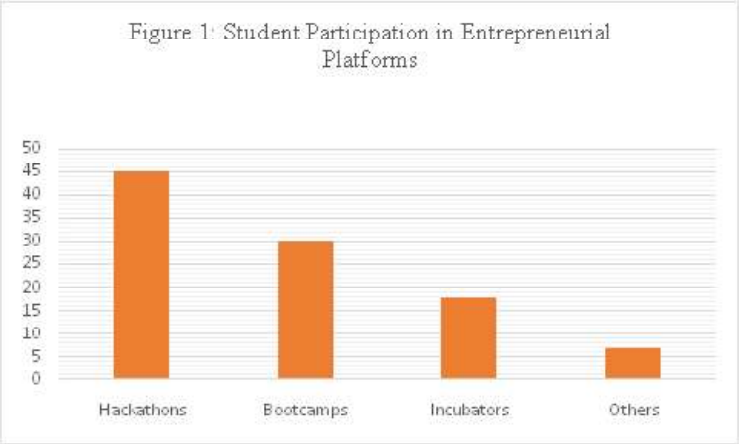

5.3 Challenges and Motivations : Key barriers included:

- Lack of seed funding (78%).
- Fear of failure and societal pressure for stable jobs (72%).
- Limited mentorship access (60%).

Despite these, 62% of students expressed entrepreneurial intent, driven by autonomy and social impact goals. Qualitative data revealed that rural and first-generation learners faced heightened risk aversion, necessitating tailored interventions. These findings echo Daud and Nordin's (2023) observations on cultural influences in EE.

5.4 Alignment with Research Objectives : The results directly address the objectives:

- **Objective 1 (Curriculum):** Limited integration reflects a gap between policy mandates (e.g., NEP 2020) and practice, with experiential learning underutilized.
- **Objective 2 (Platforms):** While platform engagement is moderate, lack of follow-up support hinders mindset development, underscoring ecosystem weaknesses.

The research gap—underexplored EE in UP's engineering colleges—is addressed by highlighting localized curriculum and platform challenges, offering a granular perspective absent from prior studies.

6. Policy Recommendations

Based on the findings, the following recommendations are proposed:

1. Curriculum Reform: Mandate credit-based entrepreneurship courses with experiential components (e.g., Start-up pitches, market analysis). Incorporate local case studies to enhance relevance.

2. Platform Enhancement: Strengthen E-Cells with funding from AICTE or Atal Incubation Center. Establish post-event mentoring cohorts to sustain student momentum.

3. Faculty Development: Partner with institutions like IITs or NIESBUD for entrepreneurship training. Incentivize faculty to lead E-Cells.

4. Cultural Interventions: Launch campaigns showcasing regional entrepreneurs to normalize risk-taking, paired with counseling to address fear of failure.

7. Conclusion

This study reveals that UP's engineering colleges possess latent entrepreneurial potential but face barriers to curriculum integration and platform engagement. Fragmented curricula, limited mentorship, and socio-cultural risk aversion hinder the development of entrepreneurial mindsets. UP can transform its colleges into innovation hubs by embedding experiential learning, capacitating faculty, and fostering ecosystem linkages. The research contributes a context-specific perspective on EE,

with implications for policymakers and educators in emerging regions.

8. Limitations and Future Research : The focus on Tier-2 and Tier-3 colleges may not reflect urban contexts. The sample size (n=108) limits generalizability. Future research should explore the longitudinal impacts of EE interventions and compare UP with other Indian states to identify best practices.

References

- All India Council for Technical Education (AICTE). (2019). National Innovation and Start-up Policy 2019. https://www.aicte-india.org/sites/default/files/NISP_2019.pdf
- Bhatnagar, R., & Tandon, P. (2023). Entrepreneurship education in India: Challenges and opportunities in technical institutions. Journal of Innovation and Entrepreneurship, 12(1), 45. https://doi.org/10.1186/s13731-023-00289-7
- Browning, J. W., McNally, D., &McCague, C. (2022). A systematic literature review of entrepreneurial education in electrical, electronic, and computer engineering curricula. IEEE Transactions on Education, 65(4), 1–9. https://doi.org/10.1109/TE.2022.3140123
- Creswell, J. W., & Plano Clark, V. L. (2018). Designing and conducting mixed methods research (3rd ed.). SAGE Publications.
- Daud, S., &Nordin, M. S. (2023). Entrepreneurship in technical and vocational education and training: A bibliometric review. International Journal of Academic Research in Business and Social Sciences, 13(3), 741–766. https://doi.org/10.6007/IJARBSS/v13-i3/16413
- Gupta, A., & Sharma, S. (2024). Fostering innovation in engineering education: The role of incubators and startups. Education and Information Technologies, 29(2), 1123–1145. https://doi.org/10.1007/s10639-023-11987-4
- Krueger, N. F. (2007). What lies beneath? The experiential essence of entrepreneurial thinking. Entrepreneurship Theory and Practice, 31(1), 123–138. https://doi.org/10.1111/j.1540-6520.2007.00166.x
- Kumar, V., & Jain, S. (2023). Policy implementation gaps in India's Start-up ecosystem: A regional perspective. Asian Journal of Innovation and Policy, 12(1), 89–104. https://doi.org/10.1108/AJIP-02-2023-0012
- Ministry of Education. (2020). National Education Policy 2020. Government of India. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

●

Role of Community Radio in Promoting Health Awareness in Urban Slums

Kastoori Singh*, Dr. Amar Pal Singh, Dr. Kirti Vikram Singh*****

Abstract : Urban slums are often neglected when it comes to healthcare awareness and outreach, resulting in vulnerable populations remaining uninformed about critical health issues. Community Radio offers a powerful, low-cost, and accessible medium to bridge this gap. This research paper explores the Role of Community Radio in promoting health awareness in urban slums, focusing on the case study of "Goonj," the community radio initiative of King George's Medical University (KGMU), Lucknow. The paper highlights Goonj's contribution, methodologies, challenges, and impact in improving health literacy among slum dwellers.

Keywords : Community Radio, Urban Slums, KGMU Goonj, Participatory Model

Introduction : Urban slums in India are characterized by dense populations, poor sanitation, limited access to healthcare, and low literacy levels. These factors collectively lead to a high disease burden and poor health outcomes. Traditional health communication methods often fail to reach this segment of society effectively due to barriers like language, accessibility, and socio-economic constraints.

Community Radio (CR), as a localized and participatory medium, can address these challenges efficiently. Unlike mainstream media, CR provides a platform for inclusive communication and grassroots-level education. The initiative "Goonj" by King George's Medical University (KGMU), Lucknow, serves as a pioneering example of how CR can be leveraged to educate and empower communities in urban slums regarding health.

Objectives of the Study :

1. To understand the health communication needs of urban slum populations.
2. To analyze the strategies adopted by KGMU Goonj in disseminating health awareness.
3. To assess the impact of Goonj on health behavior and practices among slum residents.
4. To identify challenges and suggest recommendations for enhancing the role of CR in urban health promotion.

Urban Slums and Health Challenges : Urban slums, home to nearly

* Research Scholar– Sri. Ramswaroop Memorial University, Barabanki, U. P.
** Associate Professor– Sri Ramswaroop Memorial University, Barabanki, U. P.
*** Deputy Director– IGNOU Regional Center Lucknow, Uttar Pradesh, India

one-fourth of India's urban population, face a range of health issues, including :

● **Infectious Diseases :** Tuberculosis, dengue, malaria, and diarrheal diseases due to poor sanitation.

● **Maternal and Child Health :** High rates of maternal mortality, low immunization, and malnutrition.

● **Non-Communicable Diseases :** Rising burden of diabetes, hypertension, and respiratory illnesses.

● **Mental Health :** Stress, depression, and substance abuse are prevalent yet under-addressed.

Compounded by illiteracy, gender disparity, and cultural taboos, these issues demand innovative health communication strategies.

Community Radio : A Tool for Health Communication

Community Radio operates on the principles of participation, localization, and social inclusion. Main features are :

● Broadcasts in local dialects.

● Encourages community participation.

● Builds trust among listeners.

● Bridges the gap between health institutions and marginalized groups.

By enabling two-way communication, CR becomes an effective vehicle for behavioral change, especially in hard-to-reach areas like urban slums.

Overview of KGMU Goonj@89.6 FM

Establishment & Vision : KGMU Goonj, launched in collaboration with the Ministry of Information and Broadcasting and supported by the University Grants Commission (UGC), is the first community radio initiative by a medical university in India. It primarily aims to improve public health awareness among underserved communities in Lucknow.

Coverage Area: Goonj reaches several urban slums in and around Lucknow, including areas like Nishatganj, Aishbagh, Rajajipuram and others with a listener base of approximately 3–5 lakh.

Languages Used : Hindi and local dialects (Awadhi and Bhojpuri) for better connect and understanding.

Programming Content and Health Themes : Goonj focuses on relatable, interactive and culturally appropriate content. Key health themes include :

● **Preventive Health :** Importance of handwashing, clean water, sanitation, and vaccination. ● **Maternal & Child Health :** Nutrition, antenatal care, breastfeeding practices, immunization schedules. ● **Infectious Diseases :** Awareness about tuberculosis, dengue, and HIV/AIDS. ● **NCD Awareness :** Education on lifestyle diseases like diabetes

and hypertension. ● **Women's Health :** Menstrual hygiene, reproductive health, domestic violence support. ● **Mental Health :** Stress management, addiction counseling, and emotional well-being.

Methodology of Engagement :

1. Participatory Model : Local residents are trained as radio reporters and health ambassadors.

2. Field Feedback : Regular feedback loops through phone-ins, SMS, WhatsApp groups.

3. Street Plays and Collaborations : CR content is reinforced through live community events.

4. Interviews and Testimonies : Real-life stories from slum dwellers make messages more impactful.

5. Multimedia Integration : Posters, podcasts, and short videos complement radio broadcasts.

Impact Assessment :

A qualitative and quantitative study of Goonj's impact was conducted through surveys, FGDs (focus group discussions), and interviews in selected slum clusters.

Findings :

· **Increased Health Awareness :** 52 % of listeners reported increased knowledge of at least one major health issue after regular tuning into Goonj.

● **Behavioral Change :** 56% of women said they began attending antenatal check-ups after hearing about its importance on the radio.

● **Hygiene Practices :** A rise in handwashing with soap and safe water storage practices was observed.

● **Trust Building :** Local listeners trust Goonj more than commercial media for health information.

● **Community Mobilization :** Slum youth have started volunteering as health workers and peer educators.

Challenges Faced : Despite its successes, Goonj faces multiple challenges :

● **Funding Constraints :** Limited financial resources restrict expansion and upgradation. ● **Technological Limitations :** Poor radio penetration in certain pockets; mobile listening yet to become widespread. ● **Content Creation Pressure :** Continuous generation of localized, credible, and engaging content is demanding. ● **Policy Gaps:** Absence of long-term government schemes specifically supporting health-based CR initiatives.

Recommendations

1. Strengthen CR Policy Support : Inclusion of community radio in national health communication strategies.

2. Regular Capacity Building : Training slum youth as content creators and health messengers.

3. Health Camps & Radio Linkage : Combine health camps with

live radio programming for maximum impact.

4. Partnerships : Collaborate with NGOs, local governments, and health departments for resource sharing.

5. Monitoring Tools : Use digital tools to assess program reach and impact more scientifically.

Conclusion : KGMU Goonj stands as a shining example of how community radio can play a transformative role in urban slums by promoting health awareness and empowering communities. Its participatory, local, and health-centric approach bridges the communication gap between health institutions and the underserved. To scale such initiatives nationally, a conducive policy environment, sustainable funding, and digital integration are essential. The model of Goonj can be replicated across India to revolutionize public health communication in marginalized urban landscapes.

References

1. Ministry of Information and Broadcasting, Government of India – Guidelines for Community Radio.
2. National Health Mission – Health indicators and urban health data.
3. King George's Medical University – Internal Reports and Goonj documentation.
4. UNICEF India – Communication for Development (C4D) guidelines.
5. Journal articles on community radio and public health (e.g., Economic & Political Weekly, Indian Journal of Community Medicine).
6. Chakravarthy, Jagdish. Changing trends in public service broadcasting. New Delhi: Author Press, 2006. Print.
7. Chatterji, P C. Broadcasting in India: Case Studies on Broadcasting Systems. New Delhi: Sage Publications, 1987. Print.
8. Prabhakar, Naval, and Narendra Basu. Mass Media and Society. New Delhi: Commonwealth Publishers, 2007. Print.
9. Shamsi, Nayar. Encyclopedia of Electronic Media. New Delhi: Anmol Publications, 2006. Print
10. Singhal, Arvind and Everett M Rogers. India's Communication Revolution: From Bullock Carts to Cybermarts. New Delhi: Sage Publications, 2001. Print
11. Pavarala, Vinod and M Malik Kanchan, Other Voices: The struggle for community Radio in India, Sage Publications, 2007
12. Kumar, Kanchan. Community Radio in India: A Study. S N School of Communication, University of Hyderabad, India 2005
13. Handbook on Radio and Television, BBC World Service Training Trust, UNICEF.
14. https://kgmu.org/kgmu_goonj_89.6.php.
15. https://www.comminit.com/global/content/best-practices-community-radio-and-sustainable-development-goals-handbook.

●

Safeguarding Victims and Witnesses Under New Criminal Laws

Aditya Pratap Singh*

Abstract : The protection of victims and witnesses is a critical aspect of ensuring justice in the criminal justice system. With the introduction of new criminal laws, significant efforts have been made to strengthen safeguards for these vulnerable individuals. This paper explores the provisions within these reforms aimed at enhancing victim and witness security, examining the legal frameworks established for their protection, and evaluating the challenges in their effective implementation. By focusing on the procedural safeguards, witness anonymity, and victim support systems, this study aims to highlight both the progress made and the areas where further legal refinement is needed. Through a comprehensive analysis, it is argued that while the new laws offer a robust structure for protection, their success hinges on overcoming practical challenges in enforcement and awareness.

Key Words : Victim Protection, Witness Protection, Criminal Justice, Witness Security, Legal Safeguards, Intimidation Prevention, Victim Compensation, Witness Anonymity, Restorative Justice, Witness Support, Criminal Law Reforms, Judicial Protection Programs,

1. Introduction : The protection of victims and witnesses is a cornerstone of a fair and just criminal justice system. Without adequate safeguards, those who play key roles in criminal trials—victims and witnesses—are left vulnerable to intimidation, retribution, and emotional distress, which can undermine the integrity of the justice process. In response to this growing concern, recent criminal law reforms have been introduced with the explicit aim of enhancing victim and witness protection. This article examines these new legal provisions, focusing on their strengths, challenges, and the overall impact on the criminal justice system. It also discusses international standards for victim and witness protection and offers recommendations for improving these safeguards in future reforms.

2. The Need for Protection : Victims and witnesses often face intimidation, coercion, or retaliation, especially in cases involving organized crime, corruption, or sexual violence. Their safety is critical not only for their own well-being but also for the integrity of the justice process. Fear and vulnerability often lead to witnesses turning hostile or victims withdrawing complaints, hampering the delivery of justice.

3. Legal Framework for Victim and Witness Protection : The new criminal laws introduced in various jurisdictions, including the Criminal Law (Amendment) Act, 2013 in India, have significantly advanced the framework for victim and witness protection. These reforms often include

* Assistant Professor- School of Law, Raffles University, Neemrana, Alwar, Rajasthan

provisions for witness anonymity, victim assistance programs, and enhanced legal support throughout the legal process. Witness anonymity, for example, ensures that witnesses who fear retaliation can provide testimony without revealing their identity. Additionally, victim support programs offer counseling, legal aid, and financial assistance to those who have suffered as a result of crime. These legal changes build on previous laws, aiming to create a more holistic and protective environment for both victims and witnesses.

4. Key Features of New Criminal Laws for Protection :

1. Enhanced Victim-Centric Approach :

● The new laws prioritize the well-being of victims by introducing mechanisms like compensation, psychological counseling, and support during court proceedings. Victims are now seen not just as complainants but as stakeholders in the justice process.

2. Institutional Frameworks for Witness Protection:

● Witness Protection Schemes: Governments are required to create structured programs that ensure relocation, financial aid, and identity changes for high-risk witnesses.

● Dedicated Witness Protection Cells: These units work in coordination with law enforcement to assess risks and implement protective measures.

3. In-Camera Trials and Confidentiality :

● To protect victims' dignity and privacy, especially in cases involving sexual offenses or minors, courts now routinely conduct in-camera proceedings. Victim and witness identities are also kept confidential through sealed records and restricted access.

4. Use of Technology:

● Video Conferencing: Witnesses can testify remotely, minimizing their exposure to threats in court.

● Digital Evidence Recording: Statements and evidence are recorded using technology to avoid repeated questioning, which can retraumatize victims.

5. Increased Penalties for Intimidation:

● The new laws impose stringent penalties for attempts to intimidate, harm, or coerce victims and witnesses. This includes criminalizing actions like threatening phone calls, physical harm, and property damage.

6. Victim Compensation Schemes:

● A mandatory compensation framework has been introduced for victims of crimes such as acid attacks, sexual violence, and human trafficking. This ensures financial stability while they rebuild their lives.

7. Focus on Vulnerable Groups :

● Special protections have been introduced for children, women, and marginalized communities, recognizing their heightened vulnerability to coercion and exploitation.

5. Mechanisms of Protection

The mechanisms of protection are essential for the successful implementation of these legal reforms. Protection measures vary depending on the stage of the legal process. During the investigation phase, for instance, law enforcement agencies are responsible for ensuring the physical safety of witnesses through measures such as relocation programs, secure housing, and the use of video testimony to prevent direct confrontation with defendants. Moreover, post-trial support is often provided to help victims and witnesses reintegrate into society, given the trauma they may experience during and after legal proceedings. These comprehensive protections are designed to build a safer and more reliable environment for those who participate in the justice process.

6. Challenges in Implementation

The actual application of laws protecting witnesses and victims is difficult, despite the encouraging reforms. Underreporting is one of the main problems since witnesses and victims may be reluctant to come forward out of concern for reprisals. The efficacy of these laws is also limited by resource limitations, such as inadequate funding for witness protection initiatives. The fact that victims, witnesses, and law enforcement officers may not be completely aware of the protections that are available to them presents another significant obstacle. This causes the laws to be applied inconsistently, which makes it challenging to guarantee that everyone is given equal protection.

7. International Perspective on the Protection of Witnesses and Victims

An analysis of international norms for witness and victim protection is helpful in determining the possibility of reform in the local system. The International Criminal Court (ICC) statutes and the United Nations' Declaration of Basic Principles of Justice for Victims of Crime and Abuse of Power have established international standards that stress the significance of protecting witnesses and victims, particularly in high-risk situations. Several nations, like the United States and the United Kingdom, have established strong witness protection policies that serve as a template for other countries looking to improve their safeguards.

8. Case Studies and Global Practices

- To understand the effectiveness of these laws, it is helpful to compare with international practices: India's Witness Protection Scheme (2018): This framework includes risk categorization, police escorts, and relocation plans.
- UK Witness Protection Programs: Known for their comprehensive approach, these include anonymity orders and financial assistance.
- United States Witness Security Program (WITSEC): Renowned globally, this program provides lifelong protection, relocation, and identity change for key witnesses.

9. Strengthened Measures for Victim and Witness Protection

The new criminal laws place a strong emphasis on creating a holistic

framework for victim and witness protection, addressing both immediate and long-term needs. One of the critical advancements includes the establishment of victim and witness support cells, which serve as dedicated units to assess risks, provide counseling, and coordinate protective measures. These cells work in close collaboration with law enforcement and the judiciary to ensure swift and effective responses to threats or intimidation. Additionally, there is a growing reliance on technology, such as video conferencing and digital evidence recording, to reduce the need for victims and witnesses to appear in court, minimizing their exposure to potential harm.

Provisions for physical security have also been significantly enhanced. For high-risk individuals, the laws now mandate measures like police escorts, secure accommodations, and, in extreme cases, relocation and identity changes. These steps are critical in protecting individuals involved in cases against organized crime, terrorism, or corruption, where the stakes are particularly high. Furthermore, financial assistance has been expanded, providing not only compensation to victims but also financial support to witnesses who face disruptions in their lives due to their involvement in the judicial process.

The laws also promote restorative justice practices that allow victims to participate actively in the justice process, giving them a sense of closure and empowerment. Dedicated fast-track courts have been introduced to expedite cases involving vulnerable victims, reducing prolonged exposure to threats. In addition, special attention has been given to marginalized groups, such as women, children, and individuals from economically disadvantaged backgrounds, ensuring that protections are accessible to the most vulnerable sections of society.Another innovative aspect is the development of 24/7 helplines and reporting platforms for victims and witnesses to seek immediate help. These platforms offer confidentiality and are equipped to provide real-time assistance. Legal literacy campaigns and public awareness programs are also being conducted to educate citizens about their rights and available protections. Recognizing the important role of non-governmental organizations, the laws encourage collaboration with civil society to deliver on-the-ground support and advocacy for victims and witnesses.

Lastly, the new framework includes stringent penalties for those who intimidate, harass, or retaliate against victims and witnesses. This deterrent approach, coupled with regular monitoring by oversight committees, ensures that the legal system can respond dynamically to emerging challenges. Together, these measures form a robust and inclusive approach to safeguarding victims and witnesses, reinforcing the principles of justice, safety, and equality.

10. Conclusion

The protection of victims and witnesses is fundamental to upholding the integrity and fairness of the justice system. The new criminal laws have

made significant strides in addressing the vulnerabilities faced by these individuals by introducing comprehensive mechanisms such as enhanced physical security, psychological support, anonymity safeguards, and financial assistance. These measures not only empower victims and witnesses to participate fearlessly in the justice process but also strengthen public trust in the legal system.

However, the success of these reforms depends on their effective implementation, adequate funding, and continuous monitoring. Collaborative efforts between the government, judiciary, law enforcement, and civil society are crucial to overcoming challenges such as intimidation, delays in justice, and lack of awareness. By ensuring a safe and supportive environment for victims and witnesses, the legal framework demonstrates a commitment to delivering justice with compassion and accountability, paving the way for a more equitable society.

References :

1. Government of India. (2018). *Witness Protection Scheme 2018*. Ministry of Home Affairs. https://www.mha.gov.in
2. United Nations Office on Drugs and Crime (UNODC). (2008). *Good Practices for the Protection of Witnesses in Criminal Proceedings Involving Organized Crime*. https://www.unodc.org
3. India. (1973). *The Code of Criminal Procedure* (Amendments). https://indiacode.nic.in
4. India. (1860). *Indian Penal Code* (IPC). Retrieved from https://indiacode.nic.in
5. Supreme Court of India. (2004). *Sakshi v. Union of India*, AIR 2004 SC 3566.
6. Supreme Court of India. (1997). *State of Gujarat v. Anirudh Singh*.
7. Law Commission of India. (2006). *198th Report on Witness Identity Protection and Witness Protection Programmes*. Retrieved from https://lawcommissionofindia.nic.in
8. Sharma, P. (2023). Strengthening victim protection in Indian criminal justice system. *Journal of Criminal Law and Justice*.
9. Rao, S. (2022). Emerging trends in witness protection: Challenges and solutions. *Indian Law Review*.
10. Amnesty International. (2021). *Protecting vulnerable witnesses: Global perspectives on criminal justice*. https://www.amnesty.org
11. Human Rights Watch. (2020). *Barriers to justice for victims of sexual violence in India*. https://www.hrw.org
12. United States Department of Justice. (n.d.). *Witness Security Program (WITSEC)*. https://www.justice.gov
13. UK Government. (n.d.). *Witness Anonymity Orders and Victim Support Services*. https://www.gov.uk

●

Protecting Employees from Sexual Harassment : A Legal and Ethical Perspective

Dr. Neha Shukla*

Abstract : Sexual harassment at work is a widespread problem that compromises workers' equality, safety, and dignity. This article examines the idea, the law, and case law around workplace sexual harassment, highlighting the harm it causes to victims and company culture.

The article explores the laws that regulate workplace harassment, such as the Industrial Disputes Act, 1947, "the Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition, and Redressal) Act, 2013, and pertinent sections of the Indian Penal Code."Apparel Export Promotion Council v. *A.K. Chopra"&"Vishaka vs. State of Rajasthan" are two notable court rulings that are examined to show the legal development of sexual harassment cases. The influence of international agreements such as CEDAW and ILO Convention No. 190 on protective measures is also investigated.The article ends with a plea for stricter enforcement of workplace regulations, preventative measures, and redressal procedures. It promotes an inclusive workplace where people may carry out their responsibilities without fear of harassment or intimidation.*

Keywords- Sexual Harassment, Workplace,Conventions.

I. Introduction : Workplace harassment continues to be a major problem facing employees in all industries, with women being disproportionately affected. Workplace harassment is unwelcome and inappropriate conduct that creates a hostile, intimidating, or offensive work environment. It may come in different forms, such as discriminatory harassment, where employees are subjected to mistreatment based on race, gender, age, or other protected categories. Sexual harassment is unwelcome advances, inappropriate remarks, or quid pro quo. Psychological harassment is bullying, intimidation, or excessive criticism that impacts an employee's mental health. Retaliation harassment occurs when the employee is penalized for making a misconduct complaint. Threats, hostility, or physical injury characterize physical harassment.

The POSH Law[2] defines sexual harassment to include :

i. Physical Contact and Advances: Unconsented touching, groping, or any other forms of intrusive physical contact.
ii. Demand or Request for Sexual Favors: An offer or promotion that solicits sexual acts in exchange for work rewards or progress.
iii. Sexually colored remarks: Remarks, banters, or even exchanges of a sexual nature.
iv. Showing pornographic content: Presenting sexual pictures, clips, or

* Assistant Professor- Faculty of Law and Governance, Central University of South Bihar, Gaya.

texts.

v. Unwanted physical, verbal, or non-verbal conduct of an overtly sexual nature: Suggestive looks, gestures, whistling, or use of obscene pictures.

Sexual harassment is not only in the form of bodily attacks on a person but also encompasses emotional and mental aggressiveness, which renders the victim virtually unfit to function in the workplace.

Workplace harassment contributes to stress, anxiety, low morale, and reduced productivity. It may also lead to lawsuits against employers for not dealing with it appropriately. To avoid harassment, organizations can have clear policies, train their employees, and have a secure reporting system. Respectful and inclusive workplaces foster the well-being of employees and contribute to overall workplace productivity.

II. Form of Harassment :

a) Quid Pro Quo Harassment-"Quid pro quo harassment" happens whensomeone with power requests sexual favors in return for workplace benefits, including promotions, pay increases, or job security. The term "quid pro quo" is Latin for "something for something," an exchange where one individual requests sexual favors in return for professional advancement.

In quid pro quo harassment, the harasser (often a supervisor or manager) may indicate that they expect sexual favors in return for job benefits or to prevent negative actions, such as demotion or termination. For instance, a supervisor may tell an employee that they will only be promoted if they comply with their sexual advances. This kind of harassment is unlawful and can have a serious effect on the victim's career, mental well-being, and general quality of life. The most dangerous element of quid pro quo harassment is the power imbalance, where the victim is pressured or coerced into compliance.

b) Hostile Work Environment-"Hostile work environment" is whenoffensive and inappropriate words, actions, or comments based on sex, gender, or sexuality create an environment that interferes with an employee from doing their work. Unlike quid pro quo harassment, this form does not necessarily involve direct threats of job benefits for sexual favors but a series of sexually suggestive, offensive, or humiliating acts.

In a hostile work environment, the harassment can be verbal, physical, or visual. Some examples are unwanted comments or jokes about an employee's appearance, making lewd gestures, displaying sexually explicit material in the workplace, or unwanted physical contact. The behavior typically creates a toxic environment that interferes with the employee' from focusing on their work. A hostile work environment is sometimes difficult to remedy because the harassment may not always be direct threats or obvious acts but a series of repeated, subtle acts that make the victim uncomfortable. The behavior must be bad enough to interfere with the

victim's work performance or make them emotionally disturbed. It may involve one person or more, or may be done by a group, such as in the case of bullying or group harassment. Organizations are liable for preventing and remedying hostile work environments and can face serious consequences if they do not.

c) Verbal Harassment-Verbal harassment is the act of making sexually explicit comments, remarks, or jokes that are unwanted and make the victim feel uncomfortable. Verbal harassment may manifest itself as suggestive comments regarding the body of a person, sexually explicit comments, or unwelcome sexual talk in the workplace.

Verbal sexual harassment manifests in many forms, including unwanted comments regarding a person's body, asking personal or intrusive sexual questions regarding a person, or making unsuitable jokes or innuendo. Such comments are degrading or demeaning, and although they do not involve physical contact, they still create a hostile and uncomfortable work environment. The only thing that makes verbal harassment unique is that the remarks are unwanted and negatively affect the victim. Verbal harassment may be ongoing and escalate if it is not taken care of immediately, with a negative effect on the victim's emotional well-being and performance at work.

d) Non-Verbal Harassment- Non-verbal harassment consists of actions that communicate suggestive or belittling messages without words. These behaviors may include ogling, improper hand signals, or showing graphic content at work.

Non-verbal sexual harassment can be hard to spot but has the same damaging effects as spoken harassment. Some examples are prolonged staring or making flirty eye contact, texting or emailing X-rated messages or pictures, or putting up porn in shared office spaces. Non-verbal harassment often creates an uneasy and scary environment making it tough for the victim to feel valued or stay on task at work. This kind of harassment can be trickier to demonstrate because it doesn't involve direct spoken exchanges, but it still affects the victim's feeling of safety and self-worth on the job.

e) Physical Harassment-Physical sexual harassment means any unwanted bodily contact or conduct that has a sexual nature. This can include undesired touching, fondling, kissing, or other types of improper physical interaction.

Physical harassment breaks personal boundaries and can cause deep emotional and mental harm to the victim. This harassment type ranges from subtle touches or inappropriate brushing against someone to more serious acts like fondling or sexual assault. Physical harassment is often the most noticeable and concrete form of sexual harassment, but it also has the highest chance to lead to legal action. Workers who face physical harassment might feel ashamed, helpless, or at risk in their work

environment. The offender's actions in these cases are often obvious, and these acts go against both work behavior rules and legal limits.

f) Cyber Harassment-Cyber harassment refers to sexual harassment that occurs through electronic communication channels. This includes sending emails, texts, or social media messages with sexual content or distributing explicit material via digital platforms.

As digital communication has grown, sexual harassment has spread to online spaces. Cyber harassment involves using digital tech to send inappropriate sexual content or make unwanted advances to a person. This might include sending explicit pictures, writing suggestive emails, or posting unwanted sexual comments online. Cyber harassment is damaging because it goes beyond the physical workplace, and victims may feel they can't escape it. Companies need to tackle cyber harassment and put rules in place to shield workers in online work environments.

III. Legal Framework for Handling Harassment at Work

i. The Sexual Harassment Law- POSH Act[3] is a historical law aimed at saving women from sexual harassment in their workplaces andensuring a safe and dignified work environment in India. Implemented on December 9, 2013, the law was prepared based on the developed guidelines, which was determined by the Supreme Court in India in 1997[4], which has provided harassment in the workplace in the basics of women under Arts. 14, 15 & 21[5]were recognized as violations of the rights. The action defines broad sexual harassment, covers unwanted physical contact, advances, sexual colors, shows pornography, or other unwanted oral or non-oral behavior of sexual. This applies to all jobs, including government offices, private companies, voluntary organizations, educational institutions, hospitals, sports organizations, and even housework.

the sexual harassment law[6] makes the installation of an internal complaint committee[7] in organizations with several employees to handle and correct complaints confidentially. In addition, jobs without the ICC should refer to the issues of a local complaint committee[8] (LCC) created by the district officer. Complaints should be submitted within three months of the incident, and the investigative process should be completed within 90 days, with the final resolution within 60 days of the investigation. The law allows committees to recommend disciplinary action such as warnings, suspensions, dismissal, or financial compensation for deductions from criminal wages. In addition, it prevents the victim against the complainant and makes employees compulsory consciousness programs and training sessions to educate employees on harassment in the workplace. Employers are legally obliged to show guidelines against sexual harassment, conduct regular workshops, and submit an annual report that provides details about their complaints and their proposals. As a result of non -compliance, a fine of up to 50,000 may occur, which can double for repeated offenses. Despite its significance, challenges remain in implementation, awareness, and

reporting, as many women hesitate to report harassment for fear of retaliation, stigma, or lack of trust in the system. In addition, many small businesses and informal jobs are not able to establish the ICC, making it difficult for the victims to find justice. Strengthening the enforcement mechanism, organizing regular revision, and encouraging notification protection can increase the efficiency of the law. To transfer the rights to workplace culture, promote gender equality, and strengthen the rights to a harassment-free workplace, but to work in the workplace law to work in the action to ensure continuous efforts, strict implementation, and extensive awareness have played an important role in.

ii. The Industrial Employment Law[9] : The IE Act[10], 1946 is an important labor law in India that governs employment conditions in industrial settings by requiring employers to clearly outline and publish the terms of work for their employees. While the Act mainly aims to create uniform service conditions, classify workers, establish disciplinary procedures, and set termination policies, it also indirectly tackles workplace harassment by promoting fair treatment, safeguarding against unfair labor practices, and providing a structured mechanism for addressing grievances. According to this Act, industrial establishments with 100 or more workers must define and implement standing orders, which serve as a legally binding code of conduct for both employers and employees. The Act stipulates that these standing orders should encompass misconduct, disciplinary actions, and grievance redressal procedures, offering a framework for managing workplace harassment cases. Although the Act does not specifically mention "workplace harassment," it identifies intimidation, abusive language, aggressive behavior, and unfair treatment as misconduct, which can be relevant in addressing harassment issues. Employers are tasked with defining what constitutes misconduct, which can include actions that foster a hostile work environment, such as verbal abuse, discrimination, bullying, or intimidation, thereby ensuring that employees have a clear legal path to address grievances related to harassment. The Act also mandates that workers be informed about these standing orders, enhancing transparency and ensuring that employees are aware of their rights and responsibilities. Additionally, it grants workers the right to file complaints and seek resolution through designated grievance committees or disciplinary authorities.

Any violation of established orders, including harassment or unfair treatment, can result in disciplinary measures such as warnings, suspensions, or even termination, depending on how serious the misconduct is. The Act also encourages fair inquiry practices, ensuring that employees accused of misconduct, including workplace harassment, have the chance to defend themselves before any punitive measures are taken. The certification process of standing orders, overseen by the Certifying Officer, guarantees that the rules set by employers are fair, reasonable, and

comply with labor laws. Over the years, the Act has been vital in providing structure and accountability in industrial employment, minimizing arbitrary actions by employers, and promoting a safe and respectful workplace culture. However, with the introduction of modern laws like the POSH Act, which specifically addresses workplace harassment, the Industrial Employment (Standing Orders) Act now acts as a supportive framework that enhances broader anti-harassment initiatives in industrial settings.

Despite its significance, challenges persist in implementation, particularly in smaller factories and industrial units where standing orders may not be effectively enforced, resulting in gaps in workplace protections. Improving oversight mechanisms, conducting regular compliance audits, and incorporating specific anti-harassment provisions into standing orders can further strengthen the effectiveness of this Act in preventing workplace harassment. Ultimately, by mandating employers to establish clear rules of conduct, disciplinary procedures, and grievance mechanisms, the Act promotes greater accountability, transparency, and workplace safety, making it a crucial element of India's labor law framework.

iii. The Bhartiya Nyaya Sanhita Provision : Sections 354 & 509[11] of are essential legal provisions designed to safeguard women from acts that outrage their modesty, sexual harassment, and verbal abuse. These sections are significant in tackling crimes related to sexual offenses, workplace harassment, and public safety, ensuring that offenders face strict legal consequences.BNS addresses[12] the assault or use of criminal force against a woman with the intent to outrage her modesty. It specifies that anyone who assaults or uses criminal force on a woman with the intent to violate her modesty shall face imprisonment for a minimum of one year, which can extend up to five years, along with a fine. While the term "modesty" is not clearly defined, judicial interpretations have clarified that it encompasses actions like inappropriate touching, groping, stalking, or any physical act that undermines a woman's dignity. Courts assess whether an act falls under Section 74 by considering the intent and context of the incident. Notably, the section acknowledges that even in the absence of physical contact, any act that threatens or intimidates a woman with the intent to violate her dignity can be subject to penalties. This provision has been frequently applied in cases of street harassment, workplace harassment, and instances of physical intimidation. Conversely, Section 79 BNS specifically addresses verbal, non-verbal, and written actions aimed at insulting a woman's modesty.By reinforcing women's legal rights and providing clear legal avenues against harassment, Sections 74 and 79BNS are essential tools in the battle against sexual offenses, fostering a safer and more respectful environment for women in society.

IV. Judicial Pronouncement :

i. In the case of *Vishaka* v. *State of Rajasthan*[13]The Vishaka Guidelines,

which subsequently served as the cornerstone of the POSH Act, were developed because of this historic case.Sexual harassment was acknowledged by the SC as a violation of fundamental rights.

ii. *"Apparel Export Promotion Council* v. *A.K. Chopra*[14]," In this case,the Supreme Court said that sexual harassment can occur through unwanted verbal or nonverbal behavior and is not limited to physical contact.

iii. In the case of '*Medha Kotwal Lele & Ors* v. *Union of India*'[15] the court held that Stricter enforcement of workplace harassment policies resulted from the case, which exposed shortcomings in the Vishaka Guidelines' implementation.

V. Legal Frameworks and Conventions on an International Level :

i. The CEDAW Convention[16], which was established in 1979, aims to eradicate all forms of discrimination against women. All types of discrimination against women, including harassment at work, must end, according to CEDAW.

ii. The 2019 ILO Convention No. 190 on Workplace Violence and Harassment. A worldwide foundation for safeguarding employees from harassment and violence, including harassment based on gender, is provided by this convention.

iii. Declaration on the Elimination of Violence Against Women, UNs, 1993 asks for preventive measures and acknowledges sexual harassment as a type of violence against women.

VI. Critical Analysis and Acquired Knowledge :

Because of social hurdles and insufficient enforcement, workplace sexual harassment persists despite robust legal frameworks. Because of shame, fear of reprisals, or mistrust of redressal systems, many victims are reluctant to report harassment. Although formal procedures have been established by regulations like the POSH Act, there is frequently a disconnect between policy and practice, which results in inefficient execution. The following lesson may be learned from the above case study-

i. Stronger Implementation: Organizations must make sure that regulations are actively enforced and that those who violate them are held accountable; simply passing laws is not enough.

ii. Awareness and Training: To promote a harassment-free workplace, employers must educate their staff about their obligations and employees about their rights.

iii. Promoting a Culture of Speaking Up Employers should foster an atmosphere where workers may disclose wrongdoing without worrying about repercussions.

iv. Enhancing Redressal Mechanisms: To guarantee impartial investigations and decisions, the ICCs need to be proactive, impartial, and independent.

v. Social and Institutional Change: To address workplace harassment,

government agencies, businesses, and civil society organizations must work together to remove systemic and cultural impediments.

VII. Conclusion& Suggestion :

The various methods and instruments used in this study show that a great deal of pertinent research has been done on the causes and effects of sexual harassment in the workplace, as well as the roles of gender, racism, and power. There are still a lot of dimensions that require investigation, though. Additionally, it is observed that most nations continue to overlook studies on a globally important topic, such as workplace sexual harassment.

Suggestions :

i. Strict Law Enforcement: Organizations are required to make sure that the POSH Act and other legal regulations are implemented correctly.
ii. Workplace Sensitization: To increase awareness and promote a safe workplace, employers should regularly hold training sessions.
iii. Improved Redressal Mechanisms: Grievances must be reported to Internal Complaints Committees, which must be open and accessible.
iv. Support for Victims: Survivors of workplace harassment should have access to legal assistance and psychological counselling.
v. Zero-Tolerance Policy: To discourage wrongdoing, businesses should implement and uphold stringent anti-harassment policies.

Bibliography :

Acts

- Bhartiya Nyaya Sanhita, 2023.
- Industrial Dispute Act, 1947.
- Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013.
- The Constitution of India.
- The Industrial Employment (Standing Orders) Act, 1946.

Reports& Convention :

- Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women (CEDAW), 1979.
- International Labour Organization (ILO) Convention No. 190 on Violence and Harassment, 2019.
- International Labour Organization (ILO) Reports on Gender Equality at Work.
- Ministry of Women & Child Development, Government of India – Reports on Implementation of the POSH Act.
- National Commission for Women (NCW) Reports on Workplace Harassment.

Journals :

- Fitzgerald LF, Drasgow F, Hulin CL, Gelfand MJ, Magley VJ (). Antecedents and consequences of sexual harassment in

organizations: a test of an integrated model. J Appl Psychol. 1997; 82(4): 578-89. doi: 10.1037/0021-9010.82.4.578. PMID: 9378685.

- Mongeon, P., and Paul-Hus, A. The journal coverage of the Web of Science and Scopus: a comparative analysis. Scientometrics. 2016; 106(1): 213-228.
- Oswald, S. L., and Woerner, W. L. Sexual harassment in the workplace: A view through the eyes of the courts. *Labour Law Journal*,1990; 41(11): 786.
- Sridar, S. P., and Kennedy, V. Sexual Harassment of Trained Women Nurses-Serious Challenge for Working Women in Health Care: A Literature Review. *Asian Journal of Management.* 2011; 2(1): 1-4.

Books :

- Bhandari, M. (2016). *Law and Gender Justice in India: A Critical Analysis of Workplace Harassment Policies*.
- Dwivedi, A. Effectiveness of Sexual Harassment Training on Perceived Employee Behavior. 2020.
- Fitzgerald, L. F., and Cortina, L. M. Sexual harassment in work organizations: A view from the 21st century. 2018
- MacKinnon, C. (1979). *Sexual Harassment of Working Women: A Case of Sex Discrimination*. Yale University Press.

References

2. The Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013(ACT 14 OF 2013).
3. *Ibid.*
4. *Vishaka and Others* v. *State of Rajasthan and Others* [(1997) 6 SCC 241, AIR 1997 SC 3011].
5. The Constitution of India.
6. *Supra* note 1
7. The Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013 (Act 14 of 2013), s.4. 8*Id.* s.6.
9. The Industrial Employment (Standing Orders) Act, 1946 (Act 20 of 1946).
10. *Ibid.*
11. Bhartiya Nyaya Sanhita, 2023 (Act 45 of 2023).
12. Bhartiya Nyaya Sanhita, 2023 (Act 45 of 2023), s. 74.
13. [(1997) 6 SCC 241, AIR 1997 SC 3011].
14. (***1999*** (***1***) ***SCC 759***).
15. Petition (Criminal) Nos. 173-177 OF 1999 SC.
16. The Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination against Women, 1979.

●